ब्रैंडर मेथ्यूज़

नाटक साहित्य का अध्ययन

अनुवादक
इन्दुजा अवस्थी

संपादन एवं भूमिका
डा० सुरेश अवस्थी

1964
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

NATAK SAHITYA KA ADHYAYAN
(Hindi version of *A Study of the Drama*)
by
Brander Mathews

Translated by
Induja Awasthi
Edited & Prefaced by
Dr. Suresh Awasthi

Rs. 7.50

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

शाखाएँ
हौज खास, नई दिल्ली
चौड़ा रास्ता, जयपुर
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़
महानगर, लखनऊ-6
रामकोट, हैदराबाद

मूल्य रु० 7·50
प्रथम संस्करण: 1964

मुद्रक
शोभा प्रिंटर्स, माडल बस्ती,
नई दिल्ली-5

विषय-क्रम

अनुवादक की ओर से

इस प्रकार की गम्भीर आलोचना-पुस्तक के अनुवाद में जो सामान्य कठिनाइयाँ होती हैं और अनुवादक को जिन नियमों और पद्धतियों का अनुसरण करना होता है उनकी चर्चा में न जाकर मैं यहाँ दो-एक विशेष बातों का उल्लेख करना आवश्यक समझती हूँ। इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि इस ग्रंथ में अनेक देशों के नाटककारों और नाट्य-कृतियों के इतने अधिक हवाले और उद्धरण थे कि हिन्दी पाठक के लिए उन सबको समझ सकना कठिन था। अतः अनुवाद में कुछ प्रसिद्ध और परिचित लेखकों और नाटकों के हवाले ही रखे गए हैं, बाकी छोड़ दिये गए हैं। छठे अध्याय का बहुत बड़ा अंश इसी कारण से छोड़ दिया गया है। इसी दृष्टि से जहाँ-तहाँ पुस्तक का सम्पादन किया गया है। अनुवादक की दृष्टि में मूल बात यह रही है कि अनुवाद को सुबोध और प्रवाहपूर्ण बनाने के लिए शाब्दिक अनुवाद न करके स्वतन्त्र अनुवाद किया जाय। किन्तु मूल के प्रति आस्था और स्वतन्त्र अनुवाद—इन दो स्थितियों में जो विरोध है, और जिसका सामाधान ही अनुवादक की सबसे बड़ी समस्या है, उससे बचकर नहीं बल्कि उससे जूझकर ही अनुवाद का यह रूप विकसित किया गया है।

अनुवाद की एक बहुत बड़ी कठिनाई यह रही है कि हिन्दी में नाट्य-सम्बन्धी प्रामाणिक और मानकीकृत पारिभाषिक शब्दावली का अभाव है। इस शब्दावली का क्षेत्र भी बहुत सीमित है, क्योंकि नाट्य-समीक्षा में अभी तक केवल नाटक का साहित्यिक विवेचन और विश्लेषण ही किया जाता है। नाटक के प्रदर्शन पक्ष को लेकर अभी तक हिन्दी में नाट्य-समीक्षा का विकास नहीं हुआ। इसीलिए इस पक्ष से सम्बन्धित शब्दावली का तो हिन्दी में नितान्त अभाव है। अतः अनेक नाटकीय संकल्पनाओं और विचारों के लिए नए शब्द गढ़ने पड़े हैं।

शब्दों के निर्माण में इस बात का ध्यान रखा गया है कि प्रचलित नाट्य शब्दावली का अधिक-से-अधिक प्रयोग किया जाय और विशिष्ट भावों और संकल्पनाओं के लिए स्थिर करके उसे मानकीकृत कर दिया जाय। साथ ही ऐसे शब्द रखे जाएँ जो हिन्दी की शब्द-निर्माण की पद्धतियों और हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल हों। इस प्रकार सैट के लिए दृश्य-बन्ध, इंपरसोनेशन के लिए पररूपण और एरिना के लिए रंगस्थली शब्द निश्चित किये गए हैं। कुछ अधिक जटिल विचारों को व्यक्त करने वाले अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय परिभाषामूलक हैं जिससे कि उनका विशिष्ट नाटकीय अर्थ, जो पश्चिमी नाट्य परम्परा में विकसित हुआ है, पूरी तरह व्यक्त हो सके।

उदाहरण के लिए, 'बाक्स सैट' के लिए भवन-सदृश दृश्यबन्ध तथा 'सीनस् ए फेयरे' के लिए व्यापार-मूलक दृश्य रखा गया है। आशा है कि यह नई शब्दावली सहज ही हिन्दी नाट्य-शब्दावली का अंग बन सकेगी और नाट्य-समीक्षा को अधिक व्यापकता और वैज्ञानिकता प्रदान करेगी।

मूल पुस्तक में केवल एक ही परिशिष्ट था जिसमें प्रश्नों की एक लम्बी तालिका द्वारा नाटक के विश्लेषण की पद्धति बतायी गई है। अनुवाद में दो परिशिष्ट और जोड़ दिये गए हैं। दूसरे परिशिष्ट में तो पुस्तक में उल्लिखित नाटककारों और अभिनेताओं आदि के सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचयात्मक टिप्पणियाँ दी गई हैं, और तीसरे में हिन्दी-अंग्रेज़ी नाट्य-शब्दावली दी गई है। टिप्पणियाँ उन्हीं लेखकों के सम्बन्ध में दी गई हैं, जो हिन्दी पाठकों के लिए अपरिचित हैं। टिप्पणियों में बहुत ही संक्षेप में लेखक के काल तथा उसके कृतित्व का संकेत किया गया है।

अन्त में इस पुस्तक के मूल लेखक के सम्बन्ध में दो शब्द लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। जैम्स ब्रैंडर मैथ्यूज़ (1852-1929) प्रसिद्ध अमरीकी समीक्षक थे और उन्होंने नाट्यालोचना में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने नाट्य-कला और नाटक तथा रंगमंच के इतिहास पर कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं तथा इन्हीं विषयों से सम्बन्धित संदर्भ-ग्रन्थों का संपादन किया। 1892 में वे कोलंबिया में साहित्य के प्रोफेसर नियुक्त हुए। इसी यूनीवर्सिटी में 1900 में वे नाटक-साहित्य के प्रोफेसर हुए। वे अमरीका में इस विषय के पहले प्रोफेसर थे। समीक्षात्मक साहित्य के सृजन के साथ-साथ उन्होंने रंगमंच सम्बन्धी अनेक कला-वस्तुओं का संग्रह भी किया था, और आज उसी संग्रह के आधार पर कोलंबिया विश्वविद्यालय में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नाट्य-संग्रहालय उन्हीं के नाम से स्थापित है। प्रस्तुत पुस्तक **ए स्टडी ऑफ दि ड्रामा** के नाम से सन् 1910 में लांगमैंस, लंदन से प्रकाशित हुई थी। इसमें विद्वान् आलोचक ने व्यापक ऐतिहासिक और भौगोलिक पटल पर नाट्य-रचना के नियमों और व्यवहारों तथा प्रदर्शन की पद्धतियों और रूढ़ियों का बड़ा ही गम्भीर विवेचन किया है। आशा है कि ब्रैंडर मैथ्यूज़ की यह नाट्य-विवेचना हिन्दी नाट्यालोचना को नई दिशा और नवीन शक्ति प्रदान करेगी।

—इन्दुजा अवस्थी

भूमिका

भरत ने नाट्यशास्त्र में नाटक का विवेचन जिस व्यापक रूप में किया है, उससे यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारतीय परम्परा में नाटक को काव्य के अन्तर्गत स्वीकार करते हुए भी उसके प्रदर्शन-पक्ष पर पूरा बल दिया गया है। संस्कृत नाट्य-शब्दावली में अभिनय, रूपक और प्रेक्षक आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों के धात्वर्थ और रूढ़ अर्थ नाटक की प्रयोग-प्रधानता और प्रदर्शन-सापेक्षता का संकेत करते हैं। संस्कृत नाटकों के रंग-निर्देशों में रूपयति और नाटयति द्वारा अनेक मनोभावों, अंग-चेष्टाओं और कार्य-व्यापारों के नृत्यमूलक उपस्थान का जो विधान है, उससे भी नाटक की इसी दृश्य-भाविता, रूपकता और प्रेक्षणीयता का बोध होता है। नाटक की अभिनेयता और प्रयोगशीलता का यह पक्ष भारतीय नाट्य-पद्धति में इतना सबल और पूर्ण है कि अभिनेता और रंगशाला के अतिरिक्त नाटक को प्रभावित करने वाले तीसरे तत्व—दर्शक समाज—पर भी नाट्यशास्त्र में समुचित विचार किया गया है। संस्कृत नाटक की प्रयोग-प्रधानता इस बात से भी सिद्ध होती है कि अभिनय के विशद विवेचन के साथ-साथ रंगमंच और उसकी विविध कलाओं—रंगसज्जा (पुस्त), दृश्य-उपकरण, वेशभूषा (अंगरचना) और संगीत आदि—का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। नाटकीय प्रदर्शन की रूढ़ियों को लोकधर्मी और नाट्यधर्मी दो वर्गों में बाँटकर भरत मुनि ने नाटक के प्रदर्शन में लोक-व्यवहारों और रूढ़ कला-व्यवहारों का ऐसा विवेचन किया है जो नाट्य-कला की मूल प्रवृत्ति को उद्घाटित करता है। साहित्य की ही एक विधा नाटक को दृश्य-काव्य की संज्ञा देकर उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति के माध्यम प्रेक्षागृह और रंग-शिल्प का ऐसा गम्भीर विवेचन उन्नत भारतीय नाट्य-प्रतिभा का परिचायक है।

नाट्यशास्त्र के सम्बन्ध में यह मत अब स्थिर हो चुका है कि यह एक प्रकार का नाट्यकला सम्बन्धी सर्वसंग्रह ग्रन्थ है जो शताब्दियों की रचना और संकलन का प्रतिफल है और जिसका प्रयोजन अभिनेता, नाटककार और सामाजिक को प्रशिक्षण देना था। नाट्यशास्त्र अभिनय और प्रदर्शन सम्बन्धी नियमों और रूढ़ियों का एक विशाल ग्रन्थ बन गया है और उसमें नाट्य-कला सम्बन्धी बहुत बड़ी पारिभाषिक शब्दावली का भंडार है। भारतीय नाट्य-परम्परा में नाटक को एक सामाजिक और सम्पूर्ण कला के रूप में स्वीकार किया गया था। इस प्रसंग में यह बात उल्लेखनीय है कि आज पश्चिमी देशों का रंगमंच संकुचित और जड़ यथार्थवादिता से मुक्ति पाने के प्रयत्न में इसी सम्पूर्ण रंगमंच (total theatre) की खोज कर रहा है।

नवीं-दसवीं शताब्दी में संस्कृत नाटक की परम्परा खंडित हो जाने पर नाट्य-कला के मध्ययुगीन लक्षण-ग्रन्थों—दशरूपक और नाट्य-दर्पण में तथा साहित्य-शास्त्र के ग्रन्थों—साहित्य-दर्पण तथा भाव-प्रकाश में, नाटक के साहित्य-पक्ष का ही विस्तृत विवेचन किया गया। प्रदर्शन पक्ष बिलकुल छोड़ दिया गया। इसके पश्चात् कई शताब्दियों तक विहित नाटक का उदय आधुनिक भाषाओं में न हो सका और नाटकीय अध्ययन की परम्परा ही नष्ट हो गई।

हिन्दी में पिछली शताब्दी के मध्य में जब पश्चिमी नाटक-साहित्य और रंगमंच-परम्परा के प्रभाव में आधुनिक नाटक का जन्म हुआ तो वह प्राचीन परम्पराओं से विछिन्न हो गया। एक ओर हमारी नाट्य-रचना-पद्धति बदल गई और दूसरी ओर नाटक-साहित्य के अध्ययन का सैद्धान्तिक पक्ष भी एक ऐसी असमंजस की स्थिति में पड़ गया कि वह न तो प्राचीन नाट्य-विवेचना के दाय को ग्रहण कर उसे आधुनिक संदर्भों में नया संस्कार देकर प्रयोजनशील बना सका और न पश्चिमी नाट्य-समीक्षा के सिद्धान्तों और शैलियों को ही आत्मसात् कर सका। नाट्य-विवेचना की इन दो परम्पराओं के समन्वय से हिन्दी नाट्य-समीक्षा आज तक अपनी कोई निश्चित पद्धति नहीं विकसित कर सकी और हम उसी प्रकार हिन्दी नाट्यशास्त्र के कुछ नितान्त स्थूल तत्वों और सिद्धान्तों की चर्चा नहीं कर सकते, जिस प्रकार कि हिन्दी के काव्यशास्त्र की चर्चा की जाती है। हमने अपने नाटक साहित्य का मूल्यांकन करने के लिए कभी तो प्राचीन शास्त्रीय सिद्धान्त अपनाए और कभी पश्चिमी नाट्य-सिद्धान्तों और कलामूल्यों के आधार पर उसका परीक्षण किया। इसी स्थिति के कारण हमारे बहुत बड़े नाटक साहित्य का आजतक ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं हो सका।

नाट्यालोचना का स्वरूप

हिन्दी की वर्णनात्मक साहित्यिक नाट्यालोचना में नाटकों की कथावस्तु और पात्रों के चरित्र-चित्रण का तो गम्भीर और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है, किन्तु नाटक के रूप-शिल्प और रचना-नियमों को प्रभावित करने वाले रंग-शिल्प के कला-तत्वों और रूढ़ियों का कोई विवेचन नहीं रहता। इस प्रकार हिन्दी की नाट्यालोचना द्वारा नाटक-साहित्य का मूल्यांकन रंगमंच के रूप और रूढ़ियों के साथ सम्बद्ध नहीं हो सका। इस स्थिति के कारण नाट्य-रूप के सभी पक्षों को प्रभावित करने वाले और उसकी पूर्ण और पुनरभिव्यक्ति के माध्यम—रंगमंच—के साथ होने वाले मूल और कलात्मक सम्बन्धों का उद्घाटन नहीं हो सका।

नाटक एक सामाजिक कला है; वह एक ओर तो साहित्य के अन्तर्गत आता है, और दूसरी ओर विविध दृश्य और ललित कलाओं से अपनी कला के तत्व ग्रहण करता है। नाटक की यही विशिष्टिता उसे साहित्य के अन्य सभी रूपों से अलग कर देती है, और इसी विशिष्ट रूप में हम किसी भी भाषा और किसी भी युग के नाटक

साहित्य का वास्तविक मूल्यांकन कर सकते हैं,—न तो नाटक केवल साहित्य का अंग बनकर अपनी कलात्मक शक्ति की रक्षा कर सकता है और न समीक्षक नाटक के केवल साहित्यिक तत्व का ही मूल्यांकन करके अपना दायित्व निभा सकता है। हिन्दी नाट्यालोचना की प्रचलित पद्धति में नाटक के साहित्यिक पक्ष का ही विवेचन किया जाता है और नाटक का रंगशाला, अभिनेता और दर्शक-समाज के साथ जो अभिन्न और अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, और ये तीनों तत्व उसका रूप निर्धारण करने और उसके कलात्मक गुणों को उजागर करने में जो योगदान देते हैं—उस सबका हमारी नाट्यालोचना में कोई उल्लेख नहीं रहता।

यही कारण है कि हिन्दी नाट्यालोचना नितान्त एकांगी और संकुचित हो गई है, और वह बहुत सीमित विवेचन-क्षेत्र में, सीमित शब्दावली के साथ अपने को बराबर दोहरा रही है। उससे नये नाटककार का कोई पथ-प्रदर्शन नहीं हो रहा। यही कारण है कि नाटक के क्षेत्र में रचनात्मक और समीक्षात्मक कार्यकलाप में बराबर खाई बढ़ती जा रही है और वे एक-दूसरे को किसी प्रकार का योग और निर्देश नहीं दे पा रहे। यह स्थिति इसलिए और भी घातक है, क्योंकि नाटक ऐसा साहित्यिक रूप है जिसमें समीक्षा किसी अन्य साहित्यिक विधा की अपेक्षा रचनात्मक कृतित्व को कहीं अधिक प्रभावित करती है।

हमारी नाट्यालोचना के इसी स्वरूप के कारण आजतक भारतेन्दु युग के समृद्ध और प्राणवान नाटक साहित्य का सच्चा मूल्यांकन नहीं हो सका और हमारी रंगमंच परम्परा उसके बहुमूल्य योगदान से वंचित रह गई। इसी प्रकार प्रसाद के उच्च कोटि के नाटक-साहित्य के सम्बन्ध में आज भी हमारे मन में दुविधाएँ हैं और उनकी अभिनेयता का प्रश्न पिछले दो-तीन दशकों में बहुत बड़े साहित्यिक विवाद का विषय बना हुआ है। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश में व्यापक रंगमंच-उत्थान के साथ-साथ हिन्दी नाट्य-लेखन का झुकाव रंगमंच की ओर हुआ है, और उस कोटि के नाटकसाहित्य का जन्म हो रहा है जो रंगशाला के प्रति उतना ही निष्ठावान है जितना साहित्य के प्रति, और जो पाठकों और दर्शकों दोनों को समानरूप से रसानुभव दे रहा है। किन्तु यह खेद की बात है कि हिन्दी की समसामयिक नाट्यालोचना इस नए नाटक के प्रति भी उदासीन है और वह न तो उसकी वाचनिकता और अभिनेयता का ठीक-ठीक मूल्यांकन कर पा रही है और न नए नाटककारों का पथ-निर्देश करते हुए नाट्य-रचना के उन विषयों पर व्यवहारों का ही संकेत कर रही है जिससे हिन्दी के साहित्यिक नाटक का रूप-विधान अधिक स्थिर हो सके और पश्चिमी परम्परा के विजातीय तत्वों को छोड़कर संस्कृत और लोक-नाट्य परम्परा के साथ सम्बद्ध हो सके।

× × ×

परम्परागत रूढ़ियों की अवहेलना

हमारी नाट्य-विवेचना-पद्धति का एक और बड़ा दोष यह है कि हमने परम्परागत नाट्य-व्यवहारों और रूढ़ियों की खोज अपने नाटक साहित्य में नहीं की; और अपनी नाट्य-परम्परा का कोई अखण्ड और समग्र रूप हम प्रस्तुत नहीं कर सके। यद्यपि हमारे नाटक साहित्य के इतिहास में शताब्दियों का व्यवधान है और उसकी कोई अखण्ड परम्परा नहीं है, फिर भी नाटकीय व्यवहारों और रूढ़ियों में एक निरन्तरता और एकसूत्रता है, क्योंकि नाटकीय परम्परा के सूत्र कभी भी नहीं टूटते, चाहे किसी देश के नाटक साहित्य के इतिहास में भले ही कुछ ऐसे अन्तराल हों जब नाटकीय क्रियाकलाप नितान्त क्षीण हो अथवा समाप्त हो चुका हो। नाटक ऐसी कला है जो परम्पराबद्ध है, और जो राष्ट्र के शताब्दियों के कलात्मक और सांस्कृतिक दाय से जुड़ी रहती है; तथा विभिन्न युगों में नए-नए सामाजिक संदर्भों में अपने इसी पारम्परिक स्वरूप से शक्ति ग्रहण करती है और उसे नया संस्कार, नई अर्थवत्ता और नई दिशा देती है। अत: किसी भी युग के नाटक साहित्य के अध्ययन में पारम्परिक कला-तत्त्वों और व्यवहारों का बड़ा महत्त्व है। नाट्य-कला की इसी निरन्तरता और अखण्डता के कारण ही अतीत के नाटक साहित्य का अध्ययन वर्तमान नाट्य-मूल्यों और मान्यताओं द्वारा किया जा सकता है, और वर्तमान नाटक साहित्य के विश्लेषण और विवेचन में अतीत के समीक्षा-सिद्धान्तों का उपयोग सम्भव है। अतीत और वर्तमान के नाटक का यह सम्बन्ध नाटक साहित्य के अध्ययन के विविध पक्षों में एक बहुत ही रोचक और प्रेरणादायक पक्ष है।

वर्तमान हिन्दी नाटक साहित्य के अध्ययन में हमने अपने पारम्परिक नाटकीय कला तत्त्वों, व्यवहारों और रूढ़ियों की खोज का कोई प्रयत्न नहीं किया, बल्कि हमने विदेशी तत्त्वों और रूढ़ियों के प्रभाव की चर्चा आवश्यकता से अधिक की। जब-तब असम्बद्ध रूप से हम अपने नाटक साहित्य में संस्कृत नाटकों के कुछ व्यवहारों की चर्चा अवश्य कर देते हैं, लेकिन अभी तक इस पक्ष का कोई व्यवस्थित और प्रामाणिक अध्ययन हम नहीं प्रस्तुत कर सके। संस्कृत नाट्य-परम्परा के अतिरिक्त हमारी अत्यन्त रोचक एक हज़ार वर्षों की मध्ययुगीन नाट्य-परम्परा और अनेक नाट्य रूपों और प्रदर्शन-शैलियों वाली लोक नाट्य-परम्परा है। इनकी रूढ़ियों के अवशेष, जिस रूप में भी आधुनिक हिन्दी नाटक साहित्य में—विशेषकर भारतेन्दुयुगीन नाटक साहित्य में—वर्तमान हैं, उनका कोई विवेचन हमने आजतक नहीं किया।

यह बड़ी विचित्र और असंगत-सी बात है कि हम साहित्य और कला के दूसरे रूपों और विधाओं में तो परम्परा की बात करते हैं, और उनके आधुनिक रूपों और अभिव्यक्तियों में प्राचीन पारम्परिक कला-तत्त्वों और रूढ़ियों के अनुपालन पर आग्रह करते हैं; किन्तु नाटक में हम किसी प्रकार के पारम्परिक तत्त्वों, व्यवहारों और अनुशासनों की चर्चा और आधुनिक रूपों में उनके पालन का आग्रह नहीं करते। हम संगीत

और नृत्य में तो अपनी परम्पराओं से जुड़े हुए हैं और उन परम्पराओं की सच्ची अभि-व्यक्ति करने वाले कलाकार को ही सम्मान देते हैं। चित्रकला में भी पश्चिमी कला-शैलियों और वादों से प्रभावित व्यवहारों की कड़ी आलोचना करते हैं। किन्तु सामान्य रूप से साहित्य के सभी रूपों में, विशेषकर नाटक में, हम पश्चिमी रूपों और शैलियों का ही अनुसरण करते हैं और वही हमारी विवेचना के मापदण्ड होते हैं।

यद्यपि आधुनिक हिन्दी नाटक साहित्य और संस्कृत नाटक साहित्य में एक हज़ार वर्षों से अधिक का अन्तराल है और संस्कृत रंगमंच की कोई जीवित परम्परा नहीं है फिर भी संस्कृत नाट्य-पद्धति के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों का विवेचन हिन्दी साहित्य के सम्यक् अध्ययन के लिए आवश्यक है। संस्कृत नाट्य-परम्परा नवीं-दसवीं शताब्दी में समाप्त होकर भी अपने अनेक व्यवहारों और रूढ़ियों में आज भी साहित्यिक और लोक नाट्य-परम्परा में जीवित है। यदि हम पारम्परिक नाट्य-रूपों और शैलियों का अध्ययन अखिल भारतीय स्तर पर करें तो इस प्रकार की बहुत-सी कला-सामग्री प्राप्त हो सकती है, जिसके आधार पर हम भारतीय नाट्य परम्परा के स्वरूप और उसके कला व्यवहारों का पुनर्निर्माण कर सकते हैं।

संस्कृत नाटक की रसाश्रयी, कल्पना-प्रधान और काव्यपरक प्रकृति आज भी हिन्दी नाटक, विशेषकर लोक नाटक और रंगमंच के कला-व्यवहारों में देखी जा सकती है। नाटकीय प्रतीति और सत्याभास के नियम और व्यवहार आज भी हिन्दी लोक रंगमंच में उतने ही सरल और कल्पना-सापेक्ष हैं जितने कि संस्कृत रंगमंच में हैं। इन मूल सैद्धान्तिक समानताओं के अतिरिक्त नाटक रचना और प्रदर्शन के अनेक तत्त्व ऐसे हैं जिनका स्रोत संस्कृत नाट्य-पद्धति और परम्परा ही है, चाहे उनका रूप कितना ही बदल गया हो। हमारे साहित्यिक नाटकों में पद्य-संवादों और गीतों का प्रयोग, संवाद-निवेदन सम्बन्धी अनेक रूढ़ियों, प्रस्तावना और पूर्वरंग के व्यवहारों, नाटकीय अन्वितियों के नियमों, कथावस्तु के विभाजन और वस्तु-संगठन के कुछ व्यवहारों, नाटकीय प्रतिनिधान के निषेधों के पालन और नाट्य-कला की कुछ मूल धारणाओं में आज भी हम संस्कृत नाट्य-पर-म्परा के क्षीण सूत्रों को देख सकते हैं। संस्कृत नाट्य साहित्य के कुछ रूढ़ पात्र जैसे नट, नटी, सूत्रधार और विदूषक तो आज भी अनेक रूपों और नामों में केवल हिन्दी-भाषी क्षेत्र में ही नहीं, वरन् सारे देश में नाटकीय संविधान के अंग बने हुए हैं। लोक शैली के कितने ही नाटकों में गायन, नृत्य और अभिनटन की प्रधानता भी संस्कृत पर-म्परा से ही सम्बद्ध है।

नवीं-दसवीं शताब्दी में नाटक और रंगमंच की शास्त्रीय परम्परा नष्ट हो जाने पर मध्ययुगीन शताब्दियों में भारतीय नाट्य प्रतिभा का प्रस्फुटन और उसकी अभिव्यक्ति अनेक प्रकार के अर्द्ध-नाटकीय रूपों तथा नाट्येतर कला-माध्यमों द्वारा हुई, क्योंकि आधुनिक भाषाओं में विहित नाटक का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी से पहले नहीं हो सका। इस मध्ययुगीन नाटकीय क्रियाकलाप में संस्कृत नाट्य-परम्परा के कुछ तत्त्व

जहाँ-तहाँ खोजे जा सकते हैं, किन्तु परम्परा की अखण्डता सिद्ध नहीं की जा सकती। वास्तव में मध्ययुगीन नाटक और रंगमंच संस्कृत परम्परा से स्वतन्त्र रूप से जन्मा और विकसित हुआ है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि सन् एक हज़ार ईस्वी के आस-पास आरम्भिक मध्ययुगीन शताब्दियों में देश के साहित्यिक और सांस्कृतिक इतिहास ने एक नया मोड़ लिया और वह धार्मिक से लोकपरक हो गया। इन्हीं आरम्भिक शताब्दियों में आधुनिक भाषाओं का उद्‌भव हुआ, और उन्होंने संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की साहित्यिक परम्पराओं का भी वहन किया।

भारतीय नाट्य इतिहास में इस बहुरंगी और विविधतापूर्ण मध्ययुगीन नाटकीय क्रियाकलाप से अधिक आकर्षक और कोई दूसरी बात नहीं है। विशाल हिन्दी-भाषी क्षेत्र इसी बहुरंगी मध्ययुगीन रंगमंच की एक ऐसी झांकी प्रस्तुत करता है, जिसमें साधनों और माध्यमों की विविधता के साथ-साथ आश्चर्यजनक जनपदीय अनेकरूपता भी मिलती है। आधुनिक हिन्दी नाटक के अध्ययन के लिए मध्ययुगीन नाट्य-परम्परा का अध्ययन केवल कुछ नवीन तथ्य सामग्री की दृष्टि से ही उपयोगी नहीं है, बल्कि इसके स्वरूप तथा अनेक नाट्य व्यवहारों और प्रदर्शन रूढ़ियों का स्रोत जानने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी नाट्यालोचना में अभी तक ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी से लेकर, जब आधुनिक भाषाओं और जनपद संस्कृति का उदय हुआ, उन्नीसवीं शताब्दी तक के कोई सात सौ वर्षों के नाटकीय क्रियाकलापों, व्यवहारों और रूढ़ियों का समुचित अध्ययन नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में जो कुछ तथ्य-सामग्री सामने आई भी है, उसके नाट्य-तत्त्वों का कोई वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं किया गया तथा इस परम्परा को आधुनिक नाट्य-परम्परा से नहीं जोड़ा गया।

महाकाव्यों और गाथागीतों का नाटकीय गायन, भ्रमणशील नटों के नाट्य-प्रदर्शन, स्वांग, तमाशा और रहस आदि लोक नाटकों के प्रदर्शन, झाँकियों और रूपक वाहनों के साथ धार्मिक जलूस और शोभा यात्राएँ इस मध्ययुगीन रंगमंच की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। ये अर्द्धनाट्य रूप नाट्य-कला की विभिन्न विकास-अवस्थाओं का परिचय देते हैं। ये विविध नाट्य रूप विहित नाटक का तो स्थान नहीं ले सकते, किन्तु इसमें संदेह नहीं है कि ये रंगमंच परम्परा का सूत्र अखण्ड बनाए रहे, और अभिनय तथा कथोपकथन की नाट्य-कलाओं को जीवित रखा और उन्हें पुष्ट किया।

रंगमंच के रूप और प्रदर्शन-पद्धतियों का सरल अनौपचारिक रूप, नाट्य-प्रदर्शन के साथ दर्शकों का सक्रिय और निकट सम्बन्ध, रंग-विधान में एक साथ एक से अधिक दृश्यों का उपस्थापन, अभिनय की रूढ़ नृत्यमूलक शैली, संवादों की संगीतपरकता और निवेदन शैलियों की विविधता, व्यापार-बहुलता, नाटकीय पात्र का कथानक में वाचक और व्याख्याता के रूप में प्रयोग, सज्जाविहीन और अविशिष्ट घटनास्थल आदि अनेक ऐसे मध्ययुगीन नाट्य-व्यवहार हैं जिनकी परम्परा आज भी हिन्दी के विविध नाट्य-रूपों और प्रदर्शन-पद्धतियों में अक्षुण्ण है।

लोक-नाट्य-परम्परा

यद्यपि आधुनिक हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास सौ वर्षों से अधिक पुराना नहीं है, और इस एक शताब्दी में भी रंगमंच की नितान्त क्षीण और खण्डित परम्परा रही है, किन्तु हिन्दी क्षेत्र के लोक नाटक की कई शताब्दियों की समृद्ध और जीवित परम्परा है। यह खेद की बात है कि हिन्दी की इस समृद्ध नाट्य-परम्परा की अवहेलना की जा रही है, और उसके समुचित अध्ययन और मूल्यांकन का कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं किया गया और न साहित्यिक नाट्य-परम्परा में इसके सूत्र खोजने और दोनों को सम्बद्ध करने का ही प्रयत्न हुआ है।

हिन्दी की लोक नाट्य-परम्परा रूपों, शैलियों और प्रदर्शन-पद्धतियों की दृष्टि से इतनी समृद्ध है कि वह सहज ही साहित्यिक नाट्य-परम्परा के समक्ष रखी जा सकती है। एक ओर तो हम जलूसों और शोभा-यात्राओं की शैली में खेले जाने वाले लीला-नाटकों—रामलीला और रासलीला—की प्राचीन और विशाल परम्परा पाते हैं, जिनमें मध्ययुगीन काव्य, संगीत, नृत्य और विविध कलाओं और समूची लोक संस्कृति का वैभव समाया हुआ है, और जो अपनी ऐतिहासिक यात्रा में बराबर सम-सामयिक कलाओं और संस्कृति से अनेक तत्त्व ग्रहण करते रहते हैं; दूसरी ओर 19वीं शताब्दी में विकसित होने वाले उन ऑपेराधर्मी नाटकों की परम्परा है, जो नौटंकी, सांगीत, स्वाँग, ख्याल और माँच आदि विविध रूपों में उत्तरप्रदेश, पंजाब, राजस्थान और मध्यप्रदेश में प्रस्फुटित हुई, और जिसमें कथा, काव्य, नाटक, संगीत और नृत्य सभी कलाओं को समाहित करके एक ऐसे नाट्य-रूप का विकास किया गया है जो भारतीय नाट्य प्रकृति के मौलिक रूप को व्यक्त करता है। इन दो प्रधान धार्मिक और लोकपरक नाट्य शैलियों के अतिरिक्त प्रत्येक क्षेत्र और जनपद के अपने-अपने हास्य-मनोरंजन प्रधान नाटक हैं, जिनमें स्वांग, नक़ल और भँड़ैती सबसे अधिक विकसित हैं, और जिनका व्यंग्यपूर्ण चुटीला हास्य साहित्यिक कोटि की रचनाओं से मुकाबला कर सकता है।

सामान्यत: लोक-नाटकों के सम्बन्ध में हमारी यह धारणा है कि उनका न तो कोई कलागत रूप होता है और न उनमें कला के किन्हीं नियमों, व्यवहारों और रूढ़ियों का ही पालन होता है। यह धारणा नितान्त भ्रामक है। सभी के प्रकार और सभी शैलियों के लोक-नाटकों के अपने रचना-व्यवहार और प्रदर्शन-रूढ़ियाँ होती हैं, जो साहित्यिक नाटकों के कला व्यवहारों और रूढ़ियों से भिन्न तो हैं, किन्तु यह समझना ग़लत है कि वे साहित्यिक नाटकों से हीन अथवा कम कलात्मक होते हैं। लोक नाट्य रूपों के वस्तु-निर्माण, संवाद-निवेदन और पात्र-योजना आदि के सम्बन्ध में कुछ ऐसे नियम होते हैं जो इन नाटकों को उसी प्रकार से कलात्मक एकता प्रदान करते हैं, जिस प्रकार से किसी भी साहित्यिक कृति को उसकी रचना के नियम करते हैं। साहित्यिक नाटकों के समान लोक-नाटकों में भी कथा की प्रगति, उसके विकास और उत्कर्ष आदि की सहज स्थितियाँ

होती हैं, और कथा के अनावरण और उसके समापन का भी एक निश्चित विधान होता है। लोक-नाटकों के वस्तु-निर्माण में जो एक प्रकार की सहजता और शिथिलता होती है, उसका कारण यह है कि उससे विभिन्न कथा-स्थितियों में प्रदर्शन के समय अभिनेता जहाँ चाहते हैं नया कार्य-व्यापार और नए संवादों का समावेश कर देते हैं। लोक नाटकों के पात्र नाटकीय कथा को वहन करने के अतिरिक्त कई और नाटकीय प्रयोजनों को पूरा करते हैं। कभी तो वे नाटकीय कथा का वर्णन करते हुए वाचक और आख्याता बन जाते हैं, कभी वे नाटक के पूर्वरंग के आयोजन का काम करते हैं, कभी रंगकार्मिक के रूप में रंग-सज्जा की सामग्री रंगमंच पर लाते और वापस ले जाते हैं।

विशिष्ट रचना-नियमों और व्यवहारों के समान ही लोक नाटकों की कुछ विशिष्ट प्रदर्शन-रूढ़ियाँ होती हैं, और ये प्रदर्शन रूढ़ियाँ रंगमंच के रूप, आकार और अन्य परिस्थितियों से जन्म लेती हैं। लोक नाट्य-प्रदर्शनों में नटचर्या का सारा विधान बहुत सरल होता है। पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान का कोई औपचारिक रूप नहीं होता। नाटकीय स्थिति की आवश्यकता के अनुसार बिना किसी भूमिका के पात्र रंगमंच पर आकर व्यापार में नियोजित हो जाते हैं, और अपने संवाद बोलने लग जाते हैं। प्राय: तो ऐसा होता है कि नाट्य-प्रदर्शन के सभी पात्र एक साथ सजकर नाटक आरम्भ होने से पूर्व ही रंगस्थली पर आ जाते हैं और वे बराबर पूरे प्रदर्शन में वहीं उपस्थित रहते हैं। किसी प्रसंग और दृश्य विशेष के पात्रों के एक साथ रंगमंच को छोड़कर चले जाने अथवा पीछे हटकर बैठ जाने से ही नाटकों में दृश्यान्तर का बोध करा दिया जाता है। अनेक रंगमंच-रूढ़ियों का जन्म और उनका विशिष्ट स्वरूप इस तथ्य के साथ जुड़ा हुआ है कि लोक रंगमंच में रंगसज्जा का कोई विधान नहीं होता और अभिनय क्षेत्र को नाटकीय दृश्यों के अनुकूल स्थानगत विशिष्टयाँ नहीं दी जातीं। प्रदर्शन की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लोक नाटकों में अभिनय प्राय: शैलीबद्ध होता है और अभिनेताओं की गतियाँ और अंग-चेष्टाएँ नृत्यमूलक होती हैं।

लोक-नाटक के ये अनेक रचना-नियम और व्यवहार, प्रदर्शन की रूढ़ियाँ तथा उसकी कल्पना-प्रधान और व्यंजनात्मक प्रकृति किसी-न-किसी रूप में संस्कृत नाट्य-परम्परा के कितने ही व्यवहारों और रूढ़ियों को सुरक्षित किये हुए है। इसके साथ-ही इसमें हम मध्ययुगीन अर्द्धनाटकीय रूपों तथा नाट्येतर कलाओं के कला-तत्त्वों को भी देख सकते हैं। लोक नाट्य-परम्परा में साहित्यिक नाटक को समृद्ध और पुष्ट करने की अद्भुत शक्ति होती है। भारतेन्दुयुगीन नाटक साहित्य की समृद्धता और शक्ति का स्रोत लोक नाट्य-परम्परा के ही अनेक तत्त्व और व्यवहार हैं।

यह हर्ष का विषय है कि गत कुछ वर्षों में प्रतिभाशील नाटककारों और निर्देशकों का ध्यान इस समृद्ध नाट्य परम्परा की ओर गया है और कुछ ऐसे प्रयोगात्मक नाट्य-प्रदर्शन हुए हैं जिनमें भारतीय नाट्य प्रकृति और परम्परा के अनुकूल रंगमंचीय

रूढ़ियाँ अपनाई गई हैं। संगीत और नृत्य-नाटकों का प्रचलन और विकास इसी प्रवृत्ति का सूचक है। नृत्य नाटकों में सूत्रधार और कथावाचकों का समावेश किया गया है, तथा प्रदर्शन की अनेक रूढ़ियाँ और रंगसज्जा सामग्री लोक नाट्य-परम्परा से ली गई है।

इस बात की आवश्यकता है कि हम अपने नाटक-साहित्य और रंगमंच-परम्परा में इन्हीं तीनों नाट्य परम्पराओं—संस्कृत नाटक परम्परा, मध्ययुगीन और लोक नाट्य-परम्परा की रूढ़ियों और व्यवहारों की खोज करें और उनका पुनर्निर्माण करके भारतीय नाटक और रंगमंच को अधिक मौलिक और प्रामाणिक रूप प्रदान करें। जब तक हम अपनी ही नाट्य-परम्पराओं और कला-रूढ़ियों की खोज और उनका नवीन और प्रयोजनशील प्रयोग नहीं करते, तब तक हमारा नाटक और रंगमंच वर्तमान कलागत संकट से न उबरेगा और न हम पश्चिमी दाय का ही कोई बहुत कलात्मक उपयोग कर सकेंगे।

पश्चिमी प्रभावों की चर्चा

मध्ययुगीन कई शताब्दियों में भारतीय नाट्य प्रतिभा की अभिव्यक्ति अनेक प्रकार के अर्द्धनाटकीय प्रदर्शनों तथा नाट्येतर कला-माध्यमों द्वारा हुई। सभी भारतीय भाषाओं में आधुनिक शैली के नाटक का जन्म 19वीं शताब्दी के मध्य में हुआ और उद्भव काल से ही भारतीय नाटक-साहित्य पर पश्चिमी नाट्य-कला का गहरा प्रभाव पड़ा। वास्तव में, पश्चिमी नाटक साहित्य के सम्पर्क से और बहुत कुछ उसके नाटकीय तत्त्वों, कथानकों तथा रचनागत व्यवहारों और रूढ़ियों को अपनाकर ही भारतीय भाषाओं में नाटक का विकास हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि 19वीं शताब्दी के नाटकीय उन्मेष में सभी भाषाओं के नाटककार एक ओर तो अंग्रेज़ी के समृद्ध नाटक साहित्य के सम्पर्क में आते हैं, उससे आकर्षित होते हैं और उसके प्रभाव को ग्रहण करते हैं; और दूसरी ओर उनका ध्यान संस्कृत के समृद्ध नाटक साहित्य पर जाता है, और संस्कृत नाटकों के अध्ययन, अनुवाद और रूपान्तर का काम होता है। आधुनिक भारतीय नाटक साहित्य के विकास के इतिहास में यह बात बहुत ही रोचक है कि एक साथ दो नाटक साहित्यों में हमारी रुचि जागृत होती है। एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न और दो विरोधी तत्वों, व्यवहारों और रूढ़ियों वाले नाटक साहित्यों के पारस्परिक सम्पर्क के इस संघर्ष काल में ही हमारे नाटककार नाट्यरूप की खोज करते हैं। हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक ओर तो संस्कृत नाट्य-पद्धति और लक्षण ग्रन्थों की रचनाओं की चर्चा करते हैं, और दूसरी ओर वे नए यूरोपीय नाटकों के तत्वों के प्रति भी सजग हैं। तभी वे प्राचीन पद्धतियों और रूढ़ियों को नया रूप देने और अंग्रेजी नाटक के माध्यम से आने वाले नए व्यवहारों और रचना-नियमों को ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं। नाटक साहित्य के साथ-साथ 19वीं शताब्दी में पश्चिमी देशों में विक

सित होने वाले रंगमंच और उसकी यथार्थ-वादी रंगसज्जा का भी हमारे आरम्भिक नाटक के शिल्प-विधान पर भारी प्रभाव पड़ा।

इस यथार्थवादी रंगमंच की रूढ़ियों ने भारतीय नाट्य प्रतिभा को भारी आघात पहुँचाया। इस आघात के कारण ही हमारी आधुनिक नाट्य-पद्धतियों में ऐसी विषमताएँ और अंतर्विरोध आ गए हैं, जिनका आज तक कोई समाधान नहीं हो सका; और सौ वर्षों के लम्बे इतिहास के बाद भी हम पश्चिमी नायट्-परम्परा के सर्वोत्तम तत्वों को अपनी परम्परा में किसी सर्जनात्मक दृष्टि से आत्मसात् नहीं कर पाए हैं। दो विभिन्न जातियों के नाटक साहित्य और परम्पराओं के मिलने पर इस प्रकार का संघर्ष और अन्तर्विरोध सदैव ही उत्पन्न हो जाता है, और जब तक उनके समन्वय से एक नए प्रकार के रचना-नियमों, व्यवहारों और रूढ़ियों की सृष्टि नहीं होती, तब तक संघर्ष समाप्त नहीं होता और राष्ट्रीय नाटक साहित्य प्रगति नहीं करता। आज भारतीय नाटक और रंगमंच के सामने यही कलागत संकट उत्पन्न है। जब तक हमारे नाटककार अपनी नाट्य-परम्परा को अपना कर पश्चिमी नाट्य तत्त्वों और परम्पराओं के साथ उनका कलात्मक समन्वय नहीं ढूंढ़ लेते, तब तक हमारी भाषाओं में श्रेष्ठ कोटि के नाटक साहित्य का विकास नहीं हो सकता। नाट्य-रचना के शिल्प और रूपगत इस संकट के साथ-ही-साथ प्रदर्शन-शैली और मूल्यों का संकट भी हमारे रंग-मंच को घेरे हुए है।

पश्चिमी नाटकों और नाट्यकला तत्त्वों के आयात से जहाँ एक ओर हमारे रंगमंचीय क्रियाकलाप को बहुत बड़ी प्रेरणा मिलती है, वहाँ इसका एक दुष्परिणाम यह हो रहा है कि हमारी अपनी मौलिक परम्परा के नाटक साहित्य का विकास अवरुद्ध है। प्राय: जातियों के रंगमंच के इतिहास में ऐसी ही स्थिति आ जाती है। इस शताब्दी के आरम्भ में अनेक यूरोपीय देश फ्रांस के नाटकों का आयात करते थे, और फ्रांसीसी नाटकों के अनुवाद और रूपान्तर ही उनकी रंगशालाओं में सफल होते थे। पश्चिमी देशों से नाटक और रंगमंच कलाओं का जो दाय हमको मिला है उसके महत्त्व से कोई इन्कार नहीं कर सकता। किन्तु यह बात भी सच है कि कोई भी जाति नाटकों के आयात से अपने रंगमंच को समृद्ध नहीं बना सकती। इन नाटकों के आयात की समस्या पर जे० बी० प्रीस्टले ने अपनी पुस्तक 'लिटरेचर एण्ड वैस्टर्न मैन' में लिखा है : "कभी-कभी नाटकों के आयात के कारण एक जाति का अपना विशिष्ट नाटक साहित्य नहीं विकसित हो पाता। यद्यपि कभी ऐसा भी होता है कि इब्सन जैसा एक छोटे देश का नाटककार बहुत अधिक और व्यापक प्रभाव डालता है, किन्तु सामान्यत: यह देखा जाता है कि यदि कोई देश आर्थिक सम्पन्नता, राजनीति और सैन्य शक्ति के कारण महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली है, और साथ ही उसका अपना जीवित रंगमंच है, तो उस देश के नाटकों की दूसरे देशों में बहुत अधिक माँग रहती है।"

पश्चिमी नाट्य-कला के प्रभाव की बात जब हम करते हैं तो यह भूल जाते हैं

कि यह कोई अविकासशील बद्ध कला-चेतना नहीं है। रंगमंच में जिस यथार्थवादी आन्दोलन की चरम परिणति 19वीं शताब्दी के अन्त में हुई, पश्चिमी देश पिछले 30-40 वर्षों से अब उससे विद्रोह कर रहे हैं। इस विद्रोह ने इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, अमरीका और रूस सभी देशों में 19वीं शताब्दी की रंगमंच-प्रवृत्तियों और नाट्य-धारणाओं को बदल दिया है। रूस में इस शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में ही पहले बख्तान-गाव और बाद में मायरहोल्ड ने यथार्थवादी नाट्य शैली के विरुद्ध विद्रोह किया, और पूर्वी देशों से अनेक नाट्य-कला-तत्व ग्रहण किए, जैसे रंगमंच पर बहु-धरातल विधान, पात्रों का व्यंजनात्मक शृंगार, मुखौटों का प्रयोग, अभिनेताओं और दर्शकों का सामीप्य तथा शैलीबद्ध अभिनय और प्रदर्शन शैली।

यह खेद की बात है कि हम आज भी जब पश्चिमी नाट्य-कला के प्रभाव की बात करते हैं तो इसी पिछले यथार्थवादी रंगमंच आन्दोलन को दृष्टि में रखते हैं, और नाटकीय अन्वितियों, यथार्थवादी रंग-सज्जा तथा तसवीरी-फ्रेम वाले रंगमंच की बात सोचते हैं। और इस स्थिति की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि इधर पिछले दस-पाँच वर्षों में हमारे प्रतिभाशील निर्देशकों पर जो पश्चिमी प्रभाव पड़ रहा है, वह उन्हीं नाट्य-तत्वों का है जो पूर्वी परम्परा के तत्व हैं, और जो पश्चिमी देशों से होकर, हमारे पास आते हैं; कभी तो कुछ विकृत होकर, और कभी कुछ परिष्कृत और रंगमंच के लिए रूपान्तरित होकर। आज अनेक देशों में हमारी लोक रंगमंच शैली के अनुरूप नाटकों का प्रदर्शन सादे खुले रंगमंचों और रंगस्थलों में हो रहा है और लोक परम्परा की रूढ़ियाँ अपनाई जा रही हैं। महान् निर्देशकों का कथन है कि यथार्थवाद रंगमंच पर अपना जीवन जी चुका है; दूसरे उसको फिल्म में कहीं अधिक प्रभावशाली माध्यम मिल गया है।

जर्मनी के नाटककार ब्रेश्ट ने ऐसे महाकाव्योचित नाटक की कल्पना की जो अपने रूप-विधान में भारतीय परम्परा के निकट है, और उन्होंने हमारी मध्ययुगीन और लोक परम्परा के समान अपने नाटकों में नाटकीय और आख्यानक तत्व मिलाकर नाट्य-रूप को एक नया ही आयाम दे दिया। फ्रांसीसी नाटककार अनुई और जेरादू आज नाटकों में ऐसे रचना-व्यवहारों का प्रयोग कर रहे हैं, जो पूर्वी परम्परा से जुड़े हुए हैं। उनके नाटकों में प्रस्तावना होती है, सूत्रधार रहता है और रूप शिल्प का सारा विधान अत्यन्त सरल होता है। और इन देशों के निर्देशक प्रदर्शन-कला में जो नए प्रयोग कर रहे हैं वे हमारी प्राचीन परम्परा के निकट हैं। रूस में टालस्टाय का Mother और War & Peace का नाटकीय रूप प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें सूत्रधार और कथावाचक रहता है; हम गोदान को नाटकीकृत करते हैं तो एक दृश्यबंध और तीन अंकों में उपन्यास को बाँधकर उसके महाकाव्योचित विस्तार को नष्ट कर देते हैं। ब्रेश्ट के नाटक Mother Courage में 15-20 दृश्य हैं, और घटनास्थल रसोई-घर से लेकर लड़ाई के मोर्चे तक फैले हुए हैं; काल और स्थान की अन्वितियों का उल्लंघन होता है,

पर उसका सशक्त प्रदर्शन होता है। अमरीकी नाटककार ओ नील ने नए प्रकार के स्वगत-कथनों का नाटकों में प्रयोग किया है, और लम्बे-लम्बे साहित्यिक नाटक लिखे हैं जिनका सफल प्रदर्शन होता है। हमने प्रसाद के नाटकों को अनभिनेय बता दिया है क्योंकि उनमें दृश्य और घटनास्थल बहुत हैं, अन्वितियाँ भंग होती हैं और स्वगत-कथन हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि हम पश्चिमी प्रभाव की चर्चा के साथ-साथ अपनी परम्परा के तत्वों की खोज भी अपनी आधुनिक नाट्य-पद्धतियों में करें; और पश्चिमी नाट्य-कला को एक बद्ध, जड़ कला-चेतना न समझ लें, जो 19वीं शताब्दी के अन्त में आकर ठहर गई, और आगे उसका कोई विकास ही नहीं हुआ। अपनी परम्परा के नाट्य-तत्वों और रूढ़ियों को नई और सर्जनात्मक दृष्टि से अपनाकर ही हम पश्चिमी नाट्य-तत्वों और रूढ़ियों का भी अधिक स्थायी आत्मसात कर सकेंगे और उनका प्रयोग भी अधिक कलात्मक हो सकेगा। पूर्वी और पश्चिमी परम्पराओं के समन्वय से ही हम अपना नाटकीय रूप निर्मित कर सकेंगे और विश्व नाट्य-कला के विकास में भी अपना कोई विशिष्ट योगदान दे सकेंगे।

नाटक साहित्य का नव परीक्षण

ब्रैंडर मैथ्यूज़ ने अपने ग्रन्थ में नाट्य-रूप को प्रभावित करने वाले तथा वस्तु-निर्माण के व्यवहारों और रंगमंच-रूढ़ियों को निर्धारित करने वाले जिन तीन प्रमुख तत्वों—रंगशाला, अभिनेता और दर्शक-समाज—का उल्लेख किया है, उनके आधार पर हिन्दी के नाट्य-लेखन के व्यवहारों का संक्षिप्त विवेचन रोचक होगा। जहाँ तक हिन्दी नाटक-रूप पर रंगशाला के प्रभाव का प्रश्न है, उसकी स्थिति हमेशा ही बहुत अनिश्चित रही है, क्योंकि हिन्दी में रंगमंच की कोई समर्थ परम्परा नहीं रही है। हमारे नाटककार रंगशाला की आवश्यकताओं और अनुशासनों से अपरिचित रहकर रंगशाला की मानसिक कल्पना करके ही वस्तु-संगठन करते रहे हैं। किन्तु नाटक एक ऐसा साहित्यिक रूप है कि उसे अपनी पूर्णाभिव्यक्ति के माध्यम—रंगशाला—के अनुशासनों को स्वीकार करना ही पड़ता है, और जब कभी किसी युग में किसी राष्ट्र में रंगमंच की समर्थ परम्परा नहीं भी होती, अथवा नाटक के साहित्यिक तत्त्वों पर आग्रह करने वाले नाटककार प्रचलित रंगमंच की अवहेलना करते हैं, तब भी नाटककार अपनी समकालीन और पिछले चार-पाँच दशकों में प्रचलित रंगशाला के रूप और आकार को ध्यान में रखकर और उसी की रूढ़ियों को स्वीकार करके अपने नाटकों का वस्तु-निर्माण करते हैं।

भारतेन्दु और उनके युग के अन्य नाटककारों की रचना-पद्धतियों को यदि हम देखें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि भारतेन्दुयुगीन नाटक-साहित्य एक ओर तो संस्कृत नाटक तथा लोक नाट्य-परम्परा से प्रेरणा ले रहा था और उसके अनेक कलात्मक तत्वों को

ग्रहण कर रहा था, और दूसरी ओर पश्चिमी नाट्य-व्यवहारों का भी प्रभाव उस पर पड़ रहा था। नाटकीय कथा का अंकों के अतिरिक्त दृश्यों में विभाजन एक ऐसा ही पश्चिमी प्रभाव है। इसके साथ ही भारतेन्दुयुगीन नाटक साहित्य में मध्ययुगीन अर्द्ध-नाट्य रूपों, झाँकियों और लीला नाटकों के रचना-नियम और व्यवहार भी स्पष्ट देखे जा सकते हैं। इन नाटकों में अनेक ऐसे दृश्य हैं जिनमें रंगमंच पर उसी प्रकार की चित्रोपम झाँकियाँ सजाई जा सकती हैं, जैसी कि लीला-नाटकों में तथा अन्य धार्मिक अवसरों से सम्बन्धित शोभा-यात्राओं में सजाई जाती हैं। भारतेन्दु और उनके युग का नाटक-साहित्य अपने समय के व्यावसायिक रंगमंच से अलग है, और उसने अपने लिए एक नए अव्यावसायिक रंगमंच की सृष्टि की, फिर भी इन नाटकों में व्यावसायिक पारसी रंगमंच के प्रभाव भी स्पष्ट हैं। पारसी रंगमंच का प्रभाव हम सत्य हरिश्चन्द्र आदि मौलिक अथवा अनूदित नाटकों में देख सकते है, और उनकी नील देवी नाटिका तो नौटंकी रूप का ही साहित्यिक रूपान्तर लगती है। इसी प्रकार से भारतेन्दुयुगीन प्रहसन भी लोक-परम्परा से सम्बद्ध है, और उसका रूप-विधान 'रंगमंचविहीन' लोक रंगमंच की रूढ़ियों से सम्बद्ध है।

जयशंकरप्रसाद और उनके युग के नाटकों के रूप-विधान पर रंगशाला के प्रभावों का विवेचन कई दृष्टियों से रोचक है। एक तो प्रसाद के नाटकों में हम संस्कृत नाटकों के कुछ व्यवहार पाते हैं और दूसरे नए नाट्य-व्यवहारों का अधिक कलात्मक और समुन्नत रूप देखते हैं; और दोनों पद्धतियों के समन्वय से वे नए रचना-व्यवहारों और रूढ़ियों की सृष्टि करते हैं। इस सम्बन्ध में सबसे रोचक बात यह है कि यद्यपि प्रसाद ने पारसी नाटक कम्पनियों की निन्दा की और अपने नाटकों द्वारा रंगमंच का परिष्कार करने का बीड़ा उठाया, लेकिन वे पारसी रंगशालाओं की रूढ़ियों और रंगसज्जा के व्यवहारों से न बच सके। यदि हम प्रसाद के नाटकों की दृश्य-योजना देखें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनके नाटकों में कुछ रूढ़ घटनास्थल बार-बार रखे जाते हैं जैसे कि प्रकोष्ठ, स्कन्धावार, राजमार्ग, राजसभा, उद्यान और नदी तट। इसका कारण यह है कि रंगीन पर्दों वाले पारसी रंगमंच पर ऐसे-ही घटनास्थलों को चित्रित करने वाले पाँच-छः पर्दों का प्रचलन था। वास्तव में, प्रसाद के नाटकों का अटपटा और अस्थिर वस्तु-विधान इसी अन्तर्विरोध के कारण है कि न तो वे प्रचलित रंगमंच के रूप और व्यवहारों को स्वीकार कर सके और न उसके अनुशासनों और रूढ़ियों से ही बच सके, क्योंकि ऐसा करना किसी भी नाटककार के लिए असम्भव है। प्रायः नाटक साहित्य के इतिहास में ऐसा समय आता है जब साहित्यिक नाटककार प्रचलित रंगमंच से सन्तुष्ट नहीं होते और उसमें वे सुधार करना चाहते हैं, किन्तु वास्तव में वे रंगमंच की प्रचलित रीतियों को स्वीकार करके ही नाटक-रचना करते हैं।

प्रसाद ने अपने 'रंगमंच' नामक निबन्ध में समकालीन पारसी रंगमंच की

असाहित्यिकता की कटु आलोचना करते हुए यह कहा है कि "नाटकों की रचना रंग-मंच के लिए होना स्वाभाविक नहीं है, उचित तो यह है कि रंगमंच का निर्माण नाटकों के लिए हो।" लेकिन नाटक साहित्य का ढाई हज़ार वर्षों का इतिहास बताता है कि ऐसा कभी भी किसी भी देश और किसी भी युग में सम्भव नहीं हुआ। सभी देशों में नाटक रचना के उन्नतिकाल में श्रेष्ठ नाटककारों ने अपने नाटकों की रचना मुख्य रूप से रंगशालाओं में दर्शकों के सम्मुख प्रदर्शित करने के लिए ही की; यह तथ्य गौण है कि उनके नाटक साहित्य के रूप में भी पढ़े गए और पाठकों ने रसास्वादन किया।

समसामयिक नाटक पर रंगमंच के रूप और प्रदर्शन-व्यवहारों का गहरा प्रभाव है। आधुनिक रंगमंचीय प्रदर्शनों में इस प्रवृत्ति का विकास हुआ है कि एक ही दृश्यबन्ध पर नाटक का समस्त व्यापार प्रस्तुत किया जाता है। अतः नाटकीय कथा को इस प्रकार संगठित किया जाता है कि उसमें स्थानगत अन्विति का पूरा-पूरा निर्वाह हो। इस अनिवार्यता ने वस्तु-संगठन और दृश्य-अंक-योजना का स्वरूप ही बदल दिया है; और वह उस पुरानी पद्धति से नितान्त भिन्न हो गया है जिसमें नाटकीय कथा अनेक घटनास्थलों में संचरण कर सकती थी। इस प्रकार नए सामाजिक नाटकों में सामान्यतः एक दृश्यबन्ध और तीन अंकों की परिपाटी हो गई है। एक ही अंक के अन्तर्गत व्यापार परिवर्तन दिखाने के लिए दो या तीन दृश्यों का विधान कर लिया जाता है। यह परिवर्तन इस सहज युक्ति से व्यक्त किया जाता है कि रंगमंच पर क्षण-भर के लिए अंधेरा कर दिया जाता है, और इसी अंधेरे में दृश्य-सज्जा में आवश्यक आंशिक परिवर्तन करके नया व्यापार आरम्भ किया जाता है।

आधुनिक प्रदर्शनों में घटनास्थलों का आभास देने वाले चित्रित पर्दों का प्रयोग छोड़ देने के कारण एक ही नाटक में कई बार घटनास्थल नहीं बदला जा सकता, क्योंकि यथार्थवादी रंग-सज्जा के भारी-भरकम उपदानों को हटाना और दुबारा सजाना कठिन हो गया है। पर्दों में अब प्रायः एक अग्र पर्दे का ही प्रयोग यवनिका के रूप में होता है, और उसे एक अंक की समाप्ति पर गिराते हैं, तथा नए अंक के आरम्भ में उठाते हैं। अंक की समाप्ति पर पर्दे के प्रयोग के अतिरिक्त बीच में दृश्यों की समाप्ति पर पर्दे का प्रयोग नहीं किया जाता। प्रदर्शन में यह जो परिवर्तन आया है उसने नाट्य-रचना को बहुत प्रभावित किया है। अब पुराने पर्दों वाले रंगमंच को ध्यान में रखकर रचे जाने वाले नाटकों के समान नए नाटकों में कथानक को शिथिल और असंगठित नहीं रखा जा सकता कि पर्दों का लाभ उठाकर जब चाहें जहाँ कहीं भी व्यापार प्रस्तुत कर दें। अब तो नाटकों के क्रिया-व्यापार को इस प्रकार संगठित और एकत्रित करना पड़ता है कि अधिक से अधिक व्यापार एक ही स्थान पर घटित हों।

समसमायिक नाटक जिस प्रकार की रंगशालाओं के लिए लिखा जा रहा है, और उसके रचना-विधान में रंग-सज्जा के जिन व्यवहारों तथा जिन रंगमंच रूढ़ियों

का प्रभाव पड़ता है, उसमें आज एक विश्वव्यापी एकरूपता है। आज दुनिया भर की अनेक भाषाओं में लिखने वाले नाटककारों के रचना-व्यवहारों और शिल्प-विधान में जिस प्रकार की एकरूपता पाई जाती है, वैसी विश्व के नाटक साहित्य के इतिहास में पहले कभी नहीं रही। रंगशाला के इस नए रूप के विकास तथा रंगसज्जा के नए साधनों और शैलियों का एक संक्षिप्त ऐतिहासिक अवलोकन उपयोगी होगा।

यूरोप में रेस्टोरेशन के बाद 200 वर्षों तक धीरे-धीरे रंगमंच के रूप और प्रदर्शन के साधनों और शैलियों में परिवर्तन होता रहा। 19वीं शताब्दी के मध्य में पहुँचकर यह परिवर्तन पूरी तरह स्पष्ट हो गया और नाट्य-प्रदर्शन के साधन और रंगमंच का रूप बिलकुल बदल गए। इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण बात एक तो यह हुई कि रंगमंच पर रंग-सज्जा का विधान बहुत ही विस्तृत और जटिल हो गया और एक ऐसे यथार्थमूलक दृश्यबन्ध की सृष्टि की जा सकी जिसको बाक्स-सेट (भवन सदृश दृश्य-बन्ध) कहते हैं। रंगसज्जा के इस विधान द्वारा कमरा और उसका भीतरी भाग रंगमंच पर उसी प्रकार से दिखाया जा सका जिस प्रकार से वह सामान्य रूप में होता है; केवल चार-दीवारों में से एक दीवार ग़ायब रहती है, जिसको रंगमंच की शब्दावली में चौथी दीवार रूढ़ि (फोर्थवाल कनवेन्शन) कहते हैं। 19वीं शताब्दी के इस यथार्थवादी आन्दोलन का यह प्रभाव हुआ कि सज्जाकारों को नाटकों की कथा के युग और पात्रों के अनुकूल रंग-सज्जा करनी पड़ती थी। इस नए दृश्य-विधान के साथ-साथ रंगमंच पर प्रकाश-व्यवस्था की सुविधाएँ भी बहुत अधिक बढ़ गईं—पहले तो गैस से, फिर लाइम लाइट और अन्त में बिजली के प्रकाश से। बिजली के प्रकाश से यह पहली बार संभव हो सका कि रंगमंच का प्रत्येक कोना आलोकित किया जा सकता था और पात्रों की मुख-मुद्राएँ दर्शायी जा सकती थीं। अतः अब एप्रन—स्टेज का आगे निकला हुआ भाग—की आवश्यकता न रह गई। स्टेज का यह हिस्सा धीरे-धीरे कम कर दिया गया और स्टेज को पीछे ले जाकर रंगमुख (प्रोसीनियम आर्च) तक कर दिया गया। रंगमंच एक प्रकार के फ्रेम से जड़ गया, उसी प्रकार से जिस प्रकार कोई तस्वीर फ्रेम से जड़ी जाती है। और रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाने वाला दृश्य तस्वीर के समान हो गया। आज इसी फ्रेम-जड़ित रंगमंच पर सभी देशों में नाटकों का प्रदर्शन हो रहा है, और ऐसी ही रंगशालाओं के लिए प्रत्येक नाटककार नाटकों की रचना कर रहा है; और उसकी नाट्य-रचना की पद्धतियाँ, नियम और व्यवहार इसी रंगशाला के अनुकूल रहते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार कि एलिज़ाबेथकालीन नाटककार प्लेटफार्म-स्टेज के लिए नाटकों की रचना कर रहा था। ऐसा प्रत्येक युग और प्रत्येक भाषा के नाटक-कार को अनिवार्य रूप से करना पड़ता है। वह रंगमंच के रूप, रंग-सज्जा के साधनों और शैलियों तथा प्रकाश-व्यवस्था से प्रभावित होता है; और यही तत्त्व उसकी नाट्य-रचना के शिल्प को निर्धारित करते हैं।

पारसी नाटक कम्पनियों के लिए रचे गए नाटक स्पष्ट रूप से एक विशेष

प्रकार की रंगशाला के लिए रचे गए थे, और रंगसज्जा की एक विशेष प्रकार की शैली, व्यवहारों और रूढ़ियों की उनमें स्वीकृति है। यही कारण है कि इस कोटि का नाटक उन रंगशालाओं में सफलता के साथ खेला गया और कई दशकों तक दर्शक-समाज में उन नाटकों की धूम रही। किसी विशेष युग की रंगशालाओं के स्वरूप और रूढ़ियों को स्वीकार करके भी महान् प्रतिभा वाले नाटककार ऐसे नाटकों की सृष्टि कर जाते हैं, जो युगों बाद भिन्न रूप और भिन्न रूढ़ियों वाली रंगशालाओं में भी सफलता के साथ प्रदर्शित किए जा सकते हैं। किन्तु पारसी कम्पनियों के लिए लिखे गए नाटक सामान्य प्रतिभा वाले नाटककारों की कृतियाँ थीं, अतः इनमें इस गुण का अभाव था। पारसी कम्पनियों के लिए लिखे गए नाटकों में चमत्कारी क्रिया-व्यवहार की कल्पना रंगसज्जा की प्रचलित पद्धतियों का परिणाम है। इसी प्रकार प्रत्येक अंक का अन्त एक प्रकार के उत्कर्ष पर करना और 'टेबलो'—झाँकी दृश्य—की सृष्टि करना प्रदर्शन की प्रचलित रीति से सम्बद्ध है।

जहाँ तक हिन्दी नाटकों के रूप-विधान और रचना-व्यवहारों पर अभिनेताओं तथा दर्शकों के प्रभाव का प्रश्न हैं, रंगमंच की कोई समर्थ परम्परा न होने के कारण इस विषय का कोई व्यवस्थित विवेचन नहीं किया जा सकता। फिर भी कुछ सामान्य तथ्यों का उल्लेख उपयोगी और रोचक होगा। भारतेन्दु युग का नाटक साहित्य यद्यपि अभिनेता और उसकी कला से प्रभावित नहीं है, क्योंकि उस समय तक हिन्दी रंगमंच का कोई संगठित और व्यावसायिक रूप नहीं था, किन्तु वह अपने युग के सम्भावित दर्शक-समाज की रुचियों से निश्चत रूप से प्रभावित है। जब मैं व्यावसायिक और संगठित रंगमंच के अभाव की बात कहता हूँ तो मेरे ध्यान में पारसी पेशेवर रंगमंच है। लेकिन दुर्भाग्यवश हिन्दी का नाटक-साहित्य आरम्भ से ही दो धाराओं में बँट गया —साहित्यिक धारा और रंगमंचीय धारा—, और साहित्यिक धारा ने अभिनेता की कला से लाभ उठाकर तथा दर्शकों की रुचियों का ध्यान रखकर कभी भी अपने को सशक्त और प्राणवान बनाने का प्रयत्न नहीं किया, यही कारण है कि आज जब धीरे-धीरे रंगमंच परम्परा विकसित हो रही है तो साहित्यिक नाटक उसका पोषक अंग नहीं बन पा रहा।

इसके विपरीत पारसी कम्पनियों के रंगमंचीय नाटकों पर निश्चित रूप से अभिनेता और दर्शक वर्ग दोनों का गहरा प्रभाव पड़ा। इन कम्पनियों में नाटककार कम्पनी के साथ स्थायी रूप से रहता था, और कम्पनी के अभिनेताओं की अभिनय प्रतिभा तथा उनकी विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही नाटकीय कथाओं का चुनाव और पात्रों की रूप-कल्पना करता था। यही कारण है कि इन नाटकों में कुछ विशिष्ट प्रकार के ऐसे पात्र हैं जिनका अभिनय करने वाले कुछ अभिनेता विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए और उनको कुशलता प्राप्त हुई। यह खेद की बात है कि हमारे रंगमंच की जो कुछ भी छोटी और क्षीण परम्परा है, उसके ऐतिहासिक तथ्य भी हमको पूरी तरह से ज्ञात नहीं

हैं। इसीलिए इन कम्पनियों के नाटकों की विवेचना के इस प्रसंग में भी हम विस्तार के साथ कुछ नहीं कर सकते। यदि इस सम्बन्ध में हमको पूरी जानकारी होती तो निश्चित ही इन नाटकों के लेखन में अभिनेताओं के प्रभाव की बड़ी ही रोचक कहानी हम लिख सकते थे।

अपने युग के अथवा अपनी कम्पनी के अभिनेताओं की प्रतिभाओं और क्षमताओं को ध्यान में रखकर नाटकों में पात्रों की सर्जना सभी युगों के अत्यन्त सफल और महान् नाटककारों ने भी की है। शेक्सपियर ने यही किया और मोलियर ने भी। किन्तु अन्तर यह है कि कम प्रतिभा वाले नाटककार जब अपने समकालीन अभिनेताओं को ध्यान में रखकर नाटक लिखते हैं और पात्रों की सृष्टि करते हैं तो वे हीन कोटि के नाटक रचते हैं, जो केवल तभी तक सफलता के साथ खेले जा सकते हैं जब तक कि वे विशेष अभिनेता जीवित रहते हैं जिनको ध्यान में रखकर पात्रों की सृष्टि की गई है। किन्तु जब शेक्सपियर और मोलियर जैसे प्रतिभाशील नाटककार इस बन्धन को स्वीकार करते हैं और अपने युग के अथवा अपनी कम्पनी के विशिष्ट अभिनेताओं को ध्यान में रखकर कथानकों का चुनाव और पात्रों की सर्जना करते हैं, तब वे ऐसी महान् कृतियाँ रच देते हैं जो युगों तक सफलता के साथ खेली जा सकती हैं और प्रत्येक युग के अभिनेता उन पात्रों का नया-नया निरूपण करते हैं।

पारसी कम्पनियों के नाटकों पर दर्शक-समाज का भी बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था क्योंकि यह रंगमंच व्यावसायिक रूप से संगठित था और इसे अपने अस्तित्व के लिए अपने समकालीन दर्शकों की रुचियों का ध्यान रखना था और उनका मनोरंजन करना था। नाटक वास्तव में ऐसा साहित्य है जो इस अर्थ में अन्य साहित्य रूपों से भिन्न है कि वह एकान्त में एक व्यक्ति के अध्ययन की वस्तु न होकर, एक प्रकार से सार्वजनिक अनुभव है, क्योंकि एक पूरा दर्शक समाज एक साथ एक स्थान में बैठकर उसका रसास्वादन करता है। अत: किसी भी युग का नाटक-साहित्य दर्शक समाज की अवहेलना करके नहीं पनप सकता। उसे तो भिन्न रुचियों, संस्कारों और शिक्षा-स्तरों वाले एक पूरे दर्शक-समाज का एक साथ ही मनोरंजन करना होगा। दर्शकों की रुचियों और उनके मनोरंजन को ध्यान में रखने के कारण नाटक के गुणों को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती बल्कि इससे उसे एक प्रकार की आन्तरिक शक्ति ही मिलती है।

विभिन्न संस्कृतियों वाले समाजों की रुचियाँ ऐसी भिन्न-भिन्न होती हैं कि हमारे ही देश में विभिन्न भाषा-क्षेत्रों और नगरों का दर्शक-समाज एक दूसरे से भिन्न है। यह अपने में अध्ययन का बहुत ही रोचक विषय है कि किस प्रकार से एक भाषा का नाटक उस भाषा-क्षेत्र के नगरों में अत्यन्त सफलता के साथ खेला जाता है और जब वही अनूदित होकर दूसरी भाषाओं में दूसरे नगरों में दर्शक-समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है तो वह असफल रहता है। दर्शक-समाज की रुचियों और नाटकों के कथानकों के चुनाव तथा उसकी

रचना-पद्धतियों पर पड़ने वाले प्रभावों का कोई सामाजिक अध्ययन अभी तक नहीं किया गया है। यदि ऐसा किया जाता तो इसके बड़े ही रोचक परिणाम और निष्कर्ष निकल सकते। बम्बई में गुजराती भाषा की हल्की-फुल्की कामदियाँ और हास्य-नाटक जब अनूदित होकर कुछ वर्ष पहले दिल्ली के दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत किये गए तो वे नितान्त असफल रहे। आधुनिक समाज का ढाँचा कुछ ऐसा जटिल हो गया है कि एक ही बड़े नगर के विभिन्न भागों का दर्शक-समाज भिन्न-भिन्न प्रकार के नाटक की माँग करेगा और उसकी रुचियाँ तथा मनोरंजन की आवश्यकताएँ एक-दूसरे से भिन्न होंगी।

हिन्दी में नाटक साहित्य के अध्ययन की वर्तमान अवस्था में ब्रेंडर मैथ्यूज़ की पुस्तक 'ए स्टडी ऑफ द ड्रामा' के हिन्दी अनुवाद का विशेष महत्त्व है। आशा है कि इस महान् नाट्य-समीक्षक के विचारों और विवेचना-पद्धति का हिन्दी की समसामयिक नाट्यालोचना पर समुचित प्रभाव पड़ेगा और वह नितान्त साहित्यिकता के संकुचित घेरे से मुक्त होकर नाटक का विवेचन उसके सर्वांगीण और रंगमंच-सापेक्ष रूप में करने में समर्थ होगी। ब्रेंडर मैथ्यूज़ ने अपने ग्रन्थ में नाटक के रूप-विधान, उसकी रचना-पद्धतियों और प्रदर्शन-व्यवहारों पर पड़ने वाले विविध तत्वों—रंगशाला, रंग-सज्जा, अभिनेता तथा दर्शक-समाज—के प्रभावों का बड़ा ही सूक्ष्म और गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होंने इस विवेचन में केवल अंग्रेज़ी नाटक साहित्य से ही उदाहरण प्रस्तुत नहीं किए बल्कि यूनान, फ्राँस, जर्मनी और स्पेन आदि अनेक देशों के नाटक साहित्य के उदाहरण देकर अपने कथनों और स्थापनाओं की पुष्टि की है। उनकी विवेचना-दृष्टि में एक तीव्र पारदर्शी शक्ति है। नाटक साहित्य और रंगमंच का कई हज़ार वर्षों का इतिहास उनके समक्ष स्पष्ट है। नाटक पर पड़ने वाले विविध तत्वों के प्रभावों की चर्चा करने के साथ-साथ वे रंगमंच और नाट्य-प्रदर्शन की परम्पराओं और रूढ़ियों का बड़ा ही रोचक विश्लेषण करते हैं। नाटकीय चरित्र-चित्रण, संरचना-पद्धति, नाटक का विश्लेषण तथा तीन नाटकीय अन्वितियों नामक अध्यायों में नाटक के अध्ययन और विश्लेषण के अन्य पक्षों और पद्धतियों पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार से यह ग्रन्थ नाटक की व्यावहारिक समीक्षा का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त ग्रन्थ बन गया है।

सुरेश अवस्थी

पहला अध्याय

नाटक का अध्ययन

1

नाटक का अध्ययन करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि नाट्य-कला केवल साहित्य के क्षेत्र तक सीमित नहीं है ; और इसी तथ्य के कारण नाट्य-कला के सिद्धान्तों का अन्वेषण अधिक रोचक, पर साथ ही अधिक कठिन हो जाता है । उपन्यास, कहानी, महाकाव्य, गीतिकाव्य और निबन्ध का मूल्यांकन केवल साहित्यिक मानदण्डों से किया जा सकता है, परन्तु नाटक का नहीं । एक ओर तो इसकी अनुरूपता इतिहास से है और दूसरी ओर वक्तृत्व कला से । ऐसे कई प्रतिष्ठित इतिहासकार हुए हैं जिनके ग्रन्थ वैज्ञानिक तथ्यों से पूर्ण होने पर भी कलात्मक नहीं हैं, और संरचना तथा शैली इन दो साहित्यिक गुणों से रहित हैं । ऐसे वक्ता भी हुए हैं जिनमें अपने भावपूर्ण भाषणों से जन-समूह को उद्वेलित कर सकने की क्षमता रही है, परन्तु मुद्रित होकर उनके यही भाषण रिक्त और अर्थहीन प्रतीत होते हैं । कितने ही ऐसे नाटककार हुए हैं जिनकी कृतियाँ अपने समय में बहुत बड़े दर्शक समाज का मनोरंजन करने में सफल हुई हैं, परन्तु अब साहित्य के दृष्टिकोण से उनका विश्लेषण करने का प्रयत्न व्यर्थ ज्ञात होता है ; वे किसी भी प्रकार की गम्भीर साहित्यिक आलोचना के योग्य नहीं हैं । रंगमंच पर इनकी सफलता से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि इनमें रंगमंचीय प्रभावशीलता थी, जो नाटक का पहला आवश्यक तत्त्व है । उनमें वह आवश्यक तत्त्व था, फिर भी वे संरचना-कौशल, शैली-सौन्दर्य, कवित्व-सौष्ठव, निरूपण की सच्चाई और मनोविज्ञान की सूक्ष्मता से युक्त न थीं कि साहित्यिक स्तर तक उठ सकतीं । जो युग रंगमंच का उन्नति-काल होता है, उसमें इस प्रकार के अनेक नाटक लिखे जाते हैं; परन्तु वे रंगमंच की पत्रकारिता-मात्र बन पाते हैं; वे केवल अपने ही समय के लिए होते हैं, चिरंतनकाल के लिए नहीं ।

हम यह कह सकते हैं कि मूक-नाटिका से यह सिद्ध हो जाता है कि कम से कम नाटक का एक प्रकार ऐसा है जो साहित्य के सबसे स्पष्ट तत्त्व—शब्दों—के बिना अपना अस्तित्त्व बनाए रखता है और संतोषजनक रूप से अपने प्रयोजन की सिद्धि कर लेता है । मूक-नाटिका में क्रिया-व्यापार द्वारा केवल मुद्राओं से कथा व्यक्त की जाती है । कुछ वर्ष पहले एक उत्साही और कल्पनाप्रवण फ्रांसीसी नाटककार ने एक शब्द-रहित

नाटक—प्रॉडिगल सन की रचना की। इससे उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि मूक अभिनय को रंगमंच पर दर्शकों के लिए रोचक बनाना सम्भव है, और उसमें नाटक के सब आवश्यक तत्त्वों, विशेष रूप से करुणा और हास्य का समावेश किया जा सकता है। मूक चित्रपट के लिए बनाये गए व्यापारमूलक आख्यानों से भी यह सिद्ध हो गया कि मूक नाटिका हास्ययुक्त अथवा करुण नाटकीय कथा को इस प्रकार व्यक्त कर सकती है कि प्रत्येक दर्शक उसे तत्काल समझ ले।

यह भी ध्यान देने की बात है कि नाटक केवल साहित्य तक सीमित नहीं है, वह दूसरी कलाओं से भी सहायता ले सकता है, न केवल अभिनेता की कला से—जिसके साथ नाटककार की कला का घनिष्ठ सम्बन्ध होना ही चाहिए—वरन् संगीतकार, चित्रकार और मूर्तिकार की कला का भी वह इच्छानुसार उपयोग कर सकता है। वागनर ने अकारण यह बात नहीं कही थी कि "संगीत-नाटक भविष्य की कला कृति है, क्योंकि रंगमंच ही ऐसा स्थल है जहाँ सब कलाएँ एकत्र हो सकती हैं, और नाट्य-कला के निर्माण में प्रत्येक कला का जहाँ अपना-अपना योग होगा।"

अतः नाटक को रंगमंच से अलग करके उस पर विचार करना असम्भव है। रंगमंच से ही वह उत्पन्न हुआ है और वहीं उसे पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। सभी श्रेष्ठ नाटकों की रचना अपने समय की रंगशालाओं में लेखक के समकालीन दर्शकों के सम्मुख अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत करने के लिए की गई थी। महान् लेखकों के सब उत्कृष्ट नाटक अभिनय के लिए रचे गए थे, पढ़े जाने के लिए नहीं। वे प्रमुख रूप से रंगमंच के लिए तैयार किये गए थे, और केवल गौण रूप से अध्ययन के लिए। शेक्सपियर और मोलियर अपने जीवनकाल में अपने अमर नाटकों को प्रकाशित कराने के लिए उत्सुक नहीं थे; वे अपने नाटकों के लिए रंगमंच के अतिरिक्त और कहीं से कोई निर्णय सुनना नहीं चाहते थे। लोप द वेगा और कैल्डरॉन का भी यही विचार था। उन्होंने अपने कथानकों का निर्माण अपने समय की रंगशालाओं की स्थितियों के अनुकूल किया था, क्योंकि उन्हीं से वे परिचित थे। उन्होंने अपने नाटकों के प्रमुख पात्रों की रचना अपने समय के सर्वोत्तम अभिनेताओं के अनुरूप की थी, और परिचित परिस्थितियों में अपने नाटकों के अभिनय के अतिरिक्त और किसी तथ्य पर आधारित आलोचना को वे निश्चय ही अविश्वसनीय समझते। मोलियर ने अपने एक नाटक की भूमिका में ज़ोर देकर कहा था कि वे रंगशाला की कसौटी को ही स्वीकार करेंगे और साहित्य के परीक्षण से दूर रहना चाहेंगे। अपने एक दूसरे नाटक की प्रस्तावना में उन्होंने फिर कहा कि "प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि कामदी का प्रणयन केवल अभिनय के लिए होता है।"

2

किसी भी कला का अध्ययन करने के दो तरीके हो सकते हैं। एक तो यह कि उसके विकास को देखा जाय, दूसरे यह कि उसकी प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाय।

पहले में उस कला के इतिहास का विवेचन करते हैं, दूसरे में उसके व्यावहारिक पक्ष का। दोनों में से किसी भी पद्धति से किया हुआ परीक्षण रोचक होगा।

यदि हम किसी भी युगों में नाटक के क्रमिक विकास की जानकारी प्राप्त करना चाहें तो ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो सकेंगे जो वर्तमान को समझने के लिए अतीत की ओर देखना आवश्यक न मानने वाले लोगों को बड़ी उलझन में डाल देते हैं। यूनानी लोग अपनी त्रासदियों में कोरस क्यों रखते थे? शेक्सपियर के नाटकों में दृश्य इतनी जल्दी क्यों बदलते थे? ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर बहुत-से समीक्षक प्रयत्न करने पर भी नहीं दे सके क्योंकि उनमें ऐतिहासिक ज्ञान का अभाव था। एथेंस रंगशाला पर शोध करने से ज्ञात होता है कि यूनानियों ने त्रासदियों में कोरस को नहीं रखा था, वरन् कोरस में त्रासदी को रखा था, क्योंकि कोरस से ही उनके नाटक का विकास हुआ था। एलिज़ाबेथकालीन रंगमंच के विकास का अन्वेषण करने से हमें ज्ञात होगा कि शेक्सपियर के नाटकों में दृश्य जल्दी-जल्दी नहीं बदलते या रंग-सज्जा में परिवर्तन नहीं होता, क्योंकि शेक्सपियर के रंगमंच पर सज्जा होती ही नहीं थी जिसको बदलने की आवश्यकता होती।

दूसरी ओर यदि हम नाटक के विकास की अपेक्षा उसके तन्त्र पर अधिक ध्यान दें तो भी ठीक होगा। किसी भी कला का रसास्वादन उसके सिद्धान्तों को ठीक-ठीक समझ कर ही किया जा सकता है। निर्माण से अलग वास्तुकला पर विचार करना निश्चय ही निष्फल होगा, क्योंकि वास्तुकला का सौन्दर्य साधनों को लक्ष्य के अनुरूप ढालने में है, और वे लोग ऐसे सौन्दर्य को नहीं सराह सकते जो भवन-निर्माण-कला के तन्त्र-पक्ष के प्रति उदासीन हैं। इसी प्रकार चित्रकला के सिद्धान्तों को अच्छी तरह तभी समझा जा सकता है जब चित्रफलक पर रंगों के प्रयोग की विधियों की कुछ जानकारी हो। नाटक का तन्त्र तो इन दोनों की अपेक्षा कुछ जटिल ही है, क्योंकि वास्तुकार पत्थर और इस्पात से निर्माण करता है और चित्रकार रंगों से चित्रांकन करता है, परन्तु नाटककार की कृति की रूप-योजना इस प्रकार की होनी चाहिए कि अभिनेता के द्वारा उसका व्यक्तिकरण हो सके। नाटक की कला वास्तव में द्विमुखी है, क्योंकि इसमें लेखक और अभिनेता के प्रयत्नों का एकीकरण आवश्यक है। दोनों में से कोई भी दूसरे की सहायता के बिना अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता। महान् नाटक की रचना तभी हो सकेगी जब नाटककार का रचना-कौशल अभिनेता के अभिनय कौशल का पूर्ण लाभ उठाए।

नाटक के अध्ययन में ऐतिहासिक और व्यावहारिक दृष्टियों के महत्त्व पर विचार कर लेने के बाद हम देखते हैं कि नाटक का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करना तब तक सम्भव न होगा जब तक हम उसके ऐतिहासिक विकास और तन्त्र दोनों का परिचय प्राप्त न कर लें। जिस प्रकार संगीत का अध्ययन तभी अधिक रोचक हो सकता है जब हम विभिन्न वाद्य-यन्त्रों का अलग-अलग और उनके संयोजन से उत्पन्न आधुनिक

वाद्यवृन्द का मूल्यांकन कर लें, उसी प्रकार नाटक का अध्ययन तभी लाभकारी हो सकता है, जब हम जहाँ ये नाटक खेले गए हों उन रंगशालाओं के आकार और आकृति के परिवर्तन-परिवर्धन पर, नाटककारों के लिए अनिवार्य रूप से अनुसरणीय नाट्य-प्रदर्शन की बदलती हुई परिस्थितियों पर, और इस कला की एक शताब्दी से दूसरी शताब्दी और एक देश से दूसरे देश में बदलने वाली रूढ़ियों तथा नाटक की प्रकृति के लिए अनिवार्य रूढियों पर विचार कर लें। हमारे लिए नाट्य-कला के इतिहास की वास्तविक एकता और उसका सातत्य विशेष रूप से विचारोत्तेजक है, क्योंकि नाट्यकला की इसी प्रकृति के कारण हम उसके अतीत से वर्तमान और वर्तमान से उसके अतीत को समझ सकते हैं।

यदि हम नाटक के तन्त्र के अध्ययन के साथ नाट्यकला के इतिहास को भी देखें तो हम कई अर्थपूर्ण तुलनाएँ कर सकेंगे। उदाहरण के लिए हम यह देख सकेंगे कि मेनाण्डर की कामदियाँ अपने बाहरी रूप में मोलियर की कामदियों से बहुत मिलती हैं; उनकी कथावस्तु सम्बन्धी विभिन्नता का कारण आंशिक रूप से यह है कि नाटककारों में परस्पर अन्तर था, और आंशिक रूप से यह कि दोनों की सामाजिक परिस्थितियाँ भिन्न थीं। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में इंग्लैंड में शेरिडन और फ्रांस में बोमार्शे द्वारा रचित आचार-कामदियों का पारस्परिक अन्तर स्पष्ट करना और भी अधिक रोचक होगा।

हमें बीस शताब्दियों के अन्तराल से विभक्त दो प्रतिभाशाली नाटककारों, सॉफॉक्लीज़ और इब्सन के बीच अद्भुत समानता दिखलाई देती है, क्योंकि हम देख सकते हैं कि सॉफॉक्लीज़ के 'ईडिपस' में वही गरिमापूर्ण सरलता मिलती है, जो इब्सन के **गोस्ट्स** में। यूनानी सॉफॉक्लीज़ ने नियति की और स्कैण्डिनेवियाई इब्सन ने आनुवंशिकता के अटल होने की अभिव्यक्ति की है। यह सच है कि सॉफॉक्लीज़ ने जीवन को स्पष्ट और सम्पूर्ण रूप में देखा था, और इब्सन का अप्रकृत की ओर कुछ विकृत झुकाव जान पड़ता है; किन्तु दोनों की रचनात्मक क्षमता और अद्वितीय तन्त्र-चातुरी में आश्चर्यजनक साम्य है। फिर एक राष्ट्र का नाट्य साहित्य दूसरे राष्ट्र के नाट्य साहित्य पर जो महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है, उसकी जानकारी हमारे लिए शिक्षाप्रद होगी। कैसे स्पेन के नाटकों ने कार्नाइ की त्रासदियों को प्रभावित किया? कैसे इतालवी नाटक मोलियर की कामदियों के लिए नमूने बने? कैसे फ्रांसीसी कामदी पुनरुत्थान-काल में अंग्रेज़ी कामदी के उदय का कारण बनी? कैसे अंग्रेज़ी नाटक से लेसिंग को जर्मन नाटक में सुधार करने की प्रेरणा मिली? और कैसे इब्सन के सामाजिक नाटकों ने फ्रांस, स्पेन, जर्मनी और इंग्लैंड के नाटककारों के उद्देश्यों और आदर्शों का रूप परिवर्तन किया। निःसन्देह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी तुलनाएँ करके हमें नाट्य-कला का अधिक घनिष्ठ परिचय प्राप्त होगा।

3

परन्तु हमें सदा यह ध्यान रखना होगा कि शेरडिन और बोमार्शे, शेक्सपियर और मोलियर, सॉफॉक्लीज़ और इब्सन में परस्पर चाहे जितना अन्तर हो, एक बात उनमें समान है, और वह यह है कि वे साहित्य के विशेष अंग के रूप में विकसित नाटकीय परम्परा का प्रतिधिनिधित्व करते हैं, और उनका आविर्भाव उनके पहले के असंख्य अज्ञात प्रयोगकर्ताओं के कारण ही सम्भव हो सका। इन कुशल रचनाकारों की महान् कृतियाँ इनके पहले की धुँधली शताब्दियों में किये गए लम्बे प्रयत्नों का पूर्ण विकसित रूप हैं। वे एक कला के विकास की चरम परिणति हैं, जिसके अंकुर मानवता के प्रारम्भिक इतिहास में खोजे जा सकते हैं। सुसंस्कृत और आत्मचेता जातियों में आदिम मानव की प्रथम क्रीड़ा-वृत्ति की चरम अभिव्यक्ति है। साहित्यिक नाटक जिसमें नाटकीय प्रभावशीलता के साथ संरचना और शैली की सूक्ष्म विशिष्टताओं का समावेश होता है, उसी असाहित्यिक नाटक का विकसित रूप है जिसका उद्भव सभ्यता के प्रारम्भिक काल में हो गया था। जब मानव असभ्यता और बर्बरता के निम्न स्तरों पर होता है तभी नाटक की प्रवृत्ति बलपूर्वक अपनी अभिव्यक्ति करती है, परन्तु उसका स्वरूप बड़ा अनगढ़ और स्थूल होता है। कितनी ही शताब्दियों के प्रयास के बाद नाटक का एक सुगठित रूप सामने आता है; यद्यपि प्रगति के बहुत प्रारम्भिक काल में ही हमें मानव की दूसरे का रूप भरने और अपने को बिसरा देने की इच्छा के दर्शन हो जाते हैं; यही इच्छा नाट्य कला का आधार है। साथ ही उसी प्रारम्भिक काल में इसी इच्छा के पूरक रूप में इस पररूपण का दर्शक बनकर आनन्द लेने की इच्छा भी स्पष्ट हो जाती है।

कुछ समय पहले तक सामान्य विश्वास यह था कि किसी भी साहित्य के इतिहास में नाटक का प्रादुर्भाव सबसे देर में होता है। यह विश्वास विक्टर ह्यूगो ने क्रामवेल के आमुख में बड़े शब्दाडम्बर से अभिव्यक्त किया है। इसमें वे कहते हैं कि समयानुक्रम में पहले गीतिकाव्य, उसके पश्चात् महाकाव्य और अन्त में नाटक आता है। एक अर्थ में यह कहना सच भी है। साहित्यिक नाटक की, जो कवित्वपूर्ण अथवा दार्शनिक तत्त्वों से युक्त होता है, रचना तभी होती है जब काव्य और महाकाव्य भाषा में लोच और उन्मेष भर देते हैं; और वे कथाएँ भी गढ़ चुकते हैं जिनका साहित्यिक नाटककार उपयोग करता है। परन्तु मनोवैज्ञानिकों की शोधों से प्रमाणित हो चुका है कि प्रारम्भिक गीति-काव्यों में भी नाटकीय तत्त्व होते हैं और उनसे भी पहले समाज में एक अनगढ़ नाट्य-तत्त्व विद्यमान रहता है।

लतूर्नो का कथन है कि "नाटक अपने मूल रूप में साहित्यिक सौन्दर्य-शस्त्र के उद्गम तक में देखा जा सकता है, क्योंकि आदिम जातियों का समस्त साहित्य संगीत और विडम्बनकारी नृत्य ही होते हैं; दृश्य सज्जा के कुछ तत्त्व हमें तस्मानिया की एक अत्यन्त असभ्य जाति में भी मिले हैं। वास्तव में दृश्य कविताएँ सबसे पुरातन हैं और

दूसरों के लिए नमूना भी बनती हैं। अनुकरण, गीत, वाणी और वाद्य-संगीत का एक साथ प्रयोग करके प्राचीन काल का नृत्यगीत-नाटक सौन्दर्य-शास्त्र का वह रूप था जो दर्शकों और अभिनेताओं को प्रभावित करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त था। साथ ही वह एक मनोवैज्ञानिक रूप में अकांक्षा को सन्तुष्ट करता है—मानसिक चित्रों का बाह्य प्रक्षेपण, जो कुछ मस्तिष्क में स्मृति अथवा इच्छा रूप में विद्यमान है उसका व्यक्तिकरण। सभ्य नाटक इसी नृत्य-गीत-नाटक का विकसित स्वरूप है; और अब इसका प्रारम्भिक गीतिरूप न रहने पर भी इसकी शक्ति और आकर्षण वैसा ही बना हुआ है।"

हर्न का दृष्टिकोण भी यही है :

"उनका कथन है कि एक कलाकृति के समस्त उपकरणों से युक्त साहित्यिक नाटक संस्कृति के बहुत ऊँचे स्तर पर ही सम्भव है, इस कारण सौन्दर्य-शास्त्र के अधिकतर लेखकों ने इसे सब कला-रूपों में अंतिम कहा है। परन्तु आदिम जातियों की कृतियों पर विचार करते समय हमको कुछ नीचा सौन्दर्य मानक अपनाना होगा। यद्यपि विकास के इस स्तर पर हमें त्रासदी के और सच्ची कामदी के भी दर्शन नहीं होते, हम यह तो देख ही सकते हैं कि उन जातियों में भी जहाँ अभी किसी प्रकार का महाकाव्य नहीं रचा गया, और जिनका गीति-काव्य कुछ लययुक्त अर्थहीन शब्द-बंधों तक ही सीमित है, सरल प्रहसन, मूक नाटक और मूक-नाटकीय नृत्य के दर्शन हो जाते हैं। और यदि हम नाटक को व्यापक अर्थ में लें, जिसके अनुसार कार्य द्वारा अनुकृत सब प्रदर्शनों को इसमें सम्मिलित किया जाएगा, तो नाटक सब अनुकरणात्मक कलाओं से प्राचीन कहा जाएगा। नाटक चित्रात्मक अथवा अक्षरात्मक दोनों ही प्रकार की लिपियों से प्राचीन है, शायद यह भाषा से भी प्राचीन है। विचार के बाह्य संकेतों के रूप में कार्य शब्दों से पहले आता है।"

ग्रॉस ने भी इस बात को इतना ही ज़ोर देकर कहा है :

"साहित्य और सौन्दर्य-शास्त्र में अधिकतर इतिहास लेखकों ने नाटक को काव्य का नवीनतम रूप कहा है; परन्तु हम कुछ सीमा तक अधिकार के साथ उसे काव्य का प्राचीनतम रूप कह सकते हैं। नाटक का मुख्य लक्षण वाणी और अनुकरण द्वारा किसी घटना का प्रदर्शन करना है। इस अर्थ में लगभग सभी प्राचीन कथाएँ नाटक कही जा सकती हैं क्योंकि कथावाचक केवल इतिहास ही नहीं बताता वरन् अपने शब्दों को मुद्राओं और उदाहरणों से सजीव भी बनाता चलता है। बच्चे और आदिम जातियाँ कोई भी कथा, उसके अनुरूप चेष्टाएँ और मुद्राएँ दिखाए बिना नहीं कह सकतीं। विशुद्ध कथावाचक के लिए भाषा और अपने शरीर पर पूर्ण अधिकार की आवश्यकता है, जो सभ्य लोगों में भी कम होता है, और बर्बरों में तो कभी नहीं मिल सकता। इस कारण काव्य के तीनों प्रमुख प्रकारों में विशुद्ध महाकाव्य शायद सबसे अन्तिम है।"

ग्रॉस आगे कहते हैं कि "नाटक का प्रचलित अर्थ किसी घटना का अनुकरणात्मक ढंग से वर्णन नहीं है वरन् अनुकरण और शब्दों के माध्यम से कई व्यक्तियों द्वारा उसका प्रदर्शन है।" उसे इस बात का निश्चय है कि हम संस्कृति के अत्यन्त प्रारम्भिक स्तर पर भी इस संकुचित अर्थ में नाटक के अस्तित्व के प्रमाण दे सकते हैं। वह कहते हैं कि "ये आदि नाटक आंशिक रूप से अनुकरणात्मक हैं। शिकार अथवा युद्ध की अनुकृति के प्रदर्शन मात्र हैं। परन्तु उनमें सतत विकास की अवस्था में कार्य को प्रदर्शित करने के स्तर तक उठने की प्रवृत्ति बराबर रहती है।" वे स्वीकार करते हैं कि शिकारी जातियों के नाटकीय प्रदर्शनों में "शब्दों का इतना कम अंश होता है कि वे हमारे नाटकों की अपेक्षा मूक नाटिकाओं से अधिक समानता रखते हैं।" किन्तु मूक नाटिका में भी उतनी ही सच्ची नाटकीयता हो सकती है जितनी संवाद-युक्त नाटक में।

4

प्रोफेसर ग्रॉस के उद्धरणों में एक बहुत महत्त्वपूर्ण अंश है, जहाँ वे बच्चों और आदिम जातियों को एक श्रेणी में रखते हैं। यदि हम आदिम जातियों की भावनाओं और कार्यों को समझना चाहते हैं तो हमें बालकों के व्यवहार के अध्ययन से बड़ी सहायता मिल सकती है। अब यह बात आमतौर पर मान ली गई है कि अपने शिशु-काल और बालपन में हम मानवता के असभ्यता से सभ्यता की ओर क्रमिक विकास की लगभग सभी स्थितियों को फिर से पार करते हैं। बालकों में अनुकृति और पररूपण की वही प्रवृत्ति पाई जाती है, जो आदिम जातियों में मिलती है। प्रोफेसर विलियम जेम्स ने कहा है कि "सफल अनुकृति दर्शकों और अभिनेता दोनों ही को एक विशेष प्रकार की सौन्दर्य-अनुभूति प्रदान करती है; और नाटकीय मनोवेग में जिसका अर्थ है किसी के द्वारा दूसरे का रूप धारण करना, अनुकृति के आनन्द का यह तत्त्व आ जाता है।" वे कहते हैं कि छोटे बालकों में यह प्रवृत्ति बड़ी तीव्र होती है। उन्होंने अपने एक बच्चे का उदाहरण दिया है जिसको तीन वर्ष की उम्र में ही लकड़बग्घा या घोड़ा-गाड़ी अथवा और भी कोई कल्पित वस्तु बनकर खेलना रुचिकर लगता था। इससे स्पष्ट है कि बालक के लिए इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता था कि वह सजीव प्राणी का रूप भर रहा था अथवा निर्जीव वस्तु का। यह बाल-मनोवृत्ति तीन छोटे लड़कों की इस परिचित कथा से और भी स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने बताया कि वे गाड़ी-गाड़ी खेल रहे थे, बड़ा बालक चालक बनता था, दूसरा गाड़ी और तीसरा गैसोलिन की गन्ध बनकर पीछे दौड़ता था।

बच्चों की दूसरे का रूप भरने की प्रवृत्ति का अधिक स्पष्ट उदाहरण **टॉम साइयर के कारनामे** के एक परिच्छेद में मिलता है। टॉम अपनी चाची के घर की चहारदीवारी पर सफेदी करने का अप्रिय कार्य करने जा रहा था, तभी उसका मित्र बेन राजर्स दिखाई दिया, सेव खाता हुआ और थोड़ी-थोड़ी देर पर चीखता हुआ, डिंग-

डाँग-डाँग, डिंग-डाँग-डाँग करता हुआ, क्योंकि वह भाप का जहाज़ बना हुआ था। पास आने पर उसने अपनी चाल धीमी की, गली के बीच में गया, फिर दाहिनी ओर मुड़ा और बड़े प्रयत्न और आवेग के साथ गोल घूमा क्योंकि उस समय वह मिसूरी नदी की नकल कर रहा था, और अपने को नौ फीट पानी लेने की स्थिति में दरसा रहा था। वह नाव, कैप्टेन और इंजन-घंटी सभी कुछ था, और इसी से वह स्वयं को आदेश देने और लेने की कल्पना कर रहा था।

एक मित्र ने एक बार मुझे अपने दो बच्चों द्वारा खेले गए एक खेल का वर्णन लिखा था। एक दिन वे बालक एक पुराने खण्डहर में बैठे हुए थे। लड़के ने दुःख-भरी आवाज़ में कहा कि वे छोटे आइज़क की बलि दे रहे थे; आइज़क था एक टूटा खिलौना। झाड़ी के नीचे की एक ईंट मेढ़ा बनाई गई थी। उन्होंने बताया कि आइज़क के नीचे वे आग जला चुके हैं; तत्काल ही यह स्वीकार किया कि आग झूठ-मूठ की थी। और जब पूछा गया कि अब्राहम कौन बना था? तो छोटी लड़की ने तत्काल उत्तर दिया, हम थे। लड़की चार वर्ष की थी और लड़का तीन का। इन बच्चों द्वारा खेले गए इस दृश्य में और असभ्यों के नाटकों में समानता स्पष्टतः देखी जा सकती है। दोनों में पररूपण की इच्छा, कार्य-व्यापार में भाग लेने की प्रवृत्ति और प्रतीति-छल की भावना निहित है।

5

असभ्यों के अविकसित नाटकों और बच्चों के छोटे खेलों में वास्तविक अन्तर यह है कि बच्चे व्यक्तियों के रूप में अभिनय करते हैं और असभ्य व्यक्ति समूहों में। असभ्यों के नाटकों में सामुदायिक तत्त्व रहता है। वर्ष की कुछ ऋतुओं में विशेषकर वसंत और फ़सल पकने पर तथा गर्मियों और सर्दियों के मध्य में पूरा समूह प्रदर्शन में भाग लेता है; और यदि पूरा नहीं तो एक प्रतिनिधि-दल जो सबकी भावनाओं को व्यक्त करता है। प्रोफेसर गुमेयर कहते हैं कि "काव्य के प्रारम्भिक स्तरों पर देखा जाता है कि कुछ लोगों का समूह, जो लिखने और पढ़ने में कुशल नहीं है, जिसे न अपने को भविष्य में प्रक्षेपित करने की क्षमता है, न अतीत के साथ तुलना करने की, न अपने अनुभवों को दूसरे समूहों के अनुभव से एकीकृत करना ही उनके लिए सम्भव है, उत्सव-भाव से एकत्र होकर, उच्च स्वर के गीतों, पूरी लय-ताल और उत्साहपूर्ण नृत्यों द्वारा किसी स्थानीय और सामयिक महत्त्व और सामान्य हित की समस्या पर अपनी भावनाएँ अभिव्यक्त करता है। यही विकास-क्रम में काव्य का मानवीय आधार है; काव्य के विकास की प्रक्रिया में यह सामाजिक तत्त्व व्यक्तितत्त्व से भिन्न है।

कभी-कभी व्यक्ति-तत्त्व कुछ समय के पश्चात् समाज-तत्त्व से विकसित होता है, अथवा उसमें ऊपर से मिल जाता है, और तभी नाटक का शीघ्रता से विकास हो सकता है। इसी प्रकार यूनानियों को अपने महान् नाटक की उपलब्धि हुई थी। बिलकुल सामान्य रूप से आरम्भ होकर यह नाटक उच्चतम शिखर तक पहुँचा था। जैसा कि

रिचार्ड जेब ने हमें बताया है, यूनानी नाटक का विकास रौद्र स्तोत्रों से हुआ था। मूलतः यह स्तोत्र डायनॉसियस देवता की प्रशस्ति हुआ करती थी। इस सुरा-देवता की प्रशस्ति अवश्य ही उन्मुक्त और भावावेशपूर्ण रहा करती होगी और इसके साथ मुद्राएँ भी प्रस्तुत की जाती होंगी। जब एरियन ने सेटर देवी के रौद्र स्तोत्रों की रचना की तो डायनोसिस-गीत विशेष रूप से उपयुक्त गायकों द्वारा गाए जाने के लिए दिए, और उन्होंने इनको साधारण कोरस से अधिक सजीव और विशेषता-युक्त बनाया था। थेसपिस ऐसे रौद्र स्तोत्र के प्रदर्शन में अपने वृन्दागायकों को सम्बोधित करके कुछ काव्यांश पढ़ते थे और स्वयं भी सेटर का रूप धरते थे। परन्तु इस प्रकार यह मनोरंजन नाटकीय नहीं बन पाता था, वृन्दगायकों को सम्बोधित करके काव्य पाठ करने वाला कार्य का वर्णन करता था, परन्तु व्यापार दर्शकों की दृष्टि के सम्मुख घटित होता हुआ नहीं प्रदर्शित होता था। एक काव्य पाठ करने वाले के स्थान पर एस्किलॅस ने दो व्यक्ति रखे। ये दोनों वृन्दगायकों से अलग थे। ये दोनों व्यक्ति आपस में वार्त्तालाप करते और कार्य प्रस्तुत कर सकते थे। इस परिवर्तन द्वारा एस्किलॅस ने प्रगीत-त्रासदी का स्वरूप ही बदल दिया और नाटक की सृष्टि की। अब इस मनोरंजन का मुख्य अंग अभिनेताओं का वार्त्तालाप हो गया; यद्यपि कोरस अब भी महत्त्वपूर्ण था, परन्तु उसका महत्त्व पहले की अपेक्षा घट गया।

सॉफॉक्लीज़ ने तीसरे अभिनेता का प्रयोग किया। ये तीनों कई भूमिकाओं में सम्मुख आते थे। अब कथा को कार्य-व्यापार के रूप में प्रदर्शित करना सम्भव हो गया था, और दर्शकों के सम्मुख मानव-ईहा का वह द्वन्द्व प्रस्तुत करना सम्भव हो सका, जो सदा से नाटक का स्रोत रहा है।

एक असंस्कृत सामूहिक गान से महान् यूनानी नाटक के क्रमिक विकास की यही कड़ियाँ हैं। अधिकतर आधुनिक भाषाओं के नाटकों के विकास-क्रम की कथा भी इससे बहुत भिन्न नहीं है। सरल अनुकरणात्मक संवादों से क्रिसमस और ईस्टर के अवसर पर मध्ययुगीन गिरजाघरों की धार्मिक क्रियाओं के रूप में विकसित हुए थे। क्रिसमस के अवसर पर कोरस का एक सदस्य ईसा के जन्म के शुभ संवाद को सुनाने के लिए अलग कर दिया जाता था और कोरस के एक समूह को उन चरवाहों की भूमिका निभानी होती थी जो एक तारे के निर्देशन में मसीह तक पहुँचते थे। ईस्टर के समय तीन पादरी मकबरे में तीनों मॉरीसों के लिए निश्चित शब्दों का उच्चारण करते थे, और एक अन्य व्यक्ति माली के रूप में सामने आता था। धीरे-धीरे क्रिसमस-चक्र के वार्त्तालापों, स्तुतियों और आख्यानों का चक्र ईस्टर-चक्र से मिला दिया गया और 'पैशन' नाटकों का जन्म हुआ। इनके कथानकों का निर्माण गिरजाघर के किसी विशिष्ट दिन की प्रार्थना के समय उपयोग होने के लिए किया गया था, और उनमें से हरेक गिरजाघर के पादरी अथवा वृन्दगायकों द्वारा पहले लैटिन में प्रस्तुत किया जा चुका था; और इसके बाद जब यह 'मिस्टरी' बहुत अधिक विकसित हो गई तो गिरजा-

घर पर बोझ-सी बन गई। अतः उससे निकलकर साधारण जन के हाथ में आई और देशी भाषाओं में उसका अनुवाद हो गया। साधारणजन ने इसको लेकर गिरजा के भीतर की सभी परम्पराओं को वैसा का वैसा ही रखना चाहा, फिर भी कालान्तर में वही ढँग लौकिक कथाओं के साथ भी अपनाए जाने लगे। इस प्रकार हर देशीय भाषा में नाटक का उद्गम धार्मिक कृत्यों से हुआ; उसके बाद हरेक में यह अपनी-अपनी जातीय विशेषताओं से युक्त होकर विकसित हुआ जिससे आगे चलकर हर भाषा के नाटक में बहुत अन्तर हो गया, यद्यपि सभी का उद्भव लैटिन से हुआ।

जब हम नाटकीय रूप के विकास का अध्ययन करेंगे तो देखेंगे कि पहले जो कुछ सामूहिक था वह धीरे-धीरे वैयक्तिक होता चलता है, और पहले जो स्वतः उद्भूत था, वह धीरे-धीरे पारम्परिक बनता गया। समय पाकर रीति-परम्परा का निश्चित रूप बनती जाती है, और उन स्थापित परम्पराओं से हटकर एक नया रूप, एक नया क़दम प्रारम्भ होता है। तब कथा को कार्य-व्यापार के रूप में प्रदर्शित करने का एक स्वीकृत विधान जन्म लेता है, जो अभिनेताओं और दर्शकों के लिए समान रूप से संतोषजनक होता है, और जैसे-जैसे साधारण अभिनेतागण व्यवसाय-निपुण बनते जाते हैं, और उनमें यह चेतना आती है कि वे एक कला का प्रदर्शन कर रहे हैं, वैसे-वैसे यह विधान अधिक प्रभावशाली होता जाता है। उनके प्रस्तुत किये हुए नाटक भले ही असंस्कृत और अविकसित हों, उनकी कला प्रारम्भिक स्तर पर हो, परन्तु वे प्राणवान होते हैं और उनमें प्रगति की सम्भावना होती है। इस अवस्था में भी नाटक असाहित्यिक होता है, उसमें न संरचना का कौशल होता है, न शैली का निखार और न मानवीय प्रकृति का ज्ञान ही, किन्तु नाटकीय विधान का रूप निश्चित होने लगता है, और यह विधान साहित्यिक कलाकार के द्वारा सँवारे जाने योग्य बनता जाता है।

पहले की असाहित्यिक कृतियाँ सुरक्षित नहीं हैं, इससे अब कोई निश्चयपूर्वक नहीं बता सकता कि किस समय से यूनानी नाटक साहित्यिक रूप ग्रहण करने लगा। स्थायी तो साहित्य होता है, असाहित्यिक नाटक को बचाने की न चेष्टा होती है, न उसकी रक्षा की जाती है। एस्किलॅस के कुछ नाटक हमें प्राप्त हैं, वे सम्भवतः उसके सर्वोत्तम नाटक होंगे क्योंकि सर्वोत्तम नाटकों की ही कई प्रतियाँ बनी होंगी, और वे निःसंदेह साहित्यिक नाटक हैं। परन्तु वृन्दगायकों के साथ की थेसपिस की वार्तालाप-मालाएँ नष्ट हो चुकी हैं, और हमें यह मालूम नहीं हो सकता कि वे साहित्यिक कोटि तक पहुँच सकी थीं, अथवा नहीं। मध्य युग में देशीय भाषाओं के लैटिन का स्थान ले लेने के काफी बाद ही हमें नाटकों में साहित्यिक गुण की झलक मिलती है। और अधिकतर धार्मिक नाटक (मिस्टरी और मोरैलिटी) जो बहुत अधिक मात्रा में सुरक्षित हैं, नितान्त अरोचक हैं। चाहे वे जर्मन भाषा के या फ्रांसीसी, इतालवी अथवा अंग्रेजी किसी भी भाषा के हों। इंग्लैंड में मिस्टरी नाटकों के बाद वृत्त-नाटकों का आविर्भाव हुआ। ये नाटक साहित्यिकों के सुधारने-बनाने के बहुत पहले से जनता के मन बहलाने

का काम कर रहे थे। फ्रांस में हार्डी के बाद कार्नाइ के आने पर नाटक काव्य के उच्च स्तर तक उठा।

कार्नाइ ने पहले बहुत कुछ वही किया जो हार्डी ने किया था, पर उससे बहुत अच्छी तरह, क्योंकि उसमें नाटक रचने की जन्मजात प्रतिभा थी। इसी प्रकार मार्लो ने वही किया जो उसके पूर्व-लेखकों ने किया था। उसने उसी साधारण ढांचे का प्रयोग किया परन्तु पात्रों के मुख में शक्तिशाली संवाद रखे, जिनके सृजन की क्षमता मार्लो की अपनी थी। नाटक के विकास के किसी भी काल में, कार्नाई के दिन हों या मार्लो के, अथवा वर्तमान समय में, बाहरी रूप, ढाँचा और सामग्री का उपयोग करने का तरीका साहित्यिक और असाहित्यिक नाटकों का एक-सा होता है, केवल अन्तरात्मा भिन्न होती है। सिड की स्पेनी त्रासदी अब रक्त-त्रासदी नाम से कहे जाने वाले असाधारण नाटकों की श्रेणी में आती है और उसी प्रकार शेक्सपियर का हैमलेट भी। विक्टर ह्यूगों का रुई ब्ला निश्चय ही मेलोड्रामा है, परन्तु उसकी गीतिमयता ही उसे समकालीन मेलोड्रामा से, जिसके अनुरूप वह रचा गया था, पृथक् करती है। इब्सन और हर्व्यू के सामाजिक नाटकों तथा बैरी और शॉ की कामादियों का रचना-विधान वही है जो बाज़ारू लेखकों द्वारा आदेश पर रचे गए नाटकों का। वह नाटक जो साहित्य के अंतर्गत नहीं आता, पत्रकारिता का ही एक स्वरूप है, जिसकी उपयोगिता केवल क्षणिक है; यह अंतर केवल बाह्य ही नहीं आंतरिक है। इस बात का अनुभव करना इसकी परिभाषा देने की अपेक्षा कहीं सरल है। जिस नाटक का हम प्रसन्नता से साहित्यिक कहकर स्वागत करते हैं, वह रंगमंच पर सफल होता है, अपने दर्शकों का वर्ष प्रतिवर्ष, शत प्रतिशत मनोरंजन करता है, इसलिए नहीं कि उसमें अपने में ही कोई साहित्यिक विशेषताएँ हैं, वरन् इसलिए कि उसमें वह अमर और अनिवार्य तत्त्व हैं, जिनके कारण वह कथा रंगमंच पर कार्य-व्यापार के रूप में प्रस्तुत होने पर, दर्शकों को प्रसन्न करती है।

नाटक साहित्य के इतिहासकार के लिए किसी काल के असाहित्यिक नाटकों की उपेक्षा कर देने की संभावना रहती है, क्योंकि यद्यपि अपने समय में वे निश्चित रूप से अभिनय योग्य होते हैं अब आगे चलकर पढ़ने योग्य भी नहीं लगते। इन असाहित्यिक नाटकों के अप्राप्त होने की भी संभावना रहती है, चाहे इनकी रक्षा की भी गई हो, यद्यपि रक्षा करना विरल है। यूनान में रचे गए हज़ारों नाटकों में से अब हमें सॉफॉक्लीज़ एस्किलस और यूरिपिडीज़ की कुछ वरेण्य रचनाएँ ही उपलब्ध हैं। इंग्लैण्ड में शेक्सपियर के जीवन काल में ही रचे गए हज़ारों नाटकों में से अब प्राप्त नाटकों की संख्या सैकड़ों में ही है। एलिज़ाबेथ के समय की जितनी असाहित्यिक रचनाएँ हमें प्राप्त हैं, उनसे उस युग की नाटक सम्बन्धी स्थितियों के सम्बन्ध में और वास्तविक नाट्य प्रदर्शन की परिस्थितियों के सम्बन्ध में—जो शेक्सपियर और हेवुड दोनों ही के

लिए एक समान थीं—अमूल्य जानकारी प्राप्त होती है, परन्तु अपने में ये रचनाएँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

चार्ल्सलैम्ब ने हेवुड को 'गद्य शेक्सपियर' का नाम दिया था, एवुमन किल्ड विद काइंडनेस और एक-दो अन्य नाटकों के कुछ अंशों में ही हेवुड साहित्यिक स्तर तक पहुँच पाते हैं। हेवुड बड़े कुशल नाटककार थे, उन्होंने बहुत-से नाटक लिखे, परन्तु उनकी कृतियाँ अधिकतर चलताऊ और अखबारी हैं; उस समय अभिनय के योग्य तो वे थीं परन्तु अब तो पठन योग्य भी नहीं रह गई हैं। फिर भी हेवुड के नाटक उन्हीं दर्शकों के लिए रचे गए थे जिनके लिए शेक्सपियर के और वे उन्हीं नाटक-सम्बन्धी स्थितियों के अनुकूल हैं। फ्रांस में उन्नीसवीं सदी में स्क्रीब हुए जो नाटक के स्वामी, नाट्यकला के आचार्य, और अद्भुत कुशलता-सम्पन्न शिल्पी थे। परन्तु वे रंगमंच के आदमी थे, साहित्य के नहीं, और उनके असंख्य नाटकों में से बहुत ही कम ऐसे हैं जिनमें तनिक भी साहित्यिकता है। परन्तु जब ड्यूमा, और ऑज़िये ने स्क्रीब का अनुसरण किया और उनके रचना-विधान को इतना विस्तृत किया कि उनमें उनकी जीवन दृष्टि समा सके तो वे अपने नाटकों को साहित्यिक स्तर तक ला सके। वे रंगमंच और साहित्य दोनों के ही व्यक्ति थे और उनके नाटक अभिनेय होने के साथ-साथ पठनीय भी थे।

6

जब हम इस बात पर विचार करना चाहें कि कोई नाटक साहित्यिक कहे जाने योग्य हैं अथवा नहीं, तो हमें अपने मस्तिष्क से तथाकथित साहित्यिक गुण के सम्बन्ध में आजकल प्रचलित एक भ्रामक धारणा को हटा देना चाहिए। सच्चा साहित्यिक गुण उत्तम लेखन और सुन्दर शब्द-समूहों अर्थात् केवल शैली का विषय नहीं है। नाटक की सच्ची साहित्यिकता, उसके शब्दों में नहीं वरन् उसकी दृढ़ संरचना में, उसके कथानक की तर्क-संगति में, उसके चरित्र-चित्रण की सजीवता में निहित रहती है। सुन्दर लेखन-कला से कभी उत्तम नाटक की रचना नहीं हुई और उत्तम नाटक, अपने समस्त शब्दों से अलग होकर भी, चाहे वे कितने ही भव्य और सजीव क्यों न हों—उत्तम नाटक ही रहता है। लेसिंग और सार्से की तरह अरस्तू ने भी यह तथ्य स्पष्टतः समझा था और कथानक के सर्वाधिक महत्त्व, कथा की रोचकता और उसके मनोरंजक अभिनय के महत्त्व के विषय में बहुत ज़ोर दिया था। हम निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि उस महान् यूनानी आलोचक ने किसी आधुनिक फ्रांसीसी आलोचक की यह उक्ति कि किसी भी अच्छे नाटक का आधार सदैव मूकनाटिका ही होती है, स्वीकार कर ली होगी। इसका तात्पर्य यह है कि कहानी इतनी सशक्त और स्पष्ट होनी चाहिए कि वह स्वयं में ही पर्याप्त हो, फिर चाहे अच्छी तरह लिखी गई हो या बुरी तरह, चाहे दर्शक उसमें समाविष्ट काव्यमयता और दर्शन को समझ सकें अथवा नहीं। हैमलेट में हमें बहुत-सी विशेषताएँ मिल सकती हैं, उसे काव्यनाटक

की सर्वोत्कृष्ट कृति कहा जा सकता है; परन्तु यदि इसका अभिनय गूँगों और बहरों के सामने भी किया जाय तो वे इससे प्रभावित होंगे। यद्यपि वे काव्य-गुणों का आस्वादन नहीं कर पाएँगे, परन्तु इसके भव्य नाटकीय कथानक की अपूर्व क्षमता से अवश्य प्रभावित होंगे।

यह बात साहित्यिक और असाहित्यिक दोनों ही प्रकार के नाटककारों ने अनुभव की है। स्क्रीब कहा करता था कि यदि विषय अच्छा हो, कथाबन्ध स्पष्ट और सम्पूर्ण हो तो मैं अपने नौकर से भी नाटक लिखवा सकता हूँ, क्योंकि वह उस प्रसंग के द्वारा नियंत्रित रहेगा और नाटक सफल होगा। स्क्रीब नाटक का निपुण शिल्पी मात्र था, अतः उसकी इस उक्ति से हमें आश्चर्य नहीं होता। परन्तु सच तो यह है कि कोई भी सच्चा नाटककार, कवि अथवा गद्यलेखक, इस पर बहुत आपत्ति नहीं करेगा—क्योंकि यह कथन सत्य का अतिरंजन है, मिथ्या नहीं। प्लूटार्क ने लिखा है कि एक बार श्रेष्ठ यूनानी कामदी लेखक मेनांडर से उनके नये नाटक के विषय में पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया—'वह बस तैयार है, मुझे बस केवल उसके छन्द लिखने हैं।' रासीन के पुत्र ने अपने पिता के विषय में ऐसे ही प्रश्न और उत्तर का उल्लेख किया है, और विशुद्ध साहित्यिक मानकों से देखने पर रासीन और मेनांडर की उत्कृष्ट स्थिति के विषय में कोई सन्देह नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि साहित्यिक गुण का समावेश नाटक में अतिरिक्त रूप से किया जा सकता है, परन्तु उसके गुण के लिए कोई अनिवार्य तत्त्व नहीं है। और जैसे कोई भी नाटक संरचना के कौशल, चरित्रों की सजीवता, संवादों की आनन्दमयता के द्वारा साहित्यिक स्तर पर उठाये बिना महान् नहीं हो सकता है, वैसे ही केवल इन्हीं गुणों के समावेश से वह जनता के लिए आकर्षक भी नहीं बन जाता। जोज़ेफ-जैफर्सन रंगमंच के लम्बे अनुभव के बाद कहते हैं: 'नाटक में जितनी भी साहित्यिकता रखना चाहो रखो, परन्तु वह नाटक के कार्य-व्यापार में बाधा न डालने पाये।' उन्होंने और भी कहा: 'यदि कथा और संगठन ठीक हो तो उत्तम-लेखन कला का अभाव नाटक को आघात नहीं पहुँचाता। साहित्यिक गुण यदि कार्य व्यापार के अनुगत होगा तभी नाटक की सफलता को बढ़ा सकता है।' जैफर्सन की यह उक्ति अरस्तू की उस बात की प्रतिध्वनिमात्र है, जो उन्होंने दो हज़ार वर्ष पहले कही थी।

मात्र साहित्यिक दृष्टि से आलोचना करने वाले के लिए यह एक कठिन उक्ति है, चाहे इसे यूनानी दार्शनिक ने कहा हो अथवा अमरीकी कामदीकारों ने; परन्तु जो नाटक का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए इसको पूरी तरह मन में रख लेना आवश्यक है। साहित्यिक आलोचक में मात्र साहित्यिक गुणों को देखने की क्षमता होती है, जिसका उतना अधिक महत्त्व नहीं होता; वह उस बाह्य कवित्व को ही देख सकता है, जिससे कार्य-व्यापार आच्छादित होता है, परन्तु कार्य-व्यापार का सच्चा मूल्यांकन नहीं कर सकता। वह नाटक का अध्ययन पुस्तकालय में करता है, जहाँ शैली

का गुण ही अधिक स्पष्ट होता है, न कि रंगमंच पर, जहाँ कथा और संरचना का अधिक महत्त्व है। केवल साहित्यिक आलोचक उन विशुद्ध नाटकीय तत्त्वों को नहीं देखता वरन् उनकी अवहेलना करता है, जो सजीव नाटक की रोचकता बनाए रखते हैं। वह तत्कालीन असाहित्यिक कृतियों पर भी विचार नहीं करता, जिनसे उसे इन नाटकीय तत्त्वों को समझने में सहायता मिल सकती है, जो नाटक के रंगमंच पर अभिनीत होते समय तत्काल स्पष्ट हो जाते हैं।

नाटक के हर अध्येता को स्वयं यह कार्य कर सकने की आदत डालनी चाहिए। कोई भी नाटक पढ़ते समय, चाहे वह आधुनिक हो अथवा प्राचीन, चाहे वह अपनी भाषा का हो या दूसरी भाषा का, उसमें सदैव पुस्तकालय से रंगशाला तक जाने की और प्रदर्शन करने की क्षमता होनी चाहिए। उसे चेष्टा करनी चाहिए कि वह पुस्तक के छपे हुए पृष्ठों को रंगमंच पर जीवित अभिनेताओं के भावपूर्ण प्रदर्शन में परिणत कर सके। उसको कथा-स्थल का मानसिक चित्र बना लेना चाहिए, और अभिनेताओं की गतिपूर्ण कल्पना करनी चाहिए जिसमें केवल उसकी आँखें संवादों को न पढ़ें, वरन् उसके कान भी उनको सुनें। उसको पूरी चेष्टा यह करनी चाहिए कि अपने को दर्शकों के स्थान पर रखे जिनके लिए नाटक की रचना की गई है; और उसको जैसा कि जेब ने कहा था, कल्पनाशील संवेदना का प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि वह यथासम्भव प्रदर्शन की वास्तविक स्थिति का अनुमान लगा सके। स्टीवेन्सन ने कहा है कि उसके मित्र फ्लीमिंग जेन्किन ने छपे हुए पृष्ठ से नाटक का मानसिक चित्र उपस्थित करने की क्षमता प्राप्त कर ली थी। वे कहते थे कि यह एक युक्ति है, बहुत-से ज्ञान और थोड़ी-सी कल्पना का प्रतिफल—जिसकी तुलना स्वरलिपि पढ़ने से की जा सकती है। यह करना सरल नहीं है, पूरी तरह इसे कर पाना तो सम्भव ही नहीं है, परन्तु चेष्टा अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि इसी की सहायता से हम अपने को महान् नाटककारों की महान् कृतियों की नाटकीय प्रभावशालिता को समझने के लिए प्रशिक्षित कर सकते हैं।

दूसरा अध्याय

अभिनेता का प्रभाव

1

उन्नीसवीं शताब्दी में बहुत-से उच्च कोटि के अंग्रेज़ और अमरीकी कवि नाटक की ओर आकृष्ट हुए, और उसके द्वारा अपने को अभिव्यक्त करना चाहा, परन्तु उन्होंने अपने समय के रंगमंच को ध्यान में नहीं रखा, क्योंकि वह युग उन्हें रंगमंच का अवनति-काल प्रतीत हुआ। उन्होंने रंगशाला के दर्शक की उपेक्षा कर दी और अपनी कृतियों को केवल पुस्तकालय के पाठक के लिए रोचक बनाना चाहा। और इस प्रकार रंगमंच की कठिन परीक्षा स्वीकार किए बिना ही नाटककार बनना चाहा। उन्होंने नाटक को बहुत ही सरल साहित्यिक रूप समझा और उसके भेदों को समझने तथा उसके तन्त्र पर अधिकार पाने की चेष्टा बिलकुल नहीं की; कदाचित् उनके मन में कहीं अभिनीत नाटक के लिए घृणा भी थी, क्योंकि उसे साधारण जनता का मनोरंजन करना होता है। गेटे के फाउस्ट में रंगमंच की प्रस्तावना में हमको ऐसे कवियों के भावों की प्रति-ध्वनि मिलती है :

'मुझसे इस विचित्र जनसमूह के बारे में न कहो।
इसे देखते ही काव्य का भावोन्मेष शीतल हो जाता है।
मेरी आँखों से यह उमड़ता हुआ जन-समूह ओझल कर दो,
जो अपने में हमें डुबोए ले रहा है।
नहीं, मुझे तो वहाँ ले चलो जहाँ स्वर्गिक शान्ति के बीच
कवि के चारों ओर विशुद्ध आनन्द का विस्तार हो।'

यह प्रवृत्ति गीति-कवि के लिए तो अशोभन नहीं है, क्योंकि उसको अपने ही भावों की अभिव्यक्ति करनी रहती है; परन्तु सच्चे नाटककार में तो यह असंभव है, क्योंकि वह तो जब तक विचित्र जनसमूह और उमड़ते जनसमुद्र के सम्मुख अपनी कृति का प्रदर्शन नहीं देख लेता तब तक उसे अपने प्रयत्न की सार्थकता नहीं प्राप्त होती। सच्चा नाटककार अपने लेखन के विषय में मोलियर के कथन को बिना हिचक के स्वीकार कर लेगा ? "मैं सरलता से जनसाधारण के निर्णयों को स्वीकार कर लेता हूँ। और जनता द्वारा प्रशंसित कृति पर आक्षेप करना उतना ही कठिन जान पड़ता है, जितना उसके द्वारा निन्दित कृति के पक्ष में कुछ कहना।" गीति-कवि जन-समूह से

अपने को चाहे कितना ही दूर ले जाय और उससे कितनी ही घृणा करे, वह अपने पाठकों को पूर्णतया नहीं भुला सकता; अपनी रचनाओं को सुपाठ्य बनाने के कर्त्तव्य की उपेक्षा करना उसके लिए हितकर न होगा।

गीति-कवि के लिए जो एक साधारण त्रुटि है, वही नाटककार के लिए बड़ी भारी भूल है, क्योंकि वह तो गीति-कवि की भाँति ऐकान्तिक आत्माभिव्यक्ति के अधिकार का दावा नहीं कर सकता। नाटक को तो सम्पूर्ण जनता के लिए रोचक होना है, केवल कुछ कला-प्रेमियों के लिए ही नहीं। "हम प्रदर्शित होने के लिए अपना काव्य रचते हैं, इससे हमारा पहला कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि हम राजा और जनता दोनों का मनोरंजन करें, और अपने नाट्य प्रदर्शनों को अधिक से अधिक संख्या में लोगों के लिए आकर्षक बनाएँ—इन शब्दों में कार्नाइ ने स्पष्टतः नाटककार के सिद्धान्त को उद्घोषित किया है उसने कहा,—"हमें यथासम्भव नियमों का पालन करना चाहिए जिससे कि विद्वद्गण रुष्ट न हों और हमें सार्वजनीन प्रशंसा प्राप्त हो, किन्तु इस सबसे पहले हमें जनता का अनुमोदन प्राप्त करना है।" नाटक की उन्नति के युगों के सभी बड़े नाटककारों ने कार्नाइ की इस उद्घोषणा से सहमति प्रकट की है कि अपने अनुभव से यह ज्ञान हो जाता है कि सीमाओं और बाधाओं से संघर्ष करना कलाकार के लिए लाभप्रद होता है, और जो कवि इस प्रकार के संघर्ष से दूर भागते हैं और सरल मार्ग अपनाते हैं उन्हें सदा नीची दृष्टि से देखा जाता है। ये भीरू कवि उस लक्ष्य तक कभी नहीं पहुँच सकते जिस तक पहुँचने के वे स्वप्न देखते हैं। पाठ्य-प्रधान नाटक अभिनय के योग्य नहीं होते, अधिकतर अपठनीय ही होते हैं और बहुतों के संवादों में तनिक भी प्रवाह नहीं होता। यद्यपि कुछ प्रसिद्ध कवियों ने भी ऐसे नाटक लिखे हैं जो प्रदर्शन-योग्य नहीं हैं, परन्तु इन कवियों की ख्याति इन पाठ्य-प्रधान नाटकों के कारण नहीं है, और यदि वे ये संवाद-कविताएँ न भी लिखते, तो भी उनका महत्त्व उतना ही रहता।

सच्चे नाटककार—शेक्सपियर, सॉफॉक्लीज, मोलियर—उन अभिनेताओं का जो उनके नाटकों का अभिनय करते हैं, और उन दर्शकों का, जिन्हें उनको आकृष्ट करना है, सदैव ध्यान रखते हैं। कुछ हद तक जान-बूझकर और अधिकतर अनजाने ही वे अपनी कथाओं को समकालीन रंगमंच की प्रदर्शन की प्रचलित परिस्थितियों के अनुसार ढाल लेते हैं। चाहे उन्हें इसका भान रहा हो अथवा नहीं, उसकी महान् त्रासदियों और कामदियों का यह स्वरूप अंशतः उन अभिनेताओं के कारण है, जिनके लिए उन्होंने अपने प्रमुख पात्रों की रचना की थी, अंशतः उस विशेष रंगमंच के कारण हैं जिसका एक निश्चित आकार होता था और जिसमें निर्माण की कुछ विशेषताएँ होती थीं, और अंशतः इस कारण भी कि जिन दर्शकों को वे प्रभावित करना चाहते थे, उनमें अपनी जाति और काल के अनुसार कुछ पूर्वग्रह और पूर्वधारणाएँ थीं। इसी कारण अभिनेता, रंगमंच और दर्शकों का जो अलग-अलग प्रभाव नाटककार पर पड़ता है उस

पर विचार कर लेना उपयोगी होगा। यह प्रभाव हर बड़े या छोटे नाटककार पर नाटक के विकास के लम्बे इतिहास के हर युग में पड़ता रहता है।

2

इन तीनों प्रभावों में सबसे तात्कालिक प्रभाव अभिनेता का होता है जिसके साथ नाटककार को बड़ी हार्दिक सहानुभूति से काम करने की आवश्यकता होती है, और जिसके सहयोग के बिना नाटक उसकी अवधारणा के अनुसार प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। आजकल का आलोचक, जो नाटक को पूर्णतया साहित्य के क्षेत्र में ही सीमित समझता है और जो रंगमंच के साथ उसके गहरे सम्बन्ध को नहीं देख पाता, कभी-कभी इस बात को किसी नाटककार के लिए निन्दनीय समझता है कि उसने अपने नाटक किसी विशेष अभिनेता या अभिनेत्री के लिए लिखे। इस प्रकार नाटककार को दोषी ठहराने में न केवल नाटककार और उसके पात्रों का अभिनय करने वाले अभिनेताओं के अनिवार्य सम्बन्ध के विषय में आलोचक की मिथ्या धारणा प्रकट होती है, वरन् उन बातों को समझने की अक्षमता भी व्यक्त होती है, जिनका प्रभाव कलाकार पर पड़ता हैं।

प्रत्येक कला में उसके प्रेरक कारण और प्रतिफल के बीच आश्चर्यजनक असमानता रहती है। इटली के पुनर्जागरण की सर्वोत्तम कृतियों में से अनेक का वह स्वरूप इस कारण है कि चित्रकार को वेदी के ऊपर भित्ति का अच्छे से अच्छा उपयोग करना था अथवा मूर्तिकार को एक असामान्य आकार के संगमरमर से मूर्ति बनानी थी। चित्रकार और मूर्तिकार ने उस भित्तिस्थान अथवा संगमरमर के खण्ड की सीमाएँ स्वीकार कीं और ऐसा करने में अपना हित समझा। जो बात कम बुद्धिमान और कम कल्पनाशील व्यक्ति के लिए मार्ग की बाधा होती उसे उन्होंने उन्नति का सोपान बना लिया।

इसी प्रकार नाटक की रचना करते समय नाटककार अपने समय के अभिनेताओं की विशेषताओं में ही अपनी उपलब्धि के साधन ढूंढ़ लेता है। निश्चय ही नाटककार को स्वयं को अभिनेताओं के अधीन नहीं करना चाहिए, न विशिष्ट अभिनेताओं की क्षमता को ध्यान में रखकर अपनी कल्पना को सीमित ही करना चाहिए, परन्तु उसे उनका ध्यान अवश्य रहना चाहिए, क्योंकि नाटक की कला द्विपक्षी है। नाटककार और अभिनेताओं को साथ मिलकर काम करना है और बराबर एक-दूसरे को सहायता देनी है, क्योंकि उनको एक-दूसरे पर निर्भर रहना है। नाटककार अभिनेताओं के बिना वैसे ही कुछ नहीं कर सकता जैसे अभिनेता नाटककार के बिना। उनके बिना नाटककार अपनी प्रसिद्धि की निष्फल कामना ही करेगा, और नाटककार की सहायता के बिना अभिनेतागण प्राचीन नाटकों का अभिनय ही कर सकेंगे, जिनसे जनता आगे-पीछे ऊब ही जायेगी।

कला के इन सहकर्मियों के बीच ऐसा आदर्श सामंजस्य हमेशा नहीं रहता है, क्योंकि

दोनों ही कोटि के कलाकारों में स्वभावगत अस्थिरता होती है, और एक प्रकार का चिड़चिड़ापन होता है। परन्तु दोनों की सर्वोत्तम उपलब्धियाँ तभी संभव हुई हैं, जब उन्होंने निष्ठापूर्वक एक-दूसरे के साथ काम किया है। इसलिए तब कोई आश्चर्य नहीं होता जब हमें ज्ञात होता है कि सबसे अधिक कलाप्रेमी देश यूनान का सर्वोत्तम नाटककार सॉफ़ॉक्लीज़ अपने मुख्य पात्रों को किसी विशेष अभिनेता के अनुसार रचता था। आज हम उस अभिनेता का नाम नहीं जानते जिसकी अभिनय-क्षमता ने इस महान् कवि की नाटकीय शक्ति को प्रेरणा दी थी। सॉफ़ॉक्लीज़ के उपलब्ध नाटकों में से कई में हम एक ऐसा प्रमुख पात्र देखते हैं जो सदैव कार्य का केन्द्र रहता है और जिसके भाग्य-चक्र के अनुसार कथा की परिणति होती है।

इसके विषय में कहीं लिखित प्रमाण तो नहीं मिलते, अनुमान ही लगाया जा सकता है, कि शेक्सपियर ने अपने नाटकों में उस कम्पनी के प्रमुख अभिनेताओं की अभिनय-क्षमताओं को ध्यान में रखा है, जिसमें वह स्वयं सम्मिलित था और जिसके लिए उसने अपने सब नाटक रचे थे। शेक्सपियर बहुत प्रतिभाशाली अभिनेता न था। चाहे अभिनयकला के विषय में उसकी अन्तर्दृष्टि कितनी ही तीव्र क्यों न रही हो। जहाँ तक हमें ज्ञात है, वह अपने लिए ऐसी भूमिकाएँ ही चुनता था, जिसके लिए बुद्धि, गरिमा और कथन-क्षमता ही काफी हो, जैसे **हैमलेट** में प्रेत, **एज यू लाइक इट** में बूढ़ा एडम, और **एवरीमैन इन हिज ह्यूमर** में बड़ा नोबल। महान् नाटककार शेक्सपियर साधारण क्षमता के ही अभिनेता थे, और उन्होंने अपने नाटकों की मुख्य भूमिकाएँ अधिक कुशल साथी अभिनेताओं को दीं। उन्होंने **हैमलेट** अपने अभिनय के लिए नहीं, वरन् बर्बेज के लिए लिखा था, और बर्बेज ने अधिकतर नाटकों की मुख्य भूमिकाएँ कीं।

शेक्सपियर के नाटकों का भली प्रकार परीक्षण करने से हम उन अभिनेताओं के बारे में अनुमान लगा सकते हैं, जिनके साथ वे काम करते थे और जिनके लिए उन्होंने अपनी कामदियाँ और त्रासदियाँ लिखीं। यह कहा जा चुका है कि हॉलोफ़ेरनीज़ की क्षीणकायता इस बात का प्रमाण है कि कम्पनी में कोई अभिनेता क्षीणकाय था, कदाचित् वही अभिनेता जो आगे चलकर ईर्ष्यालु कास्का का अभिनय करता है। शेक्सपियरकालीन रंगमंच में अभिनेत्रियाँ नहीं थीं, उसी प्रकार जैसे उसके पहले के मिस्टरी और 'मोरैलिटी' नाटकों में नहीं होती थीं; स्त्रियों की भूमिकाएँ लड़के करते थे। यद्यपि शेक्सपियर के नाटकों में स्त्री-पात्रों की प्रचुरता और विविधता तथा उनके यथार्थ चित्रण और स्त्रियोचित कोमलता को देखते हुए इस तथ्य को जानकर बड़ा आश्चर्य होता है। यह कहा गया है कि चाहे शेक्सपियर के नाटकों में नायक न हों, नायिकाएँ बहुत हैं, और इन सारी नायिकाओं की भूमिकाएँ उन्हीं कम आयु वाले लड़कों के द्वारा सजीव हो सकीं, जिन्हें सहकारी अभिनेता-प्रबन्धकों ने अपनी कम्पनियों में रखा था। अपनी विषादयुक्त कामदियों की रचना के कुछ ही पूर्व—जिनमें **मेज़र फॉर मेज़र**

और आल इज़ वैल देट एण्ड्स वैल मुख्य हैं—शेक्सपियर ने कई बड़ी आनन्दमय और मोदपूर्ण रोमांस कामदियाँ—एज यू लाइक इट, ट्वैल्थ नाइट, मर्चेण्ट ऑफ़ वेनिस, और मच अडू अबाउट नथिंग—लिखी थीं। कदाचित् इन परिहासपूर्ण और करुण नाटकों की सुमधुर नायिकाओं—रोज़ालिंड और वायला, पोर्शिया और बियेट्रियस—की सृष्टि का कारण यही रहा हो कि किसी तरुण में प्रोज्जवल परंतु कोमल, प्रेम करने की इच्छुक तथापि लजीली इन आकर्षक नवयुवतियों का अभिनय करने की असाधारण क्षमता थी।

आधुनिक रंगमंच में, जहाँ ये भूमिकाएँ स्त्रियों को दी जाती हैं, स्त्रियों द्वारा लड़कों का वेष धारण करने के प्रदर्शन में यथार्थता नहीं रहती। आज का दर्शक इस बात पर आश्चर्य किए बिना नहीं रह सकता कि ऑर्लेण्डो कैसे नहीं समझ पाता कि गैनेमीड स्त्री है, अथवा पोर्शिया कैसे ड्यूक को यह विश्वास दिला पाती है कि वह पुरुष वकील है। शेक्सपियर के समय में यह कठिनाई नहीं थी, जब लड़की का अभिनय करने वाला लड़का, लड़के का वेष धारण करता था तो दर्शक बिना अधिक कठिनाई के उसे स्वीकार कर सकते थे। फिर भी शेक्सपियर के समय में भी शायद ऐज़ यू लाइक इट के अभिनय में कठिनाई उत्पन्न होती होगी, जब तरुण अभिनेता स्त्री का अभिनय करते हुए लड़की का वेष धारण करता है और उस रूप में ऑर्लेण्डो को यह कल्पना करने देता है कि वह उसकी प्रेमिका है।

3

बहुत-से आलोचकों ने टाइटस एण्ड्रानिकस की उग्रता और ग्राम्यता पर आश्चर्य प्रकट किया है, और वे इन ग्राम्यताओं का बाद की त्रासदियों की मृदु अन्तरात्मा और उच्च जीवन-दर्शन के साथ कोई सामंजस्य नहीं देख पाते। इस तथ्य की व्याख्या भी नाटककार और अभिनेताओं के सम्बन्ध में पाई जा सकती है। शेक्सपियर की कृतियों में टाइटस एण्ड्रानिकस के बारे में यह धारणा है कि वह दो पहले के नाटकों का संयुक्त रूप है, जिनका विषय एक ही था। इन दोनों का ही प्रदर्शन हुआ था और दोनों नाटक उस कम्पनी के अधिकार में आ गए थे जिसमें शेक्सपियर भी थे। उस समय उन्होंने प्रारम्भ ही किया था और उनमें पूरी कुशलता नहीं आ पाई थी। तब तक वे एक नौसिखिया नाटककार ही थे, जिसका काम पुराने नाटकों को सुधारना और उनको अपने साथियों द्वारा प्रदर्शन योग्य बनाना था। यदि उन्होंने पुरानी रक्त-त्रासदियों की कलाविहीन अश्लीलता के विरोध में कुछ कहा भी होता अथवा अपनी सुरुचि के अनुकूल बनाने के लिए उनके कठोर और निंद्य तत्वों को मृदु बनाने और उनको परिवर्तित करने की इच्छा भी की होती, तो उनको इसकी अनुमति न मिलती, क्योंकि जो अभिनेतागण उनके स्वामी थे, वे उन नाटकों का ऐसा नया संस्करण स्वीकार न करते, जिसमें पहले के और नाटकों का अतिरंजन न होता, और जो उन अभिनेताओं को अतिरंजित अभिनय का अवसर न देता क्योंकि इनकी प्रभाव-

शालिता तो अनेकों वर्षों से देखी जा चुकी थी। कदाचित् शेक्सपियर के पूर्ववर्ती नाटककार मार्लो के कुछ नाटकों में शब्द-बाहुल्य और उग्रता का एक कारण यह है कि उन्होंने अपनी मुख्य भूमिकाएँ एक भारी-भरकम अभिनेता ऐलेन के लिए लिखी थीं, जो लगभग सात फुट लम्बा था।

चार्ल्सलैम्ब ने, जिसको विरोधाभासी उक्तियाँ बहुत पसंद थीं, एक बार कहा था कि शेक्सपियर के नाटकों का आस्वादन रंगमंच से अधिक अध्ययन-कक्ष में किया जा सकता है। उनका कहना था कि यह बड़ी अजीब बात है कि **हैमलेट** सदा अभिनेता जान फिलिप कैंबल के व्यक्तित्व से जुड़ा रहे। यह तत्काल स्वीकार किया जा सकता है कि शेक्सपियर के नाटकों में ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जिनका आस्वादन हम आदरपूर्वक पुस्तक हाथ में लेकर पढ़ते समय अधिक कर सकते हैं। परन्तु बहुत-सी बातें ऐसी भी हैं, जो पुस्तकालय में पढ़ने की अपेक्षा रंगमंच पर देखने में अधिक प्रभाव डालती हैं, और यही तत्व सबसे अधिक नाटकीय हैं। ये वे बातें हैं जिनके बारे में यह निश्चय से कहा जा सकता है कि शेक्सपियर अपने नाटक की रचना करते समय चाहते थे कि इनका अनुभव किया जाय। उन्होंने अभिनीत होने के लिए ही इन नाटकों को लिखा था, और प्रदर्शन में ही हम उनको उस रूप में देखते हैं जैसा उनका रचयिता चाहता था। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि लैंब अपने परामर्श पर स्वयं नहीं चलते थे। वे बड़े ही उत्साही नाटक दर्शक थे, जैसा कि उनके हर निबन्ध से प्रकट होता है। हमारे लिए अधिक लाभकारी होगा यदि हम उनके नीति-वाक्य से अधिक उनके व्यवहार से निर्देशित हों। नाटक के प्रत्येक अध्येता को अपने लिए जो प्रथम नियम बनाना चाहिए वह यह है कि वह शेक्सपियर के किसी भी नाटक के प्रदर्शन को देखने के अवसर की उपेक्षा न करें, चाहे वह प्रदर्शन पूर्ण रूप से त्रुटि-रहित न भी हो।

मोलियर, जिनका नाम सॉफ़ॉक्लीज़ और शेक्सपियर के साथ सदैव आता है, अपने समय में एक विख्यात कामदी-अभिनेता थे। वे अपनी सब कामदियों में प्रमुख भूमिका अपने अभिनय के लिए रचते थे। इनमें कुछ को तो उन्होंने अपनी शारीरिक विशेषताएँ भी प्रदान की हैं, जैसे अपनी खाँसी। इसी प्रकार कुछ पात्रों को उन्होंने अपने साले का लँगड़ापन दिया है। **बर्जुवा जेंटलमैन** की प्रमोदी दासी की रचना उन्होंने कम्पनी की अभिनेत्री कुमारी बोवाल की हँसी का उपयोग करने के लिए की थी। अपनी सुन्दर पत्नी के लिए उन्होंने विविध भूमिकाओं का सृजन किया।

4

इस तथ्य को स्वीकार करके कि सॉफ़ॉक्लीज़ और शेक्सपियर, मोलियर और रासीन, तथा रंगमंच के लम्बे इतिहास में सभी प्रमुख नाटककारों ने अपने नाटकों की रचना उन नाटकों का अभिनय करने वाले अभिनेताओं की अभिनय-शक्ति को भली प्रकार समझते हुए की, इस बात पर विचार करना भी रोचक और लाभप्रद होगा कि लेखकों पर अभिनेताओं ने कितना प्रभाव डाला। हम अपने समय के अभिनेताओं

पर विचार करके इस सम्बन्ध में जान सकते हैं, क्योंकि अभिनय की शैली में शताब्दियों में नगण्य परिवर्तन होता है। अभिनेता आज भी उसी प्रकार का व्यक्ति है जैसा वह कल अथवा परसों था। अपने व्यवसाय की ओर, अपनी कला के व्यावहारिक पक्ष की ओर, शायद रॉशियस की प्रवृत्ति में गैरिक और काकलें से बहुत अन्तर नहीं था। उनमें से हर एक ऐसा नाटक चाहता था जिसमें उसे एक अच्छी भूमिका प्राप्त हो। और अच्छी भूमिका का अर्थ उनके लिए ऐसी ही भूमिका थी, जिसमें उन्हें जीभर कर अपनी अभिनय-शक्ति का प्रदर्शन करने का अवसर मिले। अभिनेता निश्चित कार्य और चरित्र की माँग करता है और यही विशेषताएँ दर्शक भी चाहता है।

इस कारण अभिनेताओं का प्रभाव वहाँ तक हितकारी होता है, जहाँ तक उनकी अच्छी भूमिकाओं की इच्छा के कारण नाटकीय कार्य सुदृढ़ होता है और नाटक की भावपूर्ण चरम सीमा तीव्रतर होती है। लेखक पर अभिनेताओं के इस प्रभाव के कारण उसे मानवीय स्वभाव के अधिक विस्तृत और गहरे चित्रण की भी प्रेरणा मिलती है, जिससे अपने अभिनेताओं को वह ऐसी भूमिकाएँ दे सके जिनमें अपने से बिलकुल भिन्न प्राणियों का रूप धारण करने की उनकी क्षमता को पूर्ण अवसर मिल सके। निश्चय ही कितनी ही बार नाटककार अभिनेताओं की इच्छाओं के आगे झुका है, और उसने अपने नाटक की रचना उनके आत्म-प्रदर्शन के एक माध्यम के रूप में की है। यदि लेखक अभिनेता के अधीन पूरी तरह होना चाहता है, और किसी विशेष अभिनेता के अभिनय-कौशल के प्रदर्शन के लिए एक ढाँचा मात्र प्रस्तुत करता है, तो उसे किसी ओर से सहानुभूति की आशा नहीं करनी चाहिए। सार्दू ने मदाम सारा बर्नहार्ट के लिए ऐसा कई बार किया था। मदाम को अपनी सारी कृत्रिमताओं का प्रदर्शन करने का अवसर देने के लिए उन्होंने अपनी कला की सहज स्वतन्त्रता का त्याग कर दिया था।

एक कुशल और आत्माभिमानी नाटककार प्रतिभाशाली अभिनेता की विविध शक्तियों से, अपने अधिकारों का समर्पण किए बिना भी, अधिक से अधिक लाभ उठा सकता है। यदि इस कथन की सत्यता के प्रमाण की आवश्यकता हो तो सिरानो दि बर्जेराक में मिल सकता है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि यदि रास्ताँ का यह उत्कृष्ट नाटक प्रकाशित और अभिनीत न हुआ होता, और उनकी मृत्यु के पश्चात् सहसा प्राप्त होता, तो सामान्य मत यही होता कि यह नाटक नाटकीय कविता का बड़ा कुशल उदाहरण है; और कदाचित् इसकी रचना के समय इसके प्रदर्शन की कोई आशा न रही होगी, क्योंकि इसका केन्द्रीय पात्र इतना विविध और बहुपक्षी है—कभी अपरूप, कभी गीतात्मक, कभी अधिक हासमय और कभी वीरता-पूर्ण—कि इस भूमिका का अभिनय करने और उसके विविध पक्षों को व्यक्त करने के योग्य अभिनेता मिलने की लेखक कभी आशा नहीं कर सकता था। परन्तु हम जानते हैं कि यह महान् नाटक एक महान् अभिनेता के लिए विशेष रूप से लिखा गया था।

और इसकी संरचना में उस अभिनेता की अभिनय कला की असाधारण क्षमताओं पर लेखक की दृष्टि थी। काकलें अद्वितीय हास-अभिनेता था; उसने अगणित अभिनय किए थे, कभी वीरतापूर्ण, कभी गीतात्मक, कभी अपरूप और कभी हासपूर्ण। उसमें इतनी आश्चर्यजनक विविधता थी कि वह एक व्यक्ति नहीं वरन् पूरी मानवता का समाहार प्रतीत होता था। सिरानो दि बर्जराक में अभिनेता से ऐसी किसी बात की माँग नहीं थी जो काकलें अपने सैंकड़ों अभिनीत नाटकों में से किसी-न-किसी में न दिखा चुका हो। अपनी सर्वोत्तम भूमिकाओं में जो सिद्धियाँ वह प्राप्त कर चुका था, इस एक भूमिका में उन सबका समावेश कर दिया गया था। यद्यपि रास्ताँ ने अपनी नाट्यकृति को काकलें की अभिनय-उपलब्धियों के नितान्त अनुकूल ढाला, नाट्य-गठन का इससे सुन्दर उदाहरण अन्यत्र नहीं मिल सकता और इसके कारण नाटक की मौलिकता और सौन्दर्य में कहीं कमी नहीं आयी। यद्यपि यह सच है कि सिरानो दि बर्जराक जो है, वह काकलें के कारण है; फिर भी अन्य अभिनेताओं द्वारा वह खेला गया, कई भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ, मर्मस्पर्शी और परिष्कृत काव्य को पसन्द करने वाले सभी लोगों ने पढ़कर आनन्द उठाया। एक महान् अभिनेता के लिए महान् भूमिका का सर्जन करने की कवि की इच्छा के कारण नाटक के साहित्यिक मूल्य में किंचित् कमी नहीं आई। दूसरे कामदी अभिनेता सिरानो का अभिनय करने की चेष्टा करते रहे हैं, बीसों अन्य अभिनेताओं ने किया भी है। परन्तु उस पात्र की भूमिका में काकलें का अभिनय अननुकरणीय ही रहेगा। वह सर्वोत्तम सिरानो बन सका, क्योंकि सिरानो का सृजन उसी के लिए हुआ था। एक फ्राँसीसी उक्ति है कि जो अभिनेता किसी पात्र का अभिनय पहली बार करता है, वही उसका रूप निर्धारण करता है। कम-से-कम सिरानो के साथ काकलें ने यही किया।

संयोगवश यह जानने के कारण कि रास्ताँ ने इस नाटक को विशेष रूप से काकलें के लिए लिखा था, हम अंतिम अंक की मीमाँसा कर सकते हैं। इस अंक पर बहुत-से आलोचकों को आश्चर्य हुआ है। नाटक के अन्त में नायक की मृत्यु क्यों होती है ? उसकी मृत्यु क्यों होनी चाहिए ? नाटक को वीर-कामदी कहा गया है, और हम कभी कामदी का अन्त मृत्यु से होने की आशा नहीं करते। दूसरी ओर सिरानो की मृत्यु न होने का भी कोई वास्तविक कारण नहीं है, अर्थात् इस अत्यन्त कृत्रिम कथा की कोई भी तर्कसंगत और अनिवार्य परिणति नहीं है; इसमें यह भी हो सकता था कि नायक पंचम अंक में समाप्त हो जाय, किसी और दिन युद्ध करने के लिए बचा रहे। इस स्थिति में रास्ताँ ने दर्शकों को नायक के अंतिम क्षण दिखलाना क्यों पसन्द किया। कथा का वहीं अंत उन्हें सबसे अच्छा लगा, इसमें करुणा के हल्के स्पर्श का अवसर मिला, और अभिनेता काकलें को मृत्यु-दृश्य का अभिनय करने का। उस अद्भुत कामदी-अभिनेता के लिए इसमें नवीनता थी। सम्भव है, सारा बर्नहार्ट द्वारा अभिनीत उन अनेकों मृत्यु-दृश्यों से उसे

स्पृहा भी हुई हो जिनमें उनके मरणकालीन संवादों और स्वीकरणों द्वारा दर्शकों के नेत्र सजल हो जाया करते थे ।

5

लेगूवे की पुस्तक साठ वर्षों की स्मृतियाँ पढ़कर पता चलता है कि एद्रियेन लकूव्र विशेष रूप से राशेल के लिए रचा गया था । हम यह भी जानते हैं कि नायिका के नाम पर ही नाटक का नाम होते हुए भी वह प्रथम अंक में सामने नहीं आती, और जब पहली बार आती है तो रासीन के एक पात्र की वेषभूषा में क्यों आती है । इसी रोचक और तथ्यपूर्ण स्मृति-ग्रन्थ में लेगूवे ने यह भी बताया है कि उन्होंने अपने एक प्रारम्भिक नाटक के कोई-कोई संवाद छः-छः बार लिखे क्योंकि अभिनेत्री कुमारी मार्स कहती रहीं कि वह जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है; काफ़ी बाद में वह बता सकीं कि वे इसमें एक विशेष लय चाहती हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि बार-बार अभिनय करने पर उनको यह अनुभव हुआ कि इस पात्र के संवादों की लय विशेष प्रकार की होनी चाहिए, और लेगूवे ने उसके निर्णय पर पूरा भरोसा करते हुए उसकी निर्दिष्ट लय पर संवादों को बैठाया । इसी प्रकार हर नाटककार को ऐसे उदाहरण याद होंगे जब उसने अपने अभिनेताओं के निर्देश मान लेने पर अपने नाटकों में अधिक प्रभावशालिता पायी होगी । बहुत-से नाटक अभिनेताओं के व्यावहारिक सुझावों के कारण और उत्कृष्ट बन गए हैं, उसी प्रकार जैसे बहुत-से महान् नाटकों का अस्तित्व ही किसी समकालीन अभिनेता की समृद्ध अभिनय-शक्ति का उपयोग करने की इच्छा के कारण संभव हुआ । कामदी-अभिनेता रेनिये के प्रति आज़िये के इस कथन में स्वाभाविक विदग्धता है—"मेरे अनुभव ने मुझे यह सिखाया है कि अभिनेता मेरे द्वारा रचित भूमिका में यदि अपना नया कुछ नहीं जोड़ता तो वह मुझे वंचित रखता है ।"

ब्राम स्टॉकर ने लिखा है कि हैनरी इर्विंग ने यह अनुभव किया था कि जिस रूप में टेनिसन का बैकेट प्रकाशित हुआ है, उस रूप में वह सफल नहीं होगा, यद्यपि उसमें शहीद पादरी का उज्ज्वल चरित्र था जिसका अभिनय करने की इर्विंग की तीव्र अकांक्षा थी । अन्त में इर्विंग ने नाटक में कुछ मूल परिवर्तन करने, जैसे एक दृश्य यहाँ से काटने और एक नया संवाद वहाँ पर जोड़ने की बात सोची । भय से काँपते हुए वह इन सुझावों को टेनिसन के पास ले गया; रंगमंच पर सफलता प्राप्त करने के इच्छुक कवि ने उन्हें प्रसन्नता से स्वीकार किया । तत्काल ही जैसा इर्विंग चाहता था वैसे ही संवाद जोड़ दिए, और कुछ बातें निकाल दीं अथवा उनमें कुछ परिवर्तन कर दिया ।

यहाँ हम अभिनेता को कवि के सहयोगी के स्तर तक उठता हुआ देख सकते हैं । नाटककारों और अभिनेताओं के बीच इस प्रकार के सामंजस्यपूर्ण सहयोग के कितने ही उदाहरण एकत्र किए जा सकते हैं । बाँवील का एक नाटक अभिनेता काकलें के सुझावों के कारण अधिक अच्छा बन गया था, नाटक के अन्त में कथा का विलक्षण

मोड़ काकलें का आविष्कार था। जब उसने लेखक को इसका सुझाव दिया तो बाँवील ने उपहासपूर्ण ढंग से कहा—क्या तुम चाहते हो कि मैं स्क्रीब की तरह का नाटक लिखूँ ? काकलें ने हँसकर उत्तर दिया कि मैं बिलकुल ऐसा ही चाहता हूँ। बाँवील ने मुस्कराते हुए कहा; "बिलकुल ठीक, तब मैं ऐसा ही करूँगा।"

बुद्धिमान् नाटककार अभिनेताओं के सुझावों को हितकारी समझता है और विभिन्न भूमिकाओं के लिए अभिनेताओं की विशेष क्षमताओं का लाभ उठाता है; और कभी-कभी वह कुछ दृश्य अपने नाटक में इस कारण नहीं रखता कि विशेष कामदी-अभिनेता जिनको वह कुछ पात्रों की भूमिका देने की आशा करता है, उन दृश्यों का ठीक-ठीक अभिनय नहीं कर सकेंगे। शेरिडनड्रेरी लेन थिएटर का प्रबन्धक था जब उसने **स्कूल फ़ॉर स्कैण्डल** लिखा। उस उत्कृष्ट कामदी की प्रत्येक भूमिका विशेष रूप से उन्हीं अभिनेताओं के लिए लिखी गई थी जिन्होंने प्रथम वार उसको प्रस्तुत किया; और तब वह इतनी अच्छी तरह प्रदर्शित हुई थी कि चार्ल्स लैंब ने इसे देख सकने को अपना सौभाग्य माना था। विभिन्न अभिनेताओं के लिए भूमिकाएँ इस प्रकार नियत की गई थीं कि जब किसी मित्र ने लेखक-प्रबन्धक शेरिडन से पूछा कि कामदी में उन दोनों पात्रों के बीच कोई प्रेम-दृश्य क्यों नहीं है जिनके विवाह से इस कामदी का अन्त होता है, तो उन्होंने कहा कि अभिनेता स्मिथ और अभिनेत्री हॉपकिन्स प्रेम का अभिनय नहीं कर सकते।

इस प्रकार कथा को अभिनेताओं की क्षमताओं के अनुसार समंजित करने का उदाहरण एक विशेष नाटक कम्पनी के लिए लिखी गई जॉन लाइली की कामदियों में मिलता है। यह एलिज़ाबेथ के प्रारम्भिक दिनों में बाल-अभिनेताओं की एक संस्था थी। इन कामदियों में आलंकारिकता और कृत्रिम भावावेग की उन रचनाओं में वयस्क अभिनेताओं के लिए लिखे गए अन्य समकालीन नाटकों के समान भय और आतंक का चित्रण नहीं मिलता। उनमें बल का उद्धत प्रदर्शन नहीं, व्यर्थ की वाचालता और अनर्गल प्रलाप नहीं; सब कुछ मर्यादित है और बालकों की अनुभवहीनता के लिए जो भी बात कठिन पड़ सकती है, वह उनमें दबी हुई है।

अभिनेताओं के प्रयोग के लिए रचित पहली अंग्रेजी कामदी **राल्फ़ रॉयल्टर डॉयस्टर** में हमें कथानक का ऐसा ही निपुण समंजन मिलता है। यह कामदी ईटन के अध्यापक युडाल ने अपने शिष्यों के लिए लिखी थी। बाहरी रूप में प्लॉटस से मिलते हुए भी इस अंग्रेज़ी कामदी में अपनी धरती की छाप है, और अपने सशक्त परिहास, घुड़सवारी के बारम्बार प्रदर्शन, और बीच-बीच में गानों के छोटे-छोटे टुकड़ों के कारण इसकी उन रचनाओं से बड़ी समानता है जिनका अभिनय ग्रेजुएट आज भी आनन्द मनाने के लिए करते हैं। इसके अनेक कथांशों में उन अभिनेताओं से ऐसा कोई काम करने की आशा नहीं की गई है जो उनके किये न हो सकता। वास्तव में छोटे से इस नाटक का ध्यानपूर्वक परीक्षण करने से ज्ञात होता है कि ईटन के अध्यापक को उस सत्य का

पूर्वाभास हो चुका था जिसके विषय में आगे चलकर स्क्रीब ने लेगूवे से कहा। उस चतुर फ्रांसीसी नाटककार ने कहा था कि "समकालीन अभिनेताओं के गुणों का अध्ययन तो ठीक है, परन्तु नाटककारों को उनकी कमियों से भी परिचित होने में लाभ रहेगा, क्योंकि उनके गुण तो नष्ट भी हो सकते हैं, परन्तु उनकी त्रुटियाँ कभी नहीं जाएँगी।"

यह परिहास में कहा गया होगा, परन्तु इसमें सत्य का अंश है। नाटककार को अपने अभिनेताओं के विषय में पूरा ज्ञान होना आवश्यक है, और यदि वह उनकी अक्षमताओं का उपयोग कर सके तो उसके लिए और भी अच्छा होगा; यद्यपि अधिकतर तो वह उनकी क्षमताओं का ही उपयोग करेगा। उसे नाटक की रचना करते समय अभिनेताओं को ध्यान में रखने से भी लाभ हो सकता है, चाहे उसे यह आशा न भी हो कि यही लोग सदा उसके नाटक का अभिनय करेंगे। कहीं और व्यस्त होने के कारण अथवा रंगमंच से अवकाश ग्रहण कर लेने के कारण ये विशेष अभिनेता उसे प्राप्त न भी हों, फिर भी नाटक-रचना के समय यदि नाटककार इनके व्यक्तित्व को ध्यान में रखे तो कल्पना को नहीं तो उसकी निर्माण-कला को तो प्रेरणा मिल ही सकती है। वास्तव में जितने निकट से हम नाट्य-साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते हैं, और नाटक के उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना का जितना स्पष्ट विश्लेषण करते हैं, हमें यह विश्वास होता जाता है कि हर युग और हर जाति के नाटककार अपने नाटकों को जनता के सामने रखने वाले अभिनेताओं की क्षमताओं, कमियों और विशेष गुणों से सदैव परिचित रहे हैं। यह हमारे लिए आनन्ददायी हुआ है, और उनके लिए लाभकारी। रासीन पर यह दोष लगाया गया है कि उन्होंने अपने नाटक अभिनेत्री ला शांमेसले के लिए लिखे न कि चिरस्थायिनी कीर्ति प्राप्त करने की दृष्टि से। निःसंदेह रासीन इस दोष का दोषी था, परन्तु हुआ यह कि जो नाटक ला शांमेसले के लिए लिखे गए थे, वे स्थायी कीर्ति अर्जित करने में भी सफल हुए और फ्रांसीसी त्रासदी के अद्वितीय नाट्य-ग्रन्थों के रूप में हमारे सम्मुख आए।

तीसरा अध्याय

रंगशाला का प्रभाव

1

प्रत्येक ऐसे युग में जब किसी भाषा के साहित्य में नाटक की बहुत अधिक रचना हुई है, यह देखा जा सकता है कि नाटककार ने अपने समय की ही रंगशाला की स्थितियों के अनुसार अपने नाटकों को ढाला है। चाहे उसको वे स्थितियाँ अच्छी न लगी हों, और चाहे वह यह विश्वास करता हो कि उन्हें सुधारा जा सकता है, परन्तु वे जैसी भी रही हैं, उन्हें स्वीकार करके ही उसने नाटकों की रचना आरम्भ की है। नाटककार अनिवार्य रूप से ऐसा करता है, चाहे वह सॉफ़ॉक्लीज़ और शेक्सपियर की भाँति सच्चा नाटककार हो, चाहे काटज़ेबू और रकीब की भाँति रंगमंच का कुशल शिल्पी। हर युग के नाटककारों ने यह सहज ही और बिना हिचक के किया है और अब साहित्य के इतिहासकार भी इस बात को समझने लगे हैं। परन्तु अब भी उसमें से कुछ ने ही इस तथ्य के महत्त्व को पूरी तरह समझा है कि सॉफ़ॉक्लीज़ अथवा शेक्सपियर, मोलियर अथवा इब्सन आदि सच्चे नाटककारों की कला को पूर्ण रूप से समझना तब तक असंभव है जब तक उस विशेष रंगशाला की प्रदर्शन की परि-स्थितियों का ठीक-ठीक ज्ञान न हो जाय जिसके लिए इन नाटककारों ने अपने नाटक रचे थे तथा जिसके आकार, रूप और दृश्य-उपकरणों के अनुकूल इन्हें नाटकों के कथानकों का संगठन करना पड़ा था।

अब हमें भली भाँति यह ज्ञात हो चुका है कि विभिन्न देशों में विभिन्न समय में कई प्रकार की रंगशालाएँ रह चुकी हैं, और उनमें से अधिकतर हमारी आधुनिक रंगशालाओं से बहुत भिन्न थीं। हम सब जानते हैं कि एथेन्सवासियों की विशाल खुली रंगशालाओं और एलिजाबेथकाल के लन्दन में छोटे आधी छत वाले क्रीड़ा-स्थल जैसी रंगशालाओं और लुई चौदहवें के समय की पेरिस की टेनिस के मैदान जैसी लंबी और संकरी रंगशालाओं में आपस में कितना अन्तर था। परन्तु पहले समय की रंगशालाओं की इस भिन्नता के बारे में सामान्य जानकारी होने पर भी, हम इन विभिन्न कालों के नाटककारों की नाट्य रचना-पद्धतियों का विवेचन करने के लिए इस जानकारी का उपयोग नहीं करते। हमें सदा यह ध्यान में रखना चाहिए कि किस प्रकार लेखक को

रंगशाला से यह निर्देश मिलता रहा है कि वह अपने नाटक में किन बातों का समावेश करे, किन्हें छोड़ दे, तथा जो कुछ वह कहना चाहता है उसे किस प्रकार प्रस्तुत करे। हमको विभिन्न शताब्दियों में रंगशालाओं की बदलती हुई स्थितियों के नाटककार पर पड़ने वाले प्रभाव को पूरा महत्त्व देना चाहिए। पहली बात रंगमंच का आकार-विस्तार है, जो इतना विशाल हो सकता है कि नाटककार को सदैव फैले हुए और सरल कथानक अपनाने पड़ें। दूसरी बात बहुल और भारी दृश्य-सज्जा है, जिसके कारण अपने कथानक को संकुचित करना नाटककार के लिए अनिवार्य हो जाय, जिससे कि उसे कम से कम दृश्य बदलने पड़ें। तीसरी बात, कृत्रिम प्रकाश के आधुनिक साधन हैं (पहले मोमबत्तियाँ, फिर तेल के लैम्प, फिर गैस और अन्त में बिजली का प्रकाश) जिनसे नाट्य-लेखन-पद्धतियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के लिए जब हम किसी देश और काल की विशिष्ट रंगशाला की स्थितियों के नाटककार पर पड़ने वाले प्रभाव को स्वीकार करेंगे, तभी हम यह भी समझ सकेंगे कि यह शेक्सपियर की बुद्धिमत्ता ही थी कि उन्होंने यूनानी नाटकों के अनुसार अपने नाटकों को ढालने के सम्बन्ध में सिडनी की सलाह नहीं मानी ; और तभी हम टेनिसन की अदूरदर्शिता का पूरा अन्दाज़ कर सकते हैं, जिसने अपने काव्यात्मक नाटकों की रचना शेक्सपियर के ऐतिहासिक नाटकों के अनुरूप की, जब कि शताब्दियों पहले की अंग्रेज़ी रंगशाला की स्थितियाँ बिलकुल बदल चुकी थीं।

नाटक के किसी विशेष युग के आलोचक सदा दूसरे युगों की परिस्थितियों से परिचित नहीं होते ; यूनानी साहित्य के इतिहासकार आधुनिक रंगशालाओं से ही परिचित हैं, और वे अब यूनान और उसके उपनिवेशों में नाट्यशालाओं के अवशेषों का अध्ययन कर रहे हैं। परन्तु मध्य युग में नाट्य-प्रदर्शन की पद्धतियों पर वे बहुत कम ध्यान दे रहे हैं। ये प्रदर्शन पहले गिरजाघरों में होते थे और आगे चलकर बाज़ारों में चबूतरों पर होने लगे। अंग्रेज़ी साहित्य के इतिहासकारों को अभी इस बात का स्पष्ट ज्ञान नहीं हुआ है कि ट्यूडर युग में नाटक कैसे खेले जाते थे, और उन्हें उन परिवर्तनों का पूरा महत्त्व भी नहीं ज्ञात हुआ है जो पुनर्जागरण काल में चित्रित पर्दों और कृत्रिम प्रकाश के आविर्भाव के कारण हुए। जो विद्वान केवल एक ही युग के नाटकों के सम्बन्ध में जानते हैं, वे नाटक की उन्नति के दूसरे कालों में उसके विभिन्न पक्षों के ज्ञान से प्राप्त होने वाली व्यापक दृष्टि से वंचित रह जाते हैं। विभिन्न युगों में नाटक के विकास को देखने से हमें ज्ञात होगा कि उसमें अद्भुत समानता है। उसके सारभूत सिद्धान्त वही रहते हैं क्योंकि सच्चे नाटककार के लक्ष्य नहीं बदलते—चाहे वह प्राचीन यूनान का हो, चाहे सत्रहवीं शताब्दी के फ्रांस का, अथवा उन्नीसवीं सदी की स्कैण्डिनेविया का ; और उनकी नाट्य-रीतियों पर पिछली पीढ़ी की रंगशालाओं की परम्पराओं का प्रभाव पड़ता रहा है। नाटककार इन परम्पराओं से लाभ उठाता ही है, चाहे वे अब रंगशाला के पूर्णतया अनुकूल न भी हों जिसके लिए वह लिखता है।

हम देखते हैं कि एलिज़ाबेथकालीन नाटककार रंगमंच की दो विपरीत दिशाओं में दो दरवाज़ों का उपयोग दो विशिष्ट स्थानों का बोध कराने के लिए करते हैं। यह युक्ति स्पष्टत: फ्रांसीसी 'मिरैकल' नाटक में होने वाले कई 'प्रासादों' से ही ली गई है। वास्तव में किसी भी काल में प्रचलित नाट्य रचना-पद्धतियों को समझना उसके आधी सदी पहले की प्रदर्शन परिस्थितियों पर विचार किए बिना असम्भव है।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि अभी तक किसी ने भी दृश्य-सज्जाकार की कला के विकास का अध्ययन नहीं किया। एक ओर तो आज की यथार्थवादी दृश्य-सज्जा है जिसमें स्थान का बोध कराने के लिए वास्तविक दृश्य-पीठिका रची जाती है और दूसरी ओर वह बिलकुल भिन्न दृश्य-सज्जा, जिसमें किसी घर अथवा घर के हिस्से की लघु अनुकृति बनाई जाती थी, जैसा हम मध्ययुग में और बाद में इतालवी मुखौटा कामदियों में पाते हैं (इसे बढ़ई बनाते थे और पेंटर पूरा कर देता था)। किसी ने भी उन तमाम तथ्यों का संग्रह नहीं किया जिससे यह स्पष्ट हो जाता कि वेदियों, सिंहासनों और लतागृहों आदि दृश्य-उपकरणों का प्रयोग वास्तविक दृश्य-सज्जा के बहुत पहले से बराबर होता रहा है। किसी ने भी एक ही माप में खींची हुई रंगशालाओं के रेखा-चित्रों का संग्रह भी नहीं किया है, जिससे हमें एक नज़र में ही मालूम हो जाता कि एथेन्स में डायनीसियस की रंगशाला कितनी विशाल थी, और वह टेनिस-मैदान जिसमें मोलियर अभिनय किया करता था कितना छोटा। इन रेखाचित्रों के संग्रह और अब उपलब्ध दूसरी सूचनाओं की सहायता से हम सॉफ़ॉक्लीज़ से इब्सन तक की प्रदर्शन-पद्धतियों के परिवर्तनों का अध्ययन कर सकते हैं, और हम एक रोचक परिणाम पर पहुँचते हैं कि जैसा अधिकतर समझा जाता है कि रंगशालाएँ प्राचीन और आधुनिक दो ही प्रकार की नहीं हैं, वरन् बहुत प्रकार की हैं, जिनमें मध्ययुगीन रंगशाला कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

हम यह मानने को बाध्य होंगे कि जिस रंगशाला के लिए इंग्लैण्ड में मार्लो, शेक्सपियर, और जॉनसन ने तथा स्पेन में लोपद वेगा और केल्डरॉन ने लिखा उनमें से कोई आधुनिक नहीं थी, वे दोनों ही मध्ययुगीन अथवा अर्धमध्ययुगीन थीं। हम यह देखेंगे कि मोलियर प्रथम आधुनिक नाटककार हैं। उसके नाटकों को आज की रंगशालाओं के अनुकूल बनाने के लिए किसी प्रकार के कथावस्तु के समंजन-संपादन अथवा दृश्य परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। फिर उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में नाटककारों के रचना-व्यवहारों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया, क्योंकि तब रंगमंच का प्रत्येक भाग विद्युत् से प्रकाशित किया जा सकता था, और तल-बत्तियों की वक्राकार चाप पीछे हटाकर उस पर्दे तक कर दी गई थी, जो आज एक तसवीरी फ्रेम के भीतर उठता-गिरता है।

2

पुनर्जागरण काल की रंगशाला उस एलिज़ाबेथकालीन रंगशाला से बहुत भिन्न थी जिसके लिए शेक्सपियर ने लिखा था। एथेन्स डायनीसियस की रंगशाला और दक्षिण फ्रांस में आरेंज की रोमन रंगशाला का अन्तर और भी स्पष्ट है। इन विभिन्न प्राचीन और आधुनिक रंगशालाओं में आकार, आकृति, प्रकाश-विधियों, वास्तविक दृश्य-सज्जा का प्रयोग अथवा अभाव और दर्शकों की सीटों की व्यवस्था में परस्पर बड़ा अन्तर है, और जैसे-जैसे हम इनके क्रमिक परिवर्तनों का अध्ययन करते हैं, हमारा यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि प्रत्येक युग के नाटककारों पर रंगशालाओं के रूप और आकार आदि का गहरा प्रभाव पड़ा है।

एथेन्स में डायनीसियस की रंगशाला महान् यूनानी रंगशालाओं में सबसे पुरानी कही जाती है, और अभी तक वह ऐसी सुरक्षित है कि कोई भी यात्री उसकी संगमरमर की बेंचों पर बैठकर उस स्थान को देख सकता है जहाँ कोरस उस देवता की वेदी के चारों ओर घूमते हुए पवित्र मंत्रों का उच्चारण करता था, जिसकी पूजा के रूप में नाटक का जन्म हुआ था। बहुत दिनों तक प्रारम्भिक यूनानी नाटकों का अभिनय बाज़ारों में होता था, और दर्शक-गण अस्थायी रूप से रखी गई बेंचों पर बैठते थे। जब इनमें से कुछ बेंचें टूट जातीं तो एक्रोपोलिस की तलहटी में थोड़ी-सी जगह समतल कर ली जाती और दर्शक-गण ऊपर पहाड़ी ढलानों में बैठ जाते। कुछ समय बाद उस ढाल को गोलाकार बना दिया गया, और जहाँ समतल स्थान पर अभिनेता खड़े होते थे वहाँ से पहाड़ पर बहुत ऊँचे तक सीढ़ीनुमा संगमरमर की बेंचें बन गईं। कोरस के बैठने का स्थल पाट दिया गया, और उसके अर्धवृत्ताकार स्थान के पीछे कोई नीची इमारत अवश्य बनाई गई होगी, जो अभिनेताओं के और कोरस के लिए पृष्ठभूमि का काम देती होगी। अब यह सामान्यतः मान लिया गया है कि एथेन्स की रंगशाला में ऊँचा मंच नहीं था। अभिनय वाद्यस्थल में ही होता था, उस अर्धवृत्ताकार समतल स्थान में जो आगे आसनों की वक्राकार पंक्तियों में मिल जाता था। यह भी स्वीकार किया जा रहा है कि रंगशाला में दृश्य-सज्जा की व्यवस्था नहीं थी, कुछ दृश्य-वस्तुएँ भले ही रही हों। नाटककार उस नीची इमारत की छत और दरवाज़ों का उपयोग कर सकता था, जो वाद्यस्थल की ओर बंद होते थे, और यही इमारत कदाचित् अभिनेताओं के शृंगार-कक्ष का काम भी देती थी।

अर्ध-वृत्त की वह चाप, जहाँ यह इमारत थी, सात फुट लम्बी थी, और अर्ध-वृत्त का दूरतम बिन्दु लगभग इतनी ही दूरी पर था। इस समतल स्थल के ऊपर दर्शकों के बैठने के लिए लगभग अस्सी सीढ़ियाँ थीं यह कहा जाता है कि नाट्य-प्रदर्शनों में बीस हज़ार से अधिक दर्शक बैठ सकते थे। आज जब हम उन बेंचों पर बैठकर वाद्य-स्थल पर दृष्टि डालते हैं, तो लगता है कि इतनी दूरी पर खड़ा व्यक्ति कितना छोटा लगेगा और उसकी कोई मुख-मुद्रा देख पाना कितना कठिन है। और तभी हमको इस

बात से कोई आश्चर्य नहीं होता कि यूनानी अभिनेता ऊँचे-ऊँचे बूट पहनते थे और ऐसे मुखौटे पहनते थे जो उनके सिर से ऊपर उठे रहते थे जिससे उनका क़द कुछ बड़ा प्रतीत हो। हम समझ लेते हैं कि इस प्रकार सज्जित अभिनेताओं के लिए तीव्र शारीरिक क्रियाएँ दिखलाना असंभव था, और इन परिस्थितियों में ऐसे तीव्र शारीरिक क्रिया-व्यापार नाटक में न रखना नाटककार की बुद्धिमानी थी। हम देखते हैं कि ऐसे कथानकों का चुनना भी ठीक था जिनसे दर्शक-गण परिचित थे, क्योंकि चाहे जब तब अचानक वायु का एक झोंका अभिनेताओं के सिर पर से उड़ते हुए शोभा-पटों को उनके चेहरों पर लपेट भी दे और कुछ देर तक दर्शकों को शब्द न सुनाई दे, फिर भी कथा का सूत्र न टूटे। हम ऐसा कथानक चुनने में भी नाटककारों की चतुरता की प्रशंसा ही करेंगे जिसकी कि न केवल रूपरेखाएँ ज्ञात हों, वरन् जिसमें एक सहजता भी हो, जिससे कि उसका निरूपण विशाल रूप में किया जा सके। हम कोरस का प्रयोजन भी समझ जाते हैं। वह नाट्य-प्रदर्शन में सुखकर गीति-तत्व प्रदान करता है और एक ऐसा भव्य दृश्य भी प्रस्तुत करता है जो नेत्रों को अच्छा लगता था, और जो खुले में होने वाले प्रदर्शन के विशाल दर्शक समूह का ध्यान आकर्षित करने के लिए आवश्यक था। उन यूनानी त्रासदियों और आधुनिक वैगनर शैली के संगीत नाटकों में स्पष्ट समानता दिखलाई देगी, यदि वे खुले में प्रदर्शित किये जाएँ।

रोमन लोगों ने अपने नाट्य-गृह बनाने में—जैसे कि अन्य कलाओं में—एथेन्स निवासियों का अनुकरण किया। उन्होंने अपनी आवश्यकता के अनुसार यूनानी रंगशालाओं की निर्माण-शैली में कुछ परिवर्तन कर लिए। पहाड़ी ढलानों में जहाँ से दर्शक नीचे अभिनेताओं को देखते थे, दर्शकों के बैठने की व्यवस्था करने के बजाय उन्होंने वाद्य-स्थल को ही बेंचों से भर दिया। अत: उन्हें एक मंच बनाना पड़ा जिससे कि दर्शक अभिनेताओं को देख सकें। यह मंच लम्बा और संकरा था, और इसके पीछे एक ऊँची दीवार थी जिसमें दरवाज़े थे और जो मूर्तियों से सजी हुई थी। यह अलंकृत भव्य दीवार प्रत्येक की अपरिवर्तनीय पृष्ठभूमि होती थी, और इसके दरवाज़ों का उपयोग कथानक की आवश्यकतानुसार किया जाता था। फ्रांस के दक्षिण में आरेंज की रंगशाला में मंच कोई 190 फुट चौड़ा था। प्रेक्षागृह का अर्ध व्यास 180 फुट से अधिक था, और इसमें 6,000 दर्शकों के लिए स्थान था। यद्यपि आरेंज की यह रंगशाला कुछ वाद की है, पर पहले के रोमन नाट्यगृह आकार और आकृति में इससे भिन्न नहीं थे।

ऐसी रंगशाला जीवन की करुणा और हास का यथातथ्य चित्रण करने वाले नाटकों की अपेक्षा मूकनाटिका और बाजीगरों के प्रदर्शनों के लिए अधिक उपयुक्त है।

गास्ताँ बुआसिये ने, जो लैटिन साहित्य का न केवल एक बहुत विद्वान अध्येता था वरन् उसका प्रमुख आलोचक भी था, फ्रांस में ऑरेंज तथा अन्य स्थानों की रोमन रंगशालाओं के अवशेषों को देखा। इन रंगशालाओं की जाँच के बाद उन्होंने कहा कि

उस विशाल लैटिन नाट्यशाला का मानसिक चित्र खींचकर वे उन नाटकों को अधिक समझ पाते हैं, जो इन भव्य रंग-भवनों में खेले जाते थे। निःसन्देह यह रंगशाला इन्हीं नाटकों के लिए बनी थी, परन्तु ये नाटक भी इसी रंगशाला के लिए रचे जाते थे। वे सहज ही उन रंगशालाओं के उपयुक्त सिद्ध हुए, जिनमें प्रदर्शित किये जाने के लिए ये रचे गए थे। प्रदर्शन की परिस्थितियों के कारण कुछ बातें आवश्यक हो जाती थीं, जिन्हें स्वीकार करना उनके लिए अनिवार्य था, और यही व्यवहार आगे चलकर नियमों में परिणत हो गए। इन बहुत-से गुण और दोषों का कारण, जिनके लिए तरह-तरह के तर्क दिए जाते रहे और सूक्ष्म व्याख्याएँ की जाती रही हैं, केवल यही था कि नाटककार को उस एक ही प्रकार की रंगशाला की, जिससे उस समय के लैटिन नाटककार परिचित थे, अवस्थाओं का अनुसरण नाट्य-रचना में करना पड़ता था।

3

मध्ययुग में यूनानी और रोमन नाट्य परम्पराएँ टूट चुकी थी, और चर्च की विधि-क्रियाओं से एक नया नाट्य रूप उदित हुआ था। जैसे रोम में आराकीली में आज भी क्रिसमस पर शिशु ईसा की मोम की प्रतिमा प्रदर्शित की जाती है, उसी प्रकार मध्ययुग के पादरी उनके जन्म और पुनरुज्जीवन सम्बन्धी घटनाओं को संवादों और क्रिया-व्यापार के साथ प्रस्तुत करते थे। प्रार्थना-गायक अपने हाथों में गड़रियों का-सा दण्ड लेकर पूर्व के द्वार से आते और इस सुखकर समाचार के विषय में गाते हुए सभा के बीच से होकर आगे बढ़ते थे, जहाँ उन्हें गिरजाघर के दूसरे अधिकारी तीन बुद्धिमान व्यक्तियों के रूप में मिलते थे। आगे चलकर हेरोद और उसके सिपाहियों के लिए एक स्थान अलग निश्चित कर दिया गया; और इसी प्रकार विशाल गिरजाघर में यहाँ-वहाँ अन्य स्थान ईसा के जीवन की घटनाओं के प्रदर्शन के लिए निर्दिष्ट होते गए, इन में से एक स्थान तो आराधनागृह था और दूसरा उच्च पादरी का निवास-स्थान।

इन विभिन्न स्थानों को 'स्टेशन' कहते थे। जब विकसित होकर मिस्टरी नाटक गिरजाघर से बाहर निकला और इसका प्रदर्शन साधारण जनता करने लगी तो गिरजाघर में स्थापित परम्पराएँ थोड़े-से परिवर्तन के साथ सुरक्षित रखी गईं। 1547 ई० में एक 'मिस्टरी' नाटक का अभिनय हुआ था; उसकी पाण्डुलिपि में उस रंगमंच का चित्र बना है जहाँ यह प्रदर्शन हुआ था। इस चित्र के आधार पर रंगमंच का एक मॉडल बनाया गया है जो हमें फ्रांस में मध्ययुग के नाट्य-प्रदर्शन के स्वरूप का आभास देता है। यह रंगमंच लगभग 130 फुट लम्बा छिछला स्थान होता था, और पीछे छोटे-छोटे घरों की एक लम्बी पंक्ति होती थी, जिससे विभिन्न 'स्टेशनों' का, जिनकी नाटक में आवश्यकता पड़ती थी, बोध होता था। दर्शकों के धुर दाएँ ऊँचे स्तम्भों पर बना स्वर्ग होता था और धुर बाईं ओर नरक-द्वार। बीच में सराय, आराधना-गृह, उच्च पादरी का निवास-स्थान और दूसरे आवश्यक 'भवन' (फ्रांसीसी

'स्टेशन' के स्थान पर 'मेंशन' शब्द का प्रयोग करते थे, जिनका उपयोग कथा की घटनाओं के अनुसार होता था। शेष कथा-प्रसंगों का अभिनय रंगमंच पर किसी भी अन्य भाग में होता था क्योंकि शेष रंगमंच सामान्य अविशिष्ट स्थल होता था। इंग्लैंड में 'स्टेशनों' को रंगमंच के पीछे एक पंक्ति में दिखाने के बजाय सामान्य-व्यवहार यह था कि उन्हें जलूस की तरह अलग-अलग गाड़ियों में सजा दिया जाता था और उन्हें शोभा-मंच कहा जाता था। परन्तु इंग्लैण्ड में भी अधिकांश अभिनय इन दृश्य-वाहनों पर नहीं वरन् मार्ग में ही दर्शकों के बीच होता था, जैसाकि आरम्भिक काल में गिरजाघरों में होता था। यह मार्ग ऐसा अविशिष्ट स्थान होता था जिसके कहीं भी होने की कल्पना की जा सकती थी—नोआ के आर्क के सामने का किनारा या हेरोद के महल और उच्च पादरी के निवास-स्थान के बीच की जगह। (ये दोनों भवन दो शोभा-मंचों पर दिखाए जाते थे जो एक साथ अभिनय-क्षेत्र में लाए जाते थे) यही परम्परा एलिज़ाबेथ कालीन रंगशालाओं में बनी रही। अभिनय विटिष्टताहीन सामान्य स्थल पर ही होता था। रंगमंच दृश्य-सज्जा से रहित एक मंच मात्र था, इसलिए वह आवश्यकतानुसार किसी भी स्थान का बोध करा सकता था। दाईं ओर बाईं तरफ दो दरवाज़े होते थे, जिन पर पर्चियाँ लगा देने से आवश्यकता पड़ने पर एक एशिया और दूसरा अफ्रीका का प्रतिनिधान कर देता।

उत्तरकालीन ट्यूडर राजाओं के काल में अभिनेताओं की कई कंपनियाँ बन गईं जिनको बड़े-बड़े सरदारों की संरक्षता मिली हुई थी। ये कंपनियाँ गाँव के मैदानों और सराय के आँगनों में अभिनय करती घूमती थीं। उनके साथ कुछ दृश्य-उपकरण होते थे—तलवार और राजदण्ड और ऐसी ही कुछ अन्य वस्तुएँ; पर वे परदों पर आलेखित चित्र-सज्जा के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे। जब उन्हें लन्दन की सरायों में अभिनय करने की मनाही हो गई, तो वे शहर के कुछ बाहर चले गए और वहाँ उन्होंने अपने नाटकघर बनाए। उनके पास कोई नमूने तो थे नहीं, क्योंकि वे यूनान और रोम की रंगशालाओं के बारे में उतने ही अनभिज्ञ थे जितने उनके मध्य-युगीन पूर्वज। परन्तु उन्हें यह ज्ञात हो गया था कि सरायों के प्रांगण, जो गैलरियों से घिरे हुए छिछले आयताकार स्थल थे, उनके प्रदर्शनों के लिए उपयुक्त थे; और इसी से जो रंगशालाएँ उन्होंने बनाईं वे सरायों के प्रांगणों की तरह थीं। वे ऊपर से खुली हुई वर्गाकार, गोल अथवा अण्डाकार इमारत बनाते थे; केवल गैलरियों पर छत होती थी और मंच के पिछले भाग पर भी; और यह मंच आगे की ओर निकला हुआ दूर प्रांगण में जाता था जहाँ नीचे दर्जे के दर्शक बैठते थे।

इस प्रकार के एक नाट्य-गृह के निर्माण का एक संविदा-पत्र मिला है जिससे ज्ञात होता है कि वह वर्गाकार होता था, उसकी दोनों भुजाएँ 80 फुट की होती थीं, और मंच 43 फुट चौड़ा होता था। पीछे जहाँ गैलरी मंच को काटती थी वहाँ दो चित्रांकित पर्दे लटकाए जाते थे। इन्हीं पर्दों से अथवा दोनों भुजाओं पर बने द्वारों से

अभिनेता प्रवेश और प्रस्थान करते थे। गुहा अथवा अध्ययन-कक्ष दर्शाने के लिए पर्द पीछे फँसा दिये जाते थे। ऊपर की गैलरी छज्जे का, क़िले की दीवार का अथवा किसी भी अन्य स्थान का जहाँ से कोई पात्र नीचे रंगमंच में होने वाला व्यापार देख सकता था—काम देती थी। यद्यपि मंच पर कोई चित्रित पर्दे आदि नहीं होते थे, परन्तु अन्य दृश्य-उपकरण—सिंहासन, लताकुंज और कुएँ आदि होते थे, क्योंकि नाटकीय कथा में इनकी आवश्यकता पड़ सकती थी।

यह प्लेटफार्म-स्टेज वह अविशिष्ट स्थल था जहाँ कोई भी पात्र किसी दूसरे पात्र से मिल सकता था, बिना इस बात का प्रश्न उठे कि उनके मिलने का वास्तविक स्थान क्या है? यदि नाटक का व्यापार स्थान को निर्दिष्ट कर देने से अधिक स्पष्ट होने की संभावना होती तो एक पात्र सूचित कर देता कि वे कहाँ खड़े हैं। परन्तु दर्शक—जिनमें से कुछ स्टूलों पर मंच पर ही बैठे होते थे और अभिनेताओं के साथ बिलकुल मिले हुए होते थे, कुछ मंच के तीनों ओर खड़े रहते थे और कुछ गैलरी में आराम से बैठे होते थे—नाटकीय व्यापार के समय और स्थान के बारे में कोई प्रश्न नहीं पूछते थे। वे तो सभी पक्षों में प्रस्फुटित होती हुई नाट्य-कथा देखना चाहते थे; इसकी उनको कोई चिन्ता न थी कि कोई भी दो पात्र कहाँ मिल रहे हैं। नाटककार को काल और स्थान के सम्बन्ध में पूरी स्वतन्त्रता थी। इतनी अधिक स्वतन्त्रता बहुत-से एलिज़ाबेथकालीन नाटककारों के लिए अच्छी न थी, क्योंकि वे अपने कथानक को सुगठित नहीं करते थे, और अपने दर्शकों को प्रसन्न करके ही संतुष्ट हो जाते थे। जब हम लंदन की रंगशाला की, जिसके लिए शेक्सपियर ने नाटक लिखे, एथेन्स की रंगशाला से, जिसके लिए सॉफ़ॉक्लीज़ ने लिखा, तुलना करते हैं, तो हमें यूनानी और अंग्रेज़ी नाटक के बहुत बड़े अन्तर का ज्ञान होता है। हमें उनके बीच के इस अन्तर के एक मुख्य कारण का भी पता चलता है, और हम जान सकते हैं कि उनका स्वरूप उसकी प्रदर्शन की परिस्थितियों से निर्धारित होता था।

हैग ने अपनी **ट्रैजिक ड्रामा ऑफ़ दी ग्रीक्स** नामक गम्भीर पुस्तक में इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि शेक्सपियर के नाटकों की प्रमुख विशेषता—शान्त और स्थिर भाव से दृश्यों की समाप्ति—का कारण यही है कि प्राचीन अंग्रेज़ी रंगशाला में यवनिका नहीं थी; नाटक के क्रमिक कथा-खण्डों की समाप्ति पर्दा गिरा कर नहीं वरन् पात्रों के मंच से बाहर चले जाने से व्यक्त होती थी। और यही कारण है कि विभिन्न दृश्यों अथवा कथा-खण्डों की समाप्ति चरम-बिन्दु पर करना असंभव था, जैसा कि आज सामान्य नाट्य-व्यवहार हो गया है। हैग का कथन है कि यूनानी त्रासदी की गठन और सरलता का कारण भी प्रदर्शन की परिस्थितियाँ थीं, विशेषकर मंच पर कोरस की निरंतर उपस्थिति, जिसके कारण स्थान-परिवर्तन दिखाया ही नहीं जा सकता था।

प्रदर्शन की परिस्थितियों की समानता के कारण ही यूनानी और एलिज़ाबेथ-

कालीन नाटकों के रूप-विधान में यह एक महत्वपूर्ण समानता मिलती है। एथेन्स की डायनीसियस की रंगशाला और लंदन की ग्लोब रंगशाला में चित्रांकित दृश्य-सज्जा नहीं थी; यह एक ऐसा प्रदर्शन साधन है जिससे शेक्सपियर और सॉफ़ॉक्लीज़ दोनों ही अपरिचित थे; और इसी कारण नाटककार को अपने संवादों में किसी भी स्थान का, जिसका मानसिक चित्र वह दर्शकों के मन में उपस्थित करना चाहता था, वर्णन करने का लोभ ही नहीं होता था वरन् उसके लिए ऐसा करना अनिवार्य था, क्योंकि स्थान का बोध कराने का और कोई उपाय ही न था। एस्किलस के **प्रोमीथियस बाउण्ड** में पात्रों द्वारा उस जंगली और एकाकी स्थल के वर्णन से, जहाँ नायक चट्टान में बाँधा गया था, कुछ व्याख्याकारों ने यह अनुमान लगाया है कि प्रदर्शन में किसी प्रकार की दृश्य-सज्जा का अवश्य प्रयोग होता होगा, जिससे एकत्र दर्शक-समूह को उस स्थान की भयानकता और विषाद का अनुभव होता होगा। परन्तु यह अनुमान निराधार है, क्योंकि यदि दृश्य-सज्जा द्वारा उस स्थान का उपयुक्त प्रतिनिधान संभव होता तो कवि को अपने पात्रों के मुख से उसका वर्णन करने की आवश्यकता न अनुभव हुई होती। हम इब्सन और रॉस्ताँ को अपने नाटकों का कार्य-व्यापार स्थगित करके पृष्ठभूमि का विस्तृत वर्णन करते नहीं पाते, क्योंकि वह तो दर्शकों के सम्मुख प्रदर्शित है। आधुनिक नाटककार के लिए इस प्रकार का स्थान-वर्णन निरर्थक होगा, क्योंकि वह जानता है कि नाटकीय घटना-स्थल का चित्र उपस्थित करने के लिए वह निपुण रंग-सज्जाकारों पर निर्भर रह सकता है। सॉफ़ॉक्लीज़ अथवा शेक्सपियर के दर्शकों के लिए काव्यमय वर्णन व्यर्थ अथवा अप्रासंगिक नहीं थे; वे सहायक ही सिद्ध हो सकते थे। हम सब जानते हैं कि शेक्सपियर ने चित्रात्मक वर्णनों का कितना उपयोग किया है; आज का नाटककार इस सुविधा से वंचित है।

4

फ्रांस में भ्रमण करने वाली नाटक-कंपनियाँ सराय के प्रांगणों में नहीं वरन् टेनिस-मैदानों में अभिनय करने की अभ्यस्त हो गई थीं, और मोलियर ने अनेक बार इन्हीं टेनिस-मैदानों में अभिनय किया था जो रंगशाला का काम दे रहे थे। टेनिस-मैदान 100 फुट से कुछ कम लम्बा और 40 फुट से कुछ कम चौड़ा होता था। इसके चारों ओर वीथिकाएँ होती थीं और ऊपर छत होती थी, अतः इसे मोमबत्तियों से प्रकाशित करना आवश्यक होता था। एक किनारे पर रंगमंच आसानी से बना लिया जाता था, जिसके सामने रंग-मुख होता था जिसमें संभवतः प्रत्येक अंक के प्रारम्भ में पर्दा उठता था। इस प्रकार की रंगशाला में भी हम दर्शक को मंच के पार्श्व में बैठते हुए पाते हैं, अलग-अलग स्टूलों पर नहीं बल्कि बेंचों पर जो तल-बत्तियों से लम्बवत् रखी जाती थीं; और यहाँ भी इंग्लैंड और यूनान की रंगशालाओं की भाँति अभिनेता दर्शकों से घिरे होते थे। शायद आगे चलकर इन बेंचों के पीछे दृश्य-सज्जा के लिए चित्रांकित पर्दे आदि रहने लगे हों; परन्तु प्रारम्भ में एक सादे पर्दे से अधिक और कुछ नहीं रहता था।

फ्रांसीसी नाटककारों ने कार्नाइ के अनुकरण पर स्थान-अन्विति को अपना लिया था। मोलियर ने अपने अधिकतर नाटकों में सभी अंक एक ही अपरिवर्तित स्थान में ही सीमित रखे।

यह सच है कि उनके कुछ प्रारम्भिक नाटक इतालवी मुखौटा-कामदी नाटकों के समान एक ऐसे दृश्य-बंध पर प्रदर्शित किये गए थे, जिसमें एक चोराहा होता था और उसके दोनों ओर लकड़ी के घर बने होते थे, जिसके द्वारों से पात्र आते-जाते थे, और खिड़कियों से झाँक सकते थे। इस दृश्य-बंध से मोलियर और उसके दर्शक परिचित थे, क्यों इतालवी अभिनेता उसी रंगशाला में प्रस्तुत किए जाने वाले अपने नाटकों में ऐसे ही दृश्य-बंध का प्रयोग करते थे। और इस प्रकार हम देखते हैं कि हमें यह समझने के लिए कि मोलियर क्यों और कैसे रंगमंच पर **स्कूल फॉर हज़बैंड्ज़** जैसी रचना प्रस्तुत कर सका जो—जैसा कि वाल्तेयर ने कहा था—सम्पूर्ण रूप से आख्यानबद्ध प्रतीत होती है, यद्यपि वह वास्तव में क्रिया-व्यापार में प्रदर्शित है—नाट्य प्रदर्शन की प्रारम्भिक इतालवी अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करना होगा। कुछ समय बाद मोलियर ने इतालवियों की सुविधाजनक युक्तियों को छोड़ दिया; किन्तु उसके दृश्य-बंध हमेशा बड़े सादे होते हैं, और ऐसा स्वाभाविक ही है जब कि रंगमंच दर्शकों से घिरा हो। उसके पात्र सदैव खड़े रहते हैं, जब तक कि कुर्सियाँ नितान्त आवश्यक ही न हों, और नाटकीय व्यापार को ऐसी निपुणता से संगठित किया जाता है कि वह सरलता से अविशिष्ट स्थल अर्थात् मंच पर बैठे दर्शकों और पीछे के चित्रांकित पर्दे के बीच की संकरी जगह में, प्रस्तुत किया जा सके। यही कारण है कि मोलियर के नाटक आधुनिक रंगशालाओं में खेले जा सकते हैं। उनके लिए बहुत अधिक दृश्य-सज्जा की आवश्यकता नहीं है यद्यपि दृश्य-सज्जा का उपयोग करने से उनको कोई हानि भी नहीं पहुँचती।

मोलियर वास्तव में आधुनिक नाटककारों में सर्वप्रथम है, क्योंकि शेक्सपियर के समय की नाट्य-प्रदर्शन-परिस्थितियाँ अर्द्धमध्ययुगीन थीं। शेक्सपियर के प्रांगण-नाट्यगृह में छत नहीं थी, मंच केवल सूर्य से प्रकाशित होता था, और दृश्य-सज्जा नहीं होती थी, परन्तु मोलियर के नाट्य-गृह में छत थी, कृत्रिम प्रकाश था, और चित्रांकित दृश्य-सज्जा भी थी। मोलियर सदैव टेनिस के मैदान में ही अभिनय नहीं करता था। उसको रिशेलू द्वारा निर्मित भव्य नाट्यशाला में भी अपने नाटक प्रस्तुत करने की अनुमति थी। इस नाट्यशाला का निर्माण कुछ रोमन नाट्यशालाओं के अवशेषों के इतालवी वास्तुकारों द्वारा किये गए अध्ययन के आधार पर किया गया था। इटली के प्रभाव के कारण फ्राँस में टेनिस-मैदान नाट्यगृह का प्रयोग बंद हो गया, उसी प्रकार जैसे इंग्लैंड में प्रांगण-नाट्यगृह का प्रयोग बन्द हो गया था, और सभी जगह ऐसी नाट्यशालाएं बनाई गईं जो बाहर से हमारे आधुनिक मनोरंजन-गृहों के समान थीं; यद्यपि पेरिस में अठारहवीं सदी के मध्य तक दर्शक रंगमंच पर बैठते रहे। एक बार वाल्तेयर के **सेमिरामीस** का अभिनय हुआ तो प्रबंधकों को दर्शकों से यह प्रार्थना करनी पड़ी थी

कि वे वीनस के प्रेत को निकलने की जगह दे दें। इन इतालवी रंगशालाओं में से अधिकतर में भव्य दृश्य-सज्जा के साथ ऑपेरा भी प्रदर्शित होते थे, इसलिए ये पहले की रंगशालाओं की अपेक्षा बहुत बड़ी थीं। रंगमंच को मोमबत्तियों और धीमे तेल-लैम्पों से प्रकाशित कर पाना असम्भव था, और तब प्रकाश के यही साधन थे। कदाचित् यह भी एक कारण है कि रंगमंच रंगमुख के, जहाँ पर्दा उठता और गिरता था, बहुत आगे दर्शकों के बीच तक चला जाता था। इंग्लैंड में तल-बत्तियों और पर्दे के बीच के इस आगे निकले हुए स्थान को एप्रन (मंचाग्र) कहते थे, और उसके बीच के अधिकतम प्रकाशित केन्द्र को 'फोकस' (मध्यस्थल)। अभिनेता नाटक का हर महत्त्वपूर्ण अंश इसी मध्यस्थल में प्रस्तुत करते थे, क्योंकि यहीं पर इतना प्रकाश होता था कि दर्शक उनके मुख की भावाभिव्यक्ति देख सकते थे। इससे वे दर्शकों के बहुत निकट भी पहुँच जाते थे, और जो दर्शक मंच के बहुत निकट बॉक्सों में बैठे होते थे, उनकी ओर अभिनेताओं की पीठ हो जाती थी।

पुनर्जागरण के बाद दो शताब्दियों तक रंगशाला का यही स्वरूप रहा और इसका ड्रूरी लेन रंगशाला से अधिक अच्छा उदाहरण कोई नहीं है जिसका प्रबन्ध शेरिडन के हाथों में था और जिसके लिए उन्होंने **स्कूल फ़ॉर सकैंडल** लिखा। रंगमुख 70 फुट चौड़ा होता था, रंगमंच उतना ही गहरा होता था और पर्दे के सामने 18 फुट लम्बा मंचाग्र रहता था। दृश्य-सज्जा बहुत कुछ इसी प्रकार की होती थी जैसी हम इटली के आरम्भिक ऑपेरा के प्रदर्शनों में देखते हैं। पीछे एक पर्दा रहता था और पर्दे के समानान्तर दोनों ओर पाँच-छः पार्श्वपट होते थे, जो पेड़ों, स्तम्भों अथवा पार्श्व-भित्तियों का बोध कराते थे। इन्हीं पार्श्वपटों के बीच की खुली जगह से अभिनेता रंगमंच पर आते थे। घटनास्थल इस युक्ति द्वारा कई बार बदला जा सकता था कि अर्द्ध-दृश्यबन्धों को आगे की ओर खींच लिया जाता था जो मंच के मध्य में मिलकर पूर्ण दृश्य-बंध प्रस्तुत कर देते थे। दूसरी युक्ति यह थी कि एक दृश्य-बंध के पार्श्वपटों को पीछे ढकेल दिया जाता था और दूसरे दृश्य-बंध के पार्श्वपटों को आगे खींच लिया जाता था।

प्रदर्शन की इसी पद्धति के कारण शेरिडन **स्कूल फ़ॉर स्कैंडल** के एक-एक अंक में दो या तीन विभिन्न घटनास्थल रख सका था—पहले उसके पात्र लेडी स्नियरवेल के घर में दिखाए जाते हैं और फिर लेडी टीजल के घर में। शेक्सपियर के सभी सम्पादकों को इसी पद्धति का ज्ञान था। एलिज़ाबेथकालीन रंगशाला से अपरिचित होने के कारण उन्होंने स्वभावतः यही समझा कि शेक्सपियर ने भी इसी पद्धति को अपनाया था, और इसीलिए उन्होंने शेक्सपियर के नाटकों को जहाँ भी स्थान-परिवर्तन का कोई भी चिह्न मिला कि उसके आधार पर उनको अंकों और दृश्यों में विभाजित कर दिया। नाटकों का अंकों और दृश्यों में विभाजन शेक्सपियर की वास्तविक नाटक-पद्धति का बिलकुल ग़लत रूप उपस्थित करता है। उन्होंने अपने नाटकों की कल्पना एक

कहानी के रूप में की थी जो संवादों में कार्य-व्यापार द्वारा कही जाय; अधिकतर कार्य ऐसे अविशिष्ट स्थान में होते थे जो कहीं भी हो सकता था। शेक्सपियर वहीं घटना-स्थल का निर्देश करते थे जहाँ ऐसा करने से कोई लाभ हो; और इस बात को तो हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि साधारण पुस्तकालय संस्करणों में जिस प्रकार छोटे-छोटे दृश्यों में विभाजित उनके कथानक हमें मिलते हैं, उस स्वरूप की कल्पना उनके मन से बिलकुल ही दूर थी।

5

पुनर्जागरण काल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक के दो सौ वर्षों के काल-खण्ड के अंतिम दिनों से प्रदर्शन की परिस्थितियाँ बदलने लगी थीं। रंगसज्जा-कार की कला अधिक जटिल होती जा रही थी; और भवन-सदृश दृश्यबंध (बाक्स-सेट) का प्रारम्भ हो चुका था, जिसमें कमरा दीवारों और छत के साथ दिखाया जा सकता था। उन्नीसवीं सदी के मध्य के यथार्थवादी आन्दोलन के प्रभाव में रंगमंच प्रबंधक ऐसी दृश्य-सज्जा करने के लिए बाध्य हो गए कि उनमें नाटकीय कथानक के युग और पात्रों की विशिष्टता हो और पात्र अपने परिवेश से पूर्णतया सम्बद्ध हों। प्रकाश की सुविधाएँ बहुत बढ़ गई थीं—पहले गैस के कारण फिर लाइमलाइट के कारण और आगे चलकर बिजली के कारण। रंगमंच के दूर-दूर के कोनों को भी इस प्रकार प्रकाशित करना सम्भव हो गया कि वहाँ खड़े अभिनेताओं के मुख के भाव दर्शकों को दिखाई दे सकें। वक्राकार तल-बत्तियों के पीछे का मंचाग्र अब न तो आवश्यक ही था और न उपयोगी, और इसलिए रंगमंच पीछे रंगमुख तक काट दिया गया और यही मंच के लिए एक प्रकार का फ्रेम बन गया। सर हेनरी हर्कोमर ने आधुनिक नाट्य-व्यवहार की ही बात कही थी जब उन्होंने कहा था कि "रंग-मुख को मंच-चित्र के लिए वही काम करना चाहिए जो फ्रेम फलक-चित्र के लिए करता है; उसे मंच-चित्र को परिवेश से अलग करना चाहिए जैसा कि चित्र को फ्रेम करता है।"

इसी तस्वीरी फ्रेम वाले रंगमंच के लिए आज का हर नाटककार नाटकों की रचना कर रहा है, और उसकी रचना-पद्धतियाँ अनिवार्यतः इसी तस्वीरी फ्रेम वाले रंगमंच के अनुकुल हैं, जिस प्रकार कि एलिज़ाबेथकालीन नाटककार की पद्धतियाँ अनिवार्यतः प्लेटफार्म-स्टेज के अनुकूल थीं। सम्भवतः हमने अभी तक रंगशाला की भौतिक अवस्थाओं में होने वाले इन बड़े-बड़े परिवर्तनों के सभी परिणामों का अनुभव नहीं किया है, और इस परिवर्तन का पूरा महत्त्व भी संभवतः हम नहीं समझ सके हैं। उदाहरण के लिए, अब अभिनेता आंशिक रूप में दर्शकों के बीच में आ गए हैं। अतः नाटक निश्चय ही कम वक्तृता-पूर्ण, कम अलंकार-युक्त और कम अतिरंजनाशील होता जाएगा; अब वह अनिवार्यतः भाषा में सरल और अधिक स्वाभाविक होता जाएगा। लम्बे स्वगत-भाषण, गोपनीय स्वीकारोक्तियाँ जो प्लेटफार्म-स्टेज पर असंगत न थीं, जब कि पात्र ऐसे अविशिष्ट स्थान पर होता था जो कहीं भी हो सकता है, और जब

कि वह कुछ दर्शकों के इतना निकट होता था कि अपना हाथ बढ़ाकर उन्हें छू सकता था; परन्तु अब जब अभिनेता रंग-मुख के पीछे दूर खड़ा होता है, और वास्तविक दीखने वाले कमरे में वास्तविक कुर्सी पर बैठा होता है तो ये स्वगत-भाषण और स्वीकारोक्तियाँ स्पष्टतः असंगत हैं।

कहा जा चुका है कि स्वगत-कथन का त्याग इब्सन के प्रभाव से हुआ। यहाँ पर यह भी स्वीकार करना होगा कि नार्वे के उस नाटककार ने अपनी नाट्य-पद्धतियों को बड़ी कुशलता के साथ तस्वीरी फ्रेम वाले रंगमंच की अवस्थाओं के अनुकूल बना लिया है। परन्तु हम स्वगत कथन के निषेध का श्रेय इब्सन के भी पहले एक-दूसरे व्यक्ति को दे सकते हैं, और वह था एडिसन (बिजली का आविष्कर्ता), क्योंकि रंगमंच से स्वगत-कथन का त्याग वास्तव में रंगमंच पर बिजली के प्रकाश का ही एक अनिवार्य परिणाम था। सत्रहवीं सदी में फ्रांस की रंगमंचीय परिस्थितियों के बारे में लुडोविक सेलर के विवरण से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। कृत्रिम प्रकाश से कई प्रकार की रूढ़ियों का जन्म होता है जिससे किसी प्रकार का अनुकरण अधिक सरलता से स्वीकार कर लिया जाता है, और जहाँ नेत्र कम आग्रही होते हैं, और तथ्य तथा कल्पना में एक प्रकार का समझौता हो जाता है; कृत्रिम प्रकाश वह तत्व है जिसकी नाट्य-प्रदर्शन-कला की प्रगति में बहुत बड़ी देन है।

बीसवीं सदी के तस्वीरी फ्रेम वाले मंच पर एथेन्स के विशाल खुले रंगमंच के लिए लिखी गई सॉफॉक्लीज़ की त्रासदियों और पेरिस के टेनिस-मैदान-रंगमंच के लिए लिखी गई मोलियर की कामदियों को प्रस्तुत करना सम्भव है। परन्तु शेक्सपियर और शेरिडन के नाटकों को इस आधुनिक रंगमंच में प्रस्तुत करने के लिए उनमें कुछ परिवर्तन करना होगा, क्योंकि शेक्सपियर के नाटक प्रांगण-रंगमंच की बिलकुल ही भिन्न परिस्थितियों के लिए लिखे गए थे और शेरिडन के नाटक उत्तर-पुनर्जागरण काल के रंगमंच की परिस्थितियों के अनुकूल। तस्वीरी फ्रेम वाला रंगमंच अपने पहले वाले रंगमंच से चाहे अच्छा हो अथवा बुरा, परन्तु उससे भिन्न अवश्य है, और आज हम उसी रंगमंच के अभ्यस्त हैं। यदि शेक्सपियर और शेरिडन आज नाटक लिख रहे होते तो उन्होंने इसी तस्वीरी फ्रेम वाले रंगमंच के लिए लिखा होता; और तब हम देखते कि वे अपने कथानक का संगठन इस प्रकार करते कि उसके हर अंक में दृश्य-बंध होता, क्योंकि हमारी आधुनिक दृश्य-सज्जा इतनी जटिल और विस्तृत हो गई है कि अंक के बीच में घटनास्थल परिवर्तन करना कठिन हो जाता है। यह एक प्राविधिक कठिनाई है जिस पर विजय प्राप्त करनी है, और यह असम्भव था कि इसका प्रभाव उनकी नाट्य-पद्धति पर न पड़ता, कुछ सीमा तक तो विषय-वस्तु के चुनाव पर भी पड़ता। किसी भी युग में कला की प्राविधिक सम्भावनाएँ न केवल कलाकार की अभिव्यंजना शैली वरन् उसके कथ्य को भी बहुत कुछ निर्धारित करती हैं और कुछ हद तक सीमित

करती हैं। और हम कलाकार की उपलब्धियों को तभी पूरी तरह समझ सकते हैं जब कि इन प्राविधिक सम्भावनाओं का विश्लेषण करें।

एक और तथ्य पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि जब से रंग-सज्जाकार कक्ष के भीतरी और बाहरी भागों का बहुत कुछ यथार्थवादी प्रतिनिधान करने में समर्थ हो गए हैं और विशेषकर जब से विद्युत्प्रकाश के कारण मंच का हर कोना, भीतरी और बाहरी दृश्य-बंध, प्रकाशित किया जा सकता है, तबसे तो विश्व भर में प्रदर्शन की परिस्थितियाँ एक-जैसी हो गई हैं। उनमें केवल कुछ कम महत्त्व की छोटी-छोटी बातों में ही अन्तर रहता है। पेरिस और लंदन की आधुनिक रंगशालाओं और न्यूयार्क, मेलबोर्न अथवा बुडापेस्ट और ब्यूनस्आयर्स की रंगशालाओं में बड़ी समानता है। रंगशालाओं की यह एकरूपता नाटक के इतिहास में बिलकुल नवीन बात है। शेक्सपियर और लोप द वेगा की परिस्थितियों में साधारण साम्य हो सकता है, परन्तु इंग्लैण्ड और स्पेन की ये प्रारम्भिक परिस्थितियाँ, यूनानी रंगशाला, रोम की रंगशाला, मोलियर के समय की फ्रांसीसी और शेरिडन के समय की अंग्रेज़ी रंगशाला से नितांत भिन्न हैं, और ये सभी रंगशालाएँ भी एक-दूसरे से भिन्न थीं। और अब इन परस्पर भिन्न परम्पराओं से हमारी आधुनिक सभ्यता की परिस्थितियों के लिए उपयुक्त रंगशाला का विकास हुआ। आज किसी भी आधुनिक भाषा में लिखा हुआ नाटक कहीं भी भेजा जा सकता है, और उसकी संरचना में बिना किसी भी प्रकार का परिवर्तन किये प्रदर्शन के लिए उसको अनूदित किया जा सकता है।

रंगशाला की परिस्थितियों में विश्वव्यापी एकरूपता के साथ-साथ बहुत कुछ नाट्य-पद्धति में भी एकरूपता आ गई है। अब अपनी संरचना में फ्रांसीसी नाटक जर्मन नाटक के निकट है, और इतालवी नाटक अमरीकी नाटक के। इसका परिणाम यह हुआ है कि आधुनिक नाटककार की पहुँच सार्वभौमिक हो गई है। इस बात की आशा उन पिछले युगों के नाटककार भी नहीं कर सकते थे, जब नाटक की बहुत उन्नति हुई थी। इब्सन, रॉस्ताँ, डनंज़ियो और एश्गारे के नाटक कहीं भी खेले जा सकते हैं। इनमें से सभी नाटककारों की रचना-पद्धति मूलतः एक ही है, चाहे उसकी विषय-वस्तु कितनी ही राष्ट्रव्यापक और वैयक्तिक क्यों न हो। और यह जानकर आश्चर्य होता है कि नाटक के इस विश्वव्यापी रूप के विकास के साथ-साथ स्थानीय विशेषताओं, चरित्रों के जातीय प्रकार और जातिपरक विशिष्ट कथानकों के प्रचलन को भी प्रोत्साहन मिला है। नाटक का रूप सार्वभौम हो गया है, किन्तु उसकी विषयवस्तु बराबर राष्ट्रमूलक होती जा रही है। इब्सन स्कैण्डिनेविया के हैं, वर्गा इटली के, सर आर्थर पिनेरो और हेनरी आर्थर जोन्स ब्रिटेन के हैं, अगस्टस टामस और क्लाइड फ़िच अमरीका के। फिर भी उनमें से प्रत्येक ने अपने नाटकों की रचना उसी अन्तर्राष्ट्रीय रचना-पद्धति के अनुसार की है जो हमारी आज की एक-ही प्रकार की रंगशालाओं के उपयुक्त है।

चौथा अध्याय

दर्शकों का प्रभाव

1

जिस रंगशाला के लिए नाटककार अपने नाटकों की रचना करता है, उसका आकार, आकृति, दृश्यसज्जा, और प्रकाश-व्यवस्था, ये सब उस पर प्रभाव डालते हैं और उसकी कृति का रूप-विधान निर्धारित करते हैं; यही नहीं विषयवस्तु को भी कुछ-न-कुछ प्रभावित करते हैं। किन्तु किसी देश और काल के नाटक की विषयवस्तु पर सबसे अधिक प्रभाव समकालीन दर्शकों का पड़ता है, जिनके आनन्द के लिए उसकी रचना होती है। किसी काल का नाटककार किस प्रकार रंगमंच पर अपनी कथा प्रस्तुत करेगा, यह उस काल-विशेष के रंगमंच के रूप-प्रकार पर निर्भर करता है; परन्तु वह किस प्रकार की कथा कहेगा यह तो उन दर्शकों पर निर्भर करता है जिनका मनोरंजन वह करना चाहता है। जैसा कि ड्राइडन ने अपने एक उपसंहार में कहा था : "जो रंगमंच पर पूर्णतया सफल हुए हैं, उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग युग के अनुरूप किया है।" और ड्राइडन के इस कथन से जॉनसन की काव्य-पंक्तियों की याद आ जाती है : "नाटक के नियमों की रचना, नाटक के संरक्षक—दर्शक—करते हैं; और हमको, जो मनोरंजन प्रस्तुत करने के लिए जीते हैं, जीने के लिए मनोरंजन प्रस्तुत करना होगा।"

दूसरे शब्दों में गीति-कवि की भाँति नाटककार अपने दर्शकों से स्वतन्त्र नहीं है, क्योंकि वह केवल आत्माभिव्यक्ति से संतुष्ट नहीं हो सकता। उसकी रचना अपनी प्रभावशालिता के लिए श्रोताओं पर ही निर्भर होती है, और उसे नितान्त असफलता के भय के कारण उनका ध्यान रखना पड़ता है। उन्हें वह तो देना ही है जो वे चाहते हैं, चाहे फिर नाटककार उन्हें वह भी दे जो वह स्वयं चाहता है। नाटक का रचयिता अपने लिए ही रचना-कार्य नहीं करता, उसे अपने सहभागियों के रूप में दर्शकों को भी स्वीकार करना होता है। नाटककार और उसके दर्शकों के बीच बराबर एक प्रकार का अव्यक्त समझौता, एक अर्ध-संविदा रहता है। कुशल कलाकार ऑबिन यॉक ने दो शताब्दियों पूर्व नाटक के नियम निर्धारित करते समय कहा था : "हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि विषय दर्शकों के आचार और मतों के अनुरूप नहीं है, तो वह कभी ग्राह्य नहीं होगा।" उन्होंने अपने आलोचना सिद्धान्त पुस्तकालय में नहीं वरन् रंगशाला में निर्धारित किए थे। यदि कोई अंक या दृश्य ऐसा है जो दर्शकों के आचार

के अनुरूप नहीं है, तो आप देखेंगे कि दर्शक तालियाँ बजाना बन्द कर देंगे, और उनके मन में असन्तोष उत्पन्न होगा, चाहे वे स्वयं इसका कारण न जान पाएँ।

जिस रंगशाला के लिए सॉफ़ॉक्लीज़ ने लिखा था वह शेक्सपियर की रंगशाला से लगभग हर प्रकार से भिन्न थी, क्योंकि यूनानी नाटककार को जिन दर्शकों को प्रसन्न करना था, वे उन दर्शकों से बिलकुल भिन्न थे, जिनको शेक्सपियर को अपनी जीविका कमाने के लिए प्रसन्न करना था। लुई चौदहवें के समय की रंगशालाओं में, जहाँ मोलियर की कामदियाँ सर्वप्रथम प्रस्तुत की गईं, और उन आधुनिक रंगशालाओं में जहाँ अब इब्सन के नाटक खेले जाते हैं, इतना अन्तर नहीं है जितना अन्तर पेरिस में रहने वाले बाहरी नागरिकों में, जिन्हें फ्रांसीसी नाटककार प्रसन्न करना चाहता था, और ग्रिमस्टैड के संकीर्ण मनोवृत्ति वाले ग्रामीणों में है, जिन्हें इब्सन अपने दर्शकों के रूप में देखता था, और जिन्हें वह उनकी नैतिक निश्चेष्टता से जगाना चाहता था।

यद्यपि नाटककार को दर्शकों के मतों, और पूर्वाग्रहों को सदैव ध्यान में रखना होता है, फिर भी इस बात का उसके ऊपर कोई अवांछनीय दबाव नहीं पड़ता। यह तो सहज ही हो जाता है, क्योंकि वह सदा अपना समकालीन तो होता ही है, और उसकी रुचियाँ और अरुचियाँ अपने समय के लोगों के समान ही होती हैं, और लोगों को वह अपने नाट्य-प्रदर्शनों में आते हुए देखना चाहता है। सॉफ़ॉक्लीज़ को, अपने नाटकों में ऐसे विषय न आने देने के लिए जो एक्रोपोलिस की ढलानों पर बैठे हुए हज़ारों लोगों के लिए अप्रिय हों, सजग प्रयत्न नहीं करना पड़ता था, क्योंकि वह स्वयं भी तो एथेंस का ही निवासी था; फिर भी निःसंदेह आइसॉक्रिटीज़ के भाषणों में दी गई सलाह "लोगों का अध्ययन करो"—का उसने हमेशा अनुसरण किया। शेक्सपियर को इस बात से डरने की आवश्यकता नहीं थी कि वह उत्साही एलिज़ाबेथ-कालीनों को कोई आघात न पहुँचा दे। वह स्वयं भी तो उस कुमारी रानी की प्रजा था, उन्हीं सीधे-सादे लोगों में से एक था, और उसे अपने युग के दर्शकों की इच्छाओं की सहज समझ थी। जूसराँ ने कहा है कि शेक्सपियर के समय के अंग्रेज़ी दर्शक-समाज ने अपनी रुचियों को, जो सहज और स्वाभाविक थीं, नाटककार पर आरोपित किया; वह और सब लोगों की भाँति ही अपने भीतर बीज-रूप में विद्यमान प्रवृत्तियों को ही, जिनका वह अनुभव करती थी परन्तु अभिव्यक्त न कर पाती थी, रंगमंच पर अधिक सुन्दर या असुन्दर रूप में, अर्थात् वास्तव से अधिक अनुरंजित रूप में, प्रदर्शित होते देखना चाहती थी।

मोलियर अपने समकालीनों की रुचि के विषय चुन सकता था, क्योंकि वह फ्रांस का रहने वाला था, अपने युग की भावनाओं के साथ उसकी सहानुभूति थी, और उसी पारम्परिक दाय से वह भी नियंत्रित था जिससे कि उसका दर्शक-समाज। वह स्वयं ही निसार्ड के कथन का सर्वोत्तम उदाहरण है कि फ्रांस में प्रतिभावान व्यक्ति वही है जो वही कहता है जो सर्वज्ञात है, जो सर्व-साधारण की ही बुद्धिमत्तापूर्ण प्रतिध्वनि है,

और यदि वह हमें अपने कथन के प्रति अनुसना और उदासीन नहीं देखना चाहता तो उसे चाहिए कि वह हमें अपने व्यक्तिगत विचार बताकर हमारे ही व्यक्तित्व का उद्घाटन करे। जैसे मोलियर नागर और शहरी समाज का नाटककार है, जो फ्रांस की प्रमुख सामाजिक प्रवृत्तियों से निर्देशित होता है, उसी प्रकार इब्सन ग्रामीण है, जो सदैव उस छोटे समुद्रतटीय ग्राम के निवासियों को व्यक्तिवाद का उपदेश देता रहता है, जहाँ वह युवाकाल में रहा था। वह उस शहरी दुनिया के लोगों को नहीं सोचता, जहाँ उसने अपना शेष जीवन बिताया यद्यपि विश्व-भर के दर्शक इब्सन की क्षमता और कुशलता से प्रभावित हुए हैं, परन्तु उसने अपने सामाजिक नाटक विश्व-भर के दर्शकों के लिए नहीं वरन् नार्वे के प्राचीन निवासियों के लिए लिखे थे, जिन्हें वह नैतिक और मानसिक रूप से जागृत करना चाहता था। जिन लोगों के बीच वह बड़ा हुआ, उन्हीं लोगों की भावनाओं और कमियों के चित्रण में ही हमें उसकी उस संकीर्ण ग्रामीणता का कारण मिल जाता है, जो उसके किसी-किसी नाटक में अनायास दिखाई पड़ जाती है।

2

किसी भी नाटककार के नाटकों को समझने के लिए उन लोगों के बारे में कुछ जानकारी होना आवश्यक है, जिनके लिए उसने नाटक लिखा और जिनके साथ उसका सामाजिक सम्बन्ध था। दूसरी ओर, किसी भी देश और काल के नाटक-साहित्य के अध्ययन से हमको उस देश और काल के आचार, रीतियों, विचारधाराओं और लोगों की भाव-दशाओं के बारे में रोचक जानकारी होती है। उदाहरणार्थ मध्ययुगीन नाटक का विकास सर्वप्रथम फ्रांस में हुआ, और शायद इसी कारण पूरे यूरोप में मिस्टरी नाटक एक ही प्रकार के हैं। चाहे वे फ्रांसीसी और अंग्रेज़ी भाषा के हों और चाहे इतालवी और जर्मन भाषा के। इस एकरूपता में एक ही भिन्नता पाई जाती है, और वह है जौज़फ और पोटिफर की पत्नी की बातचीत जिसे अंग्रेज़ी रचयिताओं ने संक्षेप में ही लिया, अथवा बिलकुल ही छोड़ दिया, परन्तु फ्रांसीसी रचयिताओं ने अपने देशवासियों के मनोरंजन के लिए इस प्रसंग को विस्तार से दर्शाया। आज भी फ्रांसीसी लोग वैवाहिक विश्वासघात को हँसी में उड़ा सकते हैं, परन्तु अंग्रेज़ लोग इस बात को गम्भीरता से ही लेंगे। यहाँ हमें इस बात का उत्तर मिल सकता है कि वे चुलबुले प्रहसन जिनसे पेरिस की जनता का मनोरंजन हुआ है, न्यूयॉर्क और लन्दन की जनता को रोचक क्यों नहीं लगे।

टेरेंस ने अपने नाटकों में लोकरुचि की जिस कमी के बारे में बार-बार असन्तोष प्रकट किया है उसका कारण रोम के उस समय के दर्शक-समाज के साथ सामंजस्य न स्थापित हो सकना है। वे अपने नाटकों में षड्यंत्रकारी घटनाएं उचित अनुपात में रखते थे और नाटकीय संवादों को परिमार्जित रूप देते थे, जबकि दर्शक भोंडी नक़लों के अभ्यस्त थे। टेरेंस अपने समय के अनुकूल नहीं थे; यदि वे इटली के पुनर्जागरण के समय हुए होते तो सफल कामदीकार होते, क्योंकि उस समय उन्हें

विद्वान दर्शक मिलते जो उनके कोमल रचना-सौष्ठव का आनन्द ले सकते। टेरेंस ने अपने समय की जनता की रुचि के अनुकूल लिखना स्वीकार नहीं किया। लोप द वेगा अधिक व्यावहारिक थे और उन्होंने अपने समय के दर्शकों को स्वीकार किया, जो टेरेंस के समय के दर्शकों की अपेक्षा कम उग्र थे। स्पेन के इस नाटककार ने इस स्थिति से पूरा लाभ उठाया और अपने विविधतापूर्ण नाटकों में अद्भुत सृजन-शक्ति तथा रचना-क्षमता का परिचय दिया। 'नाटक लेखन की नवीन कला' शीर्षक अपनी एक कविता में उन्होंने कहा कि इन नाटकों की रचना नाटक के नियमों के विरुद्ध की गई है। वे नाटक लिखने बैठने से पहले टेरेंस और प्लाट्स को बिलकुल भुला देते थे, परन्तु वे इस प्रकार पूर्ण रूप से अपने युग और अपनी जाति के व्यक्ति थे कि उन्हें अपने कला-विधान का हनन करने की आवश्यकता ही नहीं थी। वास्तव में जनता को प्रसन्न करने के लिए उन्हें अपने ऊपर कोई प्रतिबंध नहीं लगाना पड़ा; और सच तो यह है कि वे अपने को नाटकों में पूरी तरह और मुक्त भाव से व्यक्त कर सके, यद्यपि उन्होंने नाट्य-रचना में जनता की रुचि का भी ध्यान रखा। इसी प्रकार शेक्सपियर भी अपने नाटकों को लन्दन की जनता की रुचि के अनुकूल बनाकर ही पूर्ण आत्माभिव्यक्ति करने में सफल हुए। यहाँ हम एक बार फिर कहना चाहेंगे कि सच्चा कलाकार बिना किसी हिचक के अपने ऊपर लगाये गए प्रतिबंधों को स्वीकार कर लेता है, वरन् प्रायः इन मार्ग-बाधाओं को मार्ग के सोपानों में परिणत कर लेता है और कला के उच्च स्तरों तक पहुँचता है।

यदि यूनान का नाटककार अपनी कला-दृष्टि से आधुनिक रोमांसपूर्ण प्रेम की कल्पना कर लेता तब भी वह **रोमियो और जूलियट** कभी नहीं लिखता, क्योंकि समकालीन दर्शक उस तीव्र और आकस्मिक भाव को समझने में ही असफल रहते जो इस कथा का मूल-स्रोत है। दूसरी ओर नाटककारों ने ऐसे बहुत-से कथा-भावों को लिया है जिनमें आधुनिक दर्शकों को कोई सहानुभूति नहीं हो सकती। हमारे लिए यूरिपिडीज़ के **आलसेस्टिस** की मधुर करुणा पति की उस निंदनीय तत्परता के कारण खंडित हो जाती है जिससे वह अपनी स्नेहमयी पत्नी को अपने लिए मर जाने देता है, परन्तु यूनानी जनता के लिए पति का यह व्यवहार तनिक भी निंदनीय नहीं था—वे राज्य के लिए पुरुष नागरिक का इतना महत्त्व समझते थे कि पुरुष के लिए उसकी पत्नी के आत्मोत्सर्ग में उन्हें कोई अनौचित्य नहीं दिखाई देता था। सॉफॉक्लीज़ का **एंटीगोने** पूर्णतया यूनानी भाव पर ही आधारित होने के कारण हमारी आधुनिक भावनाओं से बहुत दूर जा पड़ता है। यह भाव हमें समझाया जाय तभी हम इसका महत्त्व अथवा नायिका के लिए इसकी गुरुता का अनुभव कर सकते हैं। और यूरिपिडीज़ की **मीडिया** में पति के विश्वासघात का प्रतिशोध लेने के लिए बच्चों की निर्मम हत्या आज हमको नितान्त घृणास्पद लगती है।

होमर की कविताओं के रचना-काल तक यूनानी जनता में एक विश्वास प्रचलित था कि जहाज़ी बेड़े को प्रस्थान के समय कुमारी की बलि देने से हवाएँ अनुकूल रहती

हैं। जब एथेंस की त्रासदियों की रचना हुई तो यह अन्धविश्वास समाप्त हो चुका था, परन्तु उसकी स्मृति शेष थी। एथेंस के दर्शक जो डायनीसियस की रंगशाला में बैठते थे, उन्हें भली भाँति यह ज्ञात था कि उनके पूर्वजों का यह विश्वास था और इसी कारण जब यूरिपिडीज़ ने एक नाटक में इफ़ीजीनिया की कथा प्रस्तुत की तो इसे स्वीकार करना उनके लिए कठिन नहीं था; परन्तु हम आधुनिकों को इस प्रकार के अंधविश्वास से कोई सहानुभूति नहीं हो सकती और हमारे लिए यह समझना सरल नहीं है कि यह पहले कभी भी कैसे स्वीकार किया गया था। यही कारण है कि रासीन और गेटे के उस विषय में हमारी रुचि जगाने के सब प्रयत्न विफल हुए हैं, जो आज हमारे लिए न केवल अग्राह्य ही हैं वरन् वीभत्स भी।

शेक्सपियर स्वयं चाहे भूत-चुड़ैलों में विश्वास करते हों अथवा नहीं, परन्तु वे जानते थे कि उनके दर्शकों को इन अति-मानवी प्राणियों और प्रेतछायाओं के अस्तित्व में कोई संदेह नहीं है। इसी से जहाँ अवसर हुआ उन्होंने इनका उपयोग करने में कभी संकोच नहीं किया। कोई आधुनिक नाटककार विषय का निरूपण करते हुए प्रेत अथवा चुड़ैल का आह्वान करने का साहस नहीं कर सकता, क्योंकि उनके समकालीनों को उन पर विश्वास नहीं है। आज हम टेलीपैथी अथवा मानसिक चिकित्सा के संदर्भ में इससे विचित्र बातों को स्वीकार कर सकते हैं, परन्तु यह नहीं मान सकते कि एक कन्या की बलि का सागर के तूफानों पर प्रभाव पड़ सकता है या कोई प्रेतछाया अपने पुत्र को अपनी हत्या का प्रतिशोध लेने का आदेश देने अथवा अपने घातक को अपने रक्त-सने केशों से डराने के लिए पृथ्वी पर आ सकती है।

ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करना कठिन न होगा जिनसे यह स्पष्ट हो जाय कि नाटकार पर न केवल काल का वरन् एक ही युग में देश में विभिन्न जातियों के दृष्टिकोणों की विभिन्नता का प्रभाव पड़ता है। जूडरमान के शक्तिशाली नाटक में (जिस का नाम उसकी नायिका मगदा के नाम पर है) वृद्ध पिता की उग्र कठोरता अमरीका-निवासियों को घृणास्पद प्रतीत हो सकती है, क्योंकि जर्मनी का वृद्ध कर्नल, परिवार का मुखिया होने के नाते, जिस प्रकार कीं अंधश्रद्धा की माँग करता है, वे लोग उसके अभ्यस्त नहीं हैं। इस प्रकार के और अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हम सब सामाजिक संगठन के प्रति विभिन्न जनसमुदायों की विविध प्रवृत्तियों को जानते हैं। इसी विविधता में हमें इस बात का कारण मिल जाता है कि क्यों कितने ही उत्तम नाटक अपने देश के बाहर अपरिचित ही रहते हैं। उन्नीसवीं सदी की सर्वोत्तम फ्रांसीसी कामदी आज़िये और सांद्रो रचित **ग्रांद मोसिये प्वारिये** है। यद्यपि अनेक बार इसका अनुवाद या रूपांतर अंग्रेज़ी में हो चुका है, अंग्रेज़ दर्शकों के लिए रोचक नहीं सिद्ध हुई, क्योंकि वह विषय-वस्तु और निरूपण में पूर्णतया फ्रांसीसी है। इसके चरित्र-चित्रण में फ्रांसीसी विशेषताएँ इतनी सजीव हैं कि वह इंग्लैण्ड और अमरीका में स्वीकृत न हो सकी। जितनी ही अधिक सच्चाई से नाटककार अपने चारों ओर के जीवन

का चित्रण करेगा, जितनी अधिक निष्ठा से वह ऐसे चरित्रों का सृजन करेगा जिसे उसके देशवासी अधिक पसन्द कर सकें, जितना ही वह कथानक और स्थिति को चरित्र-उद्‌घाटन के अधीन बनाता जाएगा, उतना ही उसकी अपनी भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं में नाटकों की सफलता की संभावनाएँ कम हो जाएँगी। इसी कारण कल्पनाशील स्क्रीब के जटिल वस्तु-संगठन वाले नाटक, जिनमें पात्र लेखक के हाथों की कठपुतली मात्र होते हैं, पूरी दुनिया में खेले गए, परन्तु ऑजिये की समृद्ध और सारवान् कामदियों में से बिरली ही फ्रांस के बाहर प्रस्तुत हो सकीं।

एक ही भाषा बोलने वाले और समान सामाजिक मतों वाले दो देशों के दर्शकों में भी परस्पर महत्त्वपूर्ण अंतर देखे जाते हैं। लंदन और न्यूयार्क के दर्शकों में ऐसे अंतर पाये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, ब्रांसन हावर्ड के **बेंकर्स डाटर** में तरुण कलाकार, जिसके साथ नाटक के आरम्भ में नायिका की सगाई हो चुकी है, और जिसे वह समझती है कि प्यार करती है, उस समय कथा से हटा दिया जाता है जब नायिका को अपने पिता को बचाने के लिए दूसरे व्यक्ति से विवाह करना पड़ता है, जिससे वह अपने प्रेमी पति को सच्चा प्रेम दे सके। इसी कारण इस नाटक का एक अंक पेरिस में घटित होता है, और एक प्रसिद्ध तलवारबाज़ कथा में लाया जाता है कि वह उस तरुण चित्रकार से लड़ाई करके उसे द्वन्द्वयुद्ध में मार डाले। यद्यपि अब अमरीका में द्वन्द्वयुद्ध नहीं होते, अमरीकी दर्शक जानते हैं कि फ्रांस में यह अब भी होते हैं, और वे दक्षिण-पश्चिम के झगड़े तथा खान-शिविरों की हत्याओं के बारे में अच्छी तरह परिचित हैं। परन्तु जब ब्रांसन हावर्ड के नाटक का रूपान्तर लन्दन के लिए हुआ और इसके पात्र इंग्लैण्ड निवासियों के रूप में चित्रित किये गए तो इस कार्य में उनके लन्दन के सहयोगी ने इस आधार पर द्वन्द्व-युद्ध के दृश्य का विरोध किया कि लन्दन के दर्शक उसे स्वीकार नहीं करेंगे। यदि वह कलाकार अंग्रेज़ दिखाया जाएगा तो तलवार चलाने का उपहास ही करेगा। अतः कलाकार कथा से हटा दिया गया, उसके स्थान पर सैनिक रखा गया। और पेरिस वाला अंक ब्रिटिश दूतावास में हुआ जहाँ उसे सैनिक की वर्दी में आना पड़ा। वहाँ फ्रांसीसी तलवारबाज़ ने उसका और उसकी वर्दी का अपमान किया, और उसके बहाने साम्राज्ञी की समस्त सेना का। यहाँ तक कि अंग्रेज़ दर्शक इस बात के इच्छुक हो गए कि वह सैनिक इस फ्रांसीसी को मार कर गिरा दे। इसी से जब वह धीर युवक युद्ध की ओर प्रेरित हुआ तब लन्दन की जनता आपत्ति नहीं कर सकी।

इससे एक भाषा-भाषी दो दर्शक वर्गों का अंतर स्पष्ट होता है। एक दूसरे उदाहरण से अमरीका के उसी नगर में विभिन्न मुहल्लों के दर्शकों के बीच का अन्तर ज्ञात होगा। जब क्लाइड फिच के **बारबरा फ्रीची** का प्रदर्शन न्यूयॉर्क में हुआ, दक्षिणी भाग की नायिका ने अपने उत्तरी भाग के प्रेमी से झगड़ा होने पर सितारों और धारियों से युक्त राष्ट्रीय झंडे को टुकड़े-टुकड़े कर डाला, बाद में उसे फिर सिला जिससे

कि वह उसी के नीचे मर सके; परन्तु जब यह नाटक वहाँ की संगीत एकेडेमी में प्रदर्शित किया गया तो नायिका को यह झंडा नहीं फाड़ने दिया गया, यह सोचकर कि देश के प्रति ऐसी अभक्ति से सदा के लिए प्रेक्षागृह में बैठे हुए दर्शकों के मन से उसके प्रति सहानुभूति चली जाएगी। इस घटना के बारे में प्रामाणिक रूप से ज्ञात नहीं है और हो सकता है यह सत्य न भी हो। परन्तु चाहे यह किसी की भी मनगढ़न्त हो, इसका गढ़ना ही बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

ये बातें मामूली लग सकती हैं, और हैं भी। परन्तु इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं कि नाटककार दर्शकों की सहज सहानुभूति पर कितना निर्भर है। हर युग और हर स्थान के नाटककारों ने इसका पूर्णतया अनुभव किया है। कभी-कभी उन्होंने दर्शकों को प्रसन्न करने के लिए उनके पूर्वग्रहों को असंस्कृत ढंग से संतोष पहुँचाकर अनुचित रीति से लाभ उठाया है, कभी-कभी तो स्पष्टतः ओछी भावनाओं को जगाने का प्रयत्न किया है। अवसर मिलने पर वे दर्शकों की प्रशंसा प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय झंडे को भी अपने कथानकों में लाने में नहीं चूके। उनमें से कुछ ने अपने देश की तथा दूसरे देशवासियों की तुलना में अपने देशवासियों की प्रशंसा का कोई अवसर जाने नहीं दिया है। फ्रांसीसी नाटकों में अंग्रेज़ों और अमरीकी लोगों पर बराबर व्यंग्य किया जाता है, दूसरी ओर फ्रांसीसी व्यक्ति को अंग्रेज़ी भाषा की असंख्य कामदियों में उपहास का लक्ष्य बनाया गया है।

अग्रणी नाटककारों ने भी कभी-कभी अपनी देशभक्ति की भावनाओं को यह सोचकर बहुत ओज के साथ प्रकट किया है कि निश्चय ही यह उनके दर्शकों को प्रिय होगा। उदाहरण के लिए शेक्सपियर ने रजत-समुद्र में जड़े नगीने जैसे इंग्लैण्ड की प्रशंसा करने का कोई अवसर जाने नहीं दिया है। और जिन विषयों पर उन्होंने लिखा उनमें वे इतने लीन थे कि वे **जॉन ऑफ आर्क** के उदार चरित्र को भी नहीं समझ सके। यूरिपिडीज़, जैसा कि प्रोफेसर महाफी ने कहा है, अपने एथेंसवासी नायकों को पूर्णता की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत करता था, और विषयान्तर करके भी स्पार्टा और थीब्स जैसे प्रतिद्वंद्वी नगरों के आख्यान-नायकों के चरित्र को नीचा दिखाता था। मीडिया नाटक में छोटा-सा बहाना मिलने पर उन्होंने एथेन्स की महिमा में एक वृन्द-गीत रख दिया है।

3

ये सब दर्शकों पर नाटककार की निर्भरता के खेदजनक उदाहरण हैं। नाटककार को उन लोगों को प्रसन्न करना ही है जिनके लिए नाटक रचा गया है। और यदि किसी कारण से वह ऐसा नहीं कर सकता तो वह असफल रहा है। दर्शकों द्वारा अंतिम निर्णय दिया जा चुका है और अब कहीं पुनर्विचार का अवसर नहीं है। नाटक को तो समस्त जनसमुदाय को प्रसन्न करना है, क्योंकि नाटक की शक्तिमत्ता उसकी व्यापक प्रभावशीलता में ही है। उसका प्रयोजन ही निष्फल हो जाता है, यदि उसमें

सबके लिए कुछ न कुछ न हो—तरुण और वृद्ध, धनवान और निर्धन, स्त्री और पुरुष, शिक्षित और अशिक्षित सभी के लिए। दूसरे साहित्यरूपों की अपेक्षा नाटक में सामुदायिकता का तत्त्व अधिक सुरक्षित है, वह तत्व जो सारे आदिम काव्य का सार रहा है। सब कलाओं में नाटक अधिक लोकतन्त्रात्मक है, क्योंकि जन-समूह के बिना उसका अस्तित्व ही नहीं हो सकता है। इसे जन-समूह का ही क्रिया-व्यापार कहा गया है। यदि नाटक केवल एक जाति, एक वर्ग और एक श्रेणी को आकर्षित करने की सोचता है तो कभी सफलता की आशा नहीं कर सकता; वह तो संस्कारों की विभिन्नता वाले एक समूचे समुदाय की कला होनी चाहिए। जब कभी नाटक महान् और समृद्ध हुआ है तब ऐसा ही रहा है—यूनान में जब एस्किलॅस के बाद सॉफ़ॉक्लीज और यूरिपिडीज़ हुए, इंग्लैण्ड में जब मार्लो के बाद शेक्सपियर हुए, स्पेन में जब लोप द वेगा और केल्डरॉन ने नाटक रचे और फ्रांस में जब कार्नाइ तथा रासीन के बीच की कड़ी के रूप में मोलियर का आविर्भाव हुआ।

नाटक को अभिजातीय आधार पर संगठित करने के प्रयत्न की असफलता निश्चित है और साधारण जन से विलग करने के प्रत्येक प्रयत्न ने इसे शक्तिहीन ही बनाया है। जिस प्रकार यह खेदजनक बात है कि कभी-कभी नाटककारों ने अपने समय की रंगशाला के लिए उपयुक्त नाटक के रूप-विधान में रचना-कौशल प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की और पाठ्य-नाटकों की रचना करके ही संतोष कर लिया, उसी प्रकार यह बात भी खेदजनक है कि वे अपने नाटकों की रचना सामान्य लोगों की रंगशालाओं को छोड़कर केवल अभिजात वर्ग की रुचियों के अनुकूल करें। यह बात हर व्यक्ति के लिए अच्छी है, सच्चे नाटककार के लिए तो और भी कि वह जीवन क्षेत्र में जाकर सामान्य जन से मिले। एक ऐसी सम्पन्न रंगशाला की स्थापना करना जो जन-साधारण की सहायता की अपेक्षा नहीं करती, अहितकर होगा।

यह प्रयत्न कई बार किया भी जा चुका है। जब वाइमार की राजकीय रंगशाला पर गेटे का पूर्ण अधिकार था तो वही नाटकों का चुनाव करता था, अभिनेताओं को प्रशिक्षण देता था, और वही दर्शकों का नियन्ता भी था। जब जेना के विद्यार्थियों ने अपने विरोधीभाव प्रकट किए तो गेटे ने उनकी भर्त्सना की, इसपर उन्होंने रंगशाला में आना छोड़ दिया। इसका परिणाम वही हुआ जिसकी आशा की जा सकती थी। यद्यपि गेटे और शिलर दोनों ने वाइमार रंगशाला के लिए नाटक लिखे किन्तु उसका कोई भी नाटक जर्मनी में सफल न हो सका। गेटे ने अपनी वृद्धावस्था में अपने प्रयत्नों की व्यर्थता को स्वयं भी समझ लिया था। उन्होंने एकरमान से कहा था कि रंगशाला के लिए इससे अधिक खतरनाक बात और कोई नहीं हो सकती कि संचालक की स्थिति ऐसी हो कि बिक्री की आय से उसे कोई विशेष अन्तर न पड़े। सम्भवतः गेटे ने निःसंकोच स्वीकार कर लिया होता कि नाट्य-प्रदर्शन जन-समुदाय

का ही व्यापार है। नाटक नाटककार की आत्मतुष्टि के लिए नहीं होता, उसे जनता के आत्म-उद्‌घाटन के कर्त्तव्य की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

फ्रांसीसी कामदी को फ्रांस सरकार की सहायता नहीं प्राप्त है; केवल रंगशाला का किराया नहीं देना पड़ता और कुछ अनुदान मिलता है, जिससे पेंशन-निधि सम्भव हो पाती है, और जिसके कारण मैनेजर निम्न स्तर के लोकप्रिय अतिरंजित नाटकों के प्रदर्शन का लोभ नहीं करता। इसको जनता का साथ देना पड़ता है और अपनी समृद्धि के लिए टिकट की बिक्री पर निर्भर रहना पड़ता है। यही बात जर्मनी राजकीय रंगशालाओं और अनुदान प्राप्त ऑपेरागृहों के विषय में भी है। यद्यपि इन ऑपेरागृहों और रंगशालाओं को जनता से अथवा सरकारी अनुदान प्राप्त होता है, इनको टिकट-घर की बिक्री पर आश्रित रहना पड़ता है, उनको सहायता के लिए समस्त दर्शक-समाज पर निर्भर रहना पड़ता है, और यदि वे अपने दर्शकों को आकर्षित नहीं कर सकते तो दीवालिया होने से नहीं बच सकते। और ऐसा होना ही चाहिए क्योंकि हर कला का आधार हमारा सामान्य मानव समाज ही है।

यह सम्भव है कि वे अति सुसंकृत लोग जो अपने साथी-मानवों से एक अभिजातीय भावना से विलग हो जाते हैं, यह कहें कि यदि रंगशाला से केवल सामान्य जनता को ही मतलब है तो नाटक निश्चय ही सभी कलाओं से निम्नतम कोटि का है और उसमें विश्लेषण की सूक्ष्मता, अभिव्यक्ति की मार्मिकता और उच्चतर कल्पना की उड़ान कुछ भी उससे अधिक सम्भव नहीं, जितना सामान्य जनता ग्रहण कर सकती है। परन्तु यह कथन इस भ्रम पर आधारित है कि हम जनता के निम्नतर लोगों और सम्पूर्ण जनता, जिसमें अत्यधिक सुसंकृत और बुद्धिमान लोग भी आते हैं, के बीच भेद नहीं करते। नाटककार को समस्त जनता का प्रिय बनना है, और यदि वह निम्न कोटि के लोगों को ही आकर्षित करना पसन्द करता है तो अवसर से पूरा लाभ नहीं उठाता है। यदि आज नाट्य-प्रदर्शन जन-समुदाय का व्यापार है तो ऐसा वह सदा ही रहा है; और यह बात स्पष्टतः निरर्थक है कि सम्पूर्ण जनता को प्रसन्न करने की आवश्यकता के कारण रासीन में विश्लेषण की सूक्ष्मता, मोलियर में अभिव्यक्ति की समृद्धता, शेक्सपियर में काव्यमयी उदात्त उड़ान नहीं आ सकी।

जनता का निम्न वर्ग भी विषय की महानता और निरूपण की विशालता में रस लेता है। हैमलेट उन सब नाटकों में जो अंग्रेज़ी भाषा रंगमंच पर प्रस्तुत किए जा सकते हैं, सबसे अधिक लोकप्रिय है, और तारत्युफ़ सदैव फ्राँसीसी दर्शकों को आकर्षित करता रहा है। बुद्धिवादी अभिजात व्यक्ति अधिकतर साधारण जनों की कला और राजनीति में प्रकट होने वाली रुचियों को नीचा समझता है। 'सच्चा और झूठा' लोकतन्त्र के प्रबुद्ध विचारक प्रेजिडेंट बटलर ने हमें चेतावनी दी है कि यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वही व्यक्ति जनता और वही भीड़ होते हैं। जब उनकी निम्न प्रकृति उनके व्यवहारों में हावी होती है तो वही व्यक्ति भीड़ होते हैं। बातूनी तो भीड़

को सम्बोधित करता है और सच्चा नेता जनता को। इसी प्रकार नाटक में भी होता है। सस्ते नाटकों का लेखक इसी भीड़ के लिए और कभी-कभी उनके निम्न भावों की तुष्टि के लिए अपने नाटकों की रचना करता है; परन्तु सच्चा नाटककारसम्पूर्ण जनता से उच्च स्तर की बात कहने में कभी भयभीत नहीं होता। उसे ज्ञात है—चाहे अन्य लोग इसे भूल भी गए हों—कि काव्यात्मक नाटक जिन्हें साहित्यिक आलोचक अब इतना आदर देते हैं—जब प्रथम बार नाट्यगृह में प्रस्तुत हुए थे तो अत्यन्त सफल रहे थे। वह सच्चे मन से सिसेरो की यह बात दुहराएगा कि 'समय और अवसर मिलने पर स्पष्ट होता है कि बहुतों की स्वीकृति कलाकार की श्रेष्ठता का उतना ही आवश्यक परीक्षण है जितना कुछ विशिष्ट लोगों की स्वकृति।'

यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि सच्चा नाटककार चाहे त्रासदी या कामदी लेखक हो, कभी जनता के प्रति निरादर की भावना नहीं व्यक्त करता, जैसी कि हम कभी-कभी घटिया और नौसिखिए नाटककार में पाते हैं। वह ऐसा भाव प्रकट नहीं करता क्योंकि वह इसका अनुभव नहीं करता; बिना आत्म-प्रवंचना के वह ऐसा अनुभव कर भी नहीं सकता। जनता को समझना, उसके साथ सहानुभूति रखना, और उसके सम्मुख उसका अपना ही चित्र रखना लेखक का कर्त्तव्य है। मोलियर भी सामान्य जनता के प्रति अपने विश्वास की घोषणा करते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार जनता द्वारा निंदित कृति के पक्ष में कुछ कहना कठिन है वैसे ही उसके द्वारा स्वीकृत कृति की निंदा करना भी।" जो नाटककार जनसमूह को नीची दृष्टि से देखता है, उसके नाटकों का मंच पर सफल होना बहुत कठिन है। ड्राइडन अपने समय की हास कामदियों को निंदनीय समझते थे और उनको देखने के लिए जाने वाले लोगों को भी। ड्राइडन अंग्रेज़ी कामदी के सफल लेखक नहीं हैं, वरन् यदि उन्होंने कामदियाँ लिखी ही न होतीं तो कवि के रूप में उनकी प्रसिद्धि अधिक सम्पूर्ण होती। कहा जाता है कि एक प्रसिद्ध उपन्यासकार ने एक बार कहा था कि जब वह अपने नाटक में कोई ऐसा अंश लिखता था जिससे उसे लज्जा का अनुभव होता था तो वह समझ लेता था कि उसने नाटक देखने वाली जनता की रुचि की चीज़ लिखी थी। परन्तु स्पष्टतः नाटक-दर्शकों के विषय में उसकी जानकारी अपूर्ण थी क्योंकि ऐसे अंशों से युक्त कोई भी नाटक रंगमंच पर सफल नहीं हो सका। नाटक देखने वाली जनता चाहे कुछ अर्थों में मूर्ख कही जा सके परन्तु अपनी रुचियों का उसे पूरा ज्ञान होता है। और सबसे अधिक उसे लेखक की ओर से सच्चाई पसन्द होती है।

4

सम्भवतः इस उपन्यासकार से यह भूल इसी कारण हुई कि वह उपन्यासकार था, और उसका विश्वास था कि नाटक केवल उपन्यास का दूसरा रूप है जिसमें वही बातें रखी जा सकती हैं जो उपन्यासों में। परन्तु नाटक उपन्यास नहीं है और इससे उसे उपन्यास से पूर्णतया भिन्न बनाना पड़ता है। इसके तरीके भी वैसे नहीं हैं, और

इसकी विषय-वस्तु भी उपन्यास से भिन्न होती है। कुछ कथानक उपन्यासकार ले सकता है, परन्तु नाटककार के लिए वे वर्जित है, क्योंकि उसकी कृति समूह में बैठे हुए लोगों के सामने प्रदर्शित होने के लिए है, अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाने के लिए नहीं है। परन्तु इस कठिनाई के साथ ही साथ नाटककार को यह लाभ भी रहता है कि उसका नाटक समूह रूप से बैठे हुए लोगों के सामने अधिक प्रभावशाली भी बन जाता है।

गॉतिये कहते थे कि नाटक कथा-साहित्य से बहुत पीछे रह जाता है, क्योंकि वह किसी भी नए विचार को तब तक ग्रहण नहीं करता जब तक वह अखबारों और कथा-साहित्य में नहीं आ जाता। कदाचित् उसकी इस बात का कारण ढूंढ़ा जा सकता है। यह बात इसलिए है कि नाटक को समूह रूप से सभी व्यक्तियों की रुचि का बनना पड़ता है। अधिक बुद्धिमान्, अधिक संस्कृत और अधिक प्रगतिशील व्यक्तियों के लिए ही इसकी रचना नहीं की जाती। नाटक में ऐसी ही बातें रखी जा सकती हैं जो सामान्य जनता समझ सकती है, यद्यपि नीति-कवि और उपन्यासकार यदि चाहें तो अपनी रचना को एक ही वर्ग या स्तर के व्यक्तियों के लिए सीमित बना सकते हैं।

नाटक की रचना समूह के लिए होती है और नाटककार की कृति उसके सम्भावित दर्शकों की रुचियों से प्रभावित रहती है। यह प्रभाव प्रमुख रूप से अच्छा ही रहता है क्योंकि इसके कारण सार्वभौम रुचियों के कथानक का निरूपण किया जा सकता है। कुछ सीमा तक यह प्रभाव हानिकर भी हो सकता है, लेकिन कहाँ तक, इसका निर्णय हम नहीं कर सकते हैं। अब हमें इस तथ्य का ज्ञान हो गया है कि स्त्रियों और पुरुषों के एकत्र समूह की एक विशिष्ट मानसिक इकाई होती है। उस समूह की अपनी एक आत्मा होती है; ऐसी आत्मा जो सभी उपस्थित व्यक्तियों की आत्मा का योग मात्र नहीं होती।

दर्शक-समूह एक समूह है, और उसमें समूह की विशेषताएँ होती हैं। प्रत्येक समूह ऐसे व्यक्तियों का बना हुआ होता है जो समूह रूप में होने के कारण अपनी कुछ व्यक्तिगत विशेषताएँ भूल जाते हैं, और कुछ ऐसी विशेषताएँ, जो समूह के दूसरे सदस्यों में भी होती हैं, उनके प्रति अधिक सजग हो जाते हैं।

रुई ब्ला की भूमिका में विक्टर ह्यूगो ने कहा है कि नाटक-दर्शकों के तीन वर्ग होते हैं, एक तो वह जो कार्य-व्यापार की माँग करता है, दूसरे स्त्रियाँ जो भाव-प्रवणता चाहती हैं, और तीसरे विचारक जो चरित्र की खोज करते हैं। दूसरे शब्दों में नाटक में कथा, कथानक और घटनाओं का ही प्रमुख महत्त्व होता है, क्योंकि यही बातें अधिकतर दर्शकों की रुचि की होती हैं। अरस्तू ने भी बहुत पहले इसी सत्य की अभिव्यक्ति की थी। और एक समय यह तथ्य एथेंस में भी इतना ही स्वीकृत था जितना आज पेरिस और न्यूयार्क में है।

नाटक का दर्शक-वर्ग एक समूह होता है और सभी समूहों की तरह इसमें भी अपनी विशेषताएँ होती हैं। परन्तु इसके साथ ही वह एक विशेष प्रकार का समूह है क्योंकि वह मनोरंजन और आनन्द की इच्छा से एकत्र हुआ है। राजनैतिक सम्मेलनों की भाँति उसका कोई गम्भीर प्रयोजन नहीं होता है, इसी से वह उपदेश या निर्देश नहीं सुनना चाहता। यही कारण है कि महान् नाटककारों ने कभी उपदेश देना नहीं चाहा। उन्होंने जीवन को उसी रूप में प्रस्तुत कर दिया जैसा उसे देखा। मानवीय अस्तित्व की असीम जटिलता में से एक या दूसरे पक्ष को ही प्रस्तुत किया, जिससे दर्शक उसमें से स्वयं ही जो निष्कर्ष चाहें निकाल लें।

कोई भी बड़ा नाटककार दर्शन के क्षेत्र में अग्रणी नहीं हुआ। महान् नाटककारों के लिए यह तथ्य उनकी शक्ति थी कि वे अपने समय से बहुत आगे बढ़े हुए नहीं थे। उनके मत उनके समकालीनों के ही मत थे। प्रो० लैंतर्न् ने कहा है कि "नाटकीय कला अनिवार्य रूप से सामूहिक साहित्य है और समूह के लिए होती है। इसलिए उसमें स्वीकृत मतों में समाज में प्रचलित विचारों से अधिक और कुछ अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। अत्यधिक मौलिक दृष्टिकोण, अत्यन्त विशिष्ट भावनाएँ नाटक के क्षेत्र में नहीं आतीं।"

5

परिणामस्वरूप हम देखते हैं कि किसी भी युग में नाटक का स्वरूप वही होता है, जो वहाँ की जनता के लिए स्वीकरणीय होता है। एथेंस के स्वर्ण-युग में यूनानियों ने उच्चतम त्रासदी की उपलब्धि की और रोम के पतन के दिनों में नाटक अश्लील और आवेगपूर्ण मूक नाटक में बदल गया। अधिकतर लोग यदि ऐसे निम्न रुचि के नाटकों को स्वीकार करते हैं तो उच्च रुचि वाले लोग भी उनका आनन्द उठाने लगते हैं।

आज की निम्न रुचि के मनोरंजन-गृहों में हम इस प्रकार की वास्तविकता से युक्त प्रदर्शनों को देख सकते हैं। नाटक में समूह भीड़ का दूसरा नाम नहीं है। वह सम्पूर्ण समुदाय का औसत होता है, केवल निम्न तत्त्वों का ही नहीं। दर्शक-समूह पुरुषों और स्त्रियों के मुख्य वर्ग का प्रतिनिधि होता है; और अधिकतर प्रमुख वर्ग के सहज ज्ञान पर विश्वास किया जा सकता है। बर्क ने कहा था कि व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह भी यदि बिना विचारे कुछ करे तो मूर्खतापूर्ण हो सकता है। परन्तु मानव-जाति अपने सम्पूर्ण रूप में बुद्धिमत्तापूर्ण है, और उस रूप में उसके कार्य ठीक होते हैं।

नाटककार की कृतियाँ सम्पूर्ण जाति के लिए होती हैं; नाटक के इतिहास में इसके बहुत प्रमाण मिलते हैं। केवल यही नहीं कि मानव-जाति का व्यवहार ठीक होता है, उसका निर्णय भी ठीक होता है। जिन महान् नाटककारों की कृतियों का अध्ययन आज हम आदर भाव से करते हैं, वे अपने समय में भी सबसे अधिक लोकप्रिय थे।

सॉफॉक्लीज़ और शेक्सपियर अथवा कैलड्रोन और मोलियर के नाटक जो पहली बार मंच पर प्रस्तुत किये गए तो नाट्शालाएँ भर गईं। इन महान् कृतियों को देखने वाले दर्शकों ने भले ही यह न समझा हो कि वे कितनी महान् हैं, उन्हें कदाचित् वे गुण भी उनमें न दीख पड़े हों जो आज का विद्यार्थी देखता है; परन्तु उन नाटकों से उसे वह आनन्द मिलता था जिसकी वह नाटक में अपेक्षा करता था, और इसी से वह बार-बार, जब भी वे नाटक खेले जाते थे, उन्हें देखने जाता था।

हम इससे आगे जाकर यह भी कह सकते हैं कि इस प्रकार की व्यापक स्वीकृति थोड़े-से आलोचकों की प्रशंसा की अपेक्षा चिरंतन गुण के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकती है। जब भी किसी नाटक के विषय में विशिष्ट वर्गों और जनसमूह के बीच मत की भिन्नता रही है तो आगे चलकर यही पता लगा है कि जनसमूह का निर्णय विशिष्ट वर्ग से अधिक सही था। जब शेक्सपियर एक तरुण लेखक ही थे तभी सिडनी ने अपनी पुस्तक **डिफेन्स ऑफ पोयसी** में उस समय अंग्रेज़ी रंगमंच पर शेक्सपियर के लोकप्रिय नाटकों का बड़ा उपहास किया, और नाटककारों से यह प्रार्थना की थी कि वे यूनान और रोम के नाटकों का अनुकरण कर नाटक लिखें। परन्तु लन्दन का दर्शक-समाज इस प्रकार के निष्प्राण नाटकों को स्वीकार नहीं करना चाहता था, और उसने एलिजाबेथयुग के भावों के अनुकूल लिखे हुए शेक्सपियर के विशाल और मुक्त नाटकों का हार्दिक स्वागत किया। फ्रांस में रिशेलू की प्रार्थना पर फ्रांसीसी अकादमी ने तथाकथित नाटक के नियमों के उलंघन के लिए कार्नाइ की **सिड** की बहुत निन्दा की थी। परन्तु पेरिस के दर्शकों को अपनी रुचि का ज्ञान था और अकादमी के सदस्यों की निन्दा के बावजूद जब भी **सिड** का प्रदर्शन होता था तो नाट्य-गृह भर जाते थे। सच्चा नाटककार अपने नाटकों में बहुत-सी ऐसी चीजें रख सकता है जिसको सम्पूर्ण जनता न पसन्द कर सके। परन्तु वह अपनी नाटकों की रचना सदैव सम्पूर्ण जनता के लिए ही करता है।

पाँचवाँ अध्याय

नाटक का विधान

1

साहित्यिक नाटक का विकास लोक-नाटक से हुआ है; और इसकी रचना रंग-शाला में अभिनेताओं द्वारा दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने के लिए होती है। परन्तु इसका सारभूत तत्व क्या है ? नाटक किस प्रकार प्राचीन महाकाव्य और आधुनिक उपन्यास से भिन्न है ? इसकी अनिवार्य विशेषताएँ क्या हैं ? वह कौन-सा विशेष गुण है, जो नाटक को दूसरे साहित्य-रूपों से अलग करता है ? इस अंतर की व्याख्या यह कहकर कर देना कि नाटक में कथा संवादों द्वारा कही जाती है, ठीक न होगी, क्योंकि कभी-कभी कविता में और उपन्यास में भी संवाद द्वारा कथा कही जाती है, जैसे थियाक्रिटस की दृश्य-कविता में। अतः यदि हम यह कहें कि नाटक दर्शकों के सामने संवाद में वर्णित और कार्य-व्यापार में प्रदर्शित कथा है, तो हमारी परिभाषा अधिक सन्तोषजनक होगी। नाटक का सारभूत तत्त्व अंशतः इस तथ्य पर आश्रित है कि इसे नाट्यशाला में दर्शकों के सम्मुख अभिनीत होना है; यह तथ्य मुख्य है कि नाटक की रचना जन-समाज के लिए होती है, समाज के अवयव एक व्यक्ति के लिए नहीं। अतः इसका विशिष्ट गुण व्यक्ति से नहीं वरन् जनसमूह के लिए इसकी रोचकता से उद्भूत होता है। इसकी रोचकता समूह के लिए है, मानव-समाज की समुदायमूलक इच्छाओं के लिए है। रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा कोई कथा जब संवादों के माध्यम से कार्य-व्यापार में प्रस्तुत की जाती है, तो जनसमूह उसमें क्या देखना चाहता है ? इन परिस्थितियों में अलग-अलग व्यक्तियों की नहीं सम्पूर्ण जनसमूह की माँग क्या होती है ?

यदि नाटक महाकाव्य और उपन्यास से भिन्न है तो इसका अपना कोई सारभूत सिद्धान्त होना ही चाहिए। यह सिद्धान्त पता चलने पर ही हमें नाटक के अन्यतम विधान का ज्ञान होगा जिसे रंगमंच के लिए लिखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को स्वीकार करना होगा। यदि हम त्रासदी और अतिरंजित नाटक, कामदी और प्रहसन आदि विभिन्न नाट्यरूपों में से एक-एक नाटक को लें तो हम देखेंगे कि उन सबका आरम्भ एक-ही बिन्दु से होता है। कोई एक केन्द्रीय पात्र किसी बात की इच्छा करता है, और यही इच्छा कार्य-व्यापार की प्रेरकशक्ति होती है। आधुनिक अथवा प्राचीन हर एक

सफल नाटक में हम विरोधी इच्छाओं का संघर्ष; किसी न किसी प्रकार के कठिन विरोध के समक्ष मानव ईहा का यह प्रयत्न पाएँगे।

यहीं पर हमें उस तत्व के दर्शन होते हैं जिसे ब्रूनेत्यार ने नाटक का विधान कहा था। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि नाटक में मानव ईहा का उद्घाटन कार्य-व्यापार में होना चाहिए, अर्थात् केन्द्रीय पात्र को यह निश्चयपूर्वक ज्ञात होना चाहिए कि उसकी क्या इच्छा है और तब उसे लक्ष्य की ओर अटूट लगन से प्रयत्न करना चाहिए। यही तत्व नाटक को उपन्यास से भिन्न साहित्य-रूप बनाता है। उदाहरण के लिए ज़ील ब्ला और फ़िगारो को ले लें। बोमार्शे के नायक की अपनी ईहा है, और वह अपने लिए संघर्ष करता है; वह जानता है कि वह क्या चाहता है और क्यों चाहता है? ल साज़ का नाटक जीवन के बीच निरीह भाव से चलता है, उसकी अपनी कोई भी योजनाएँ नहीं हैं, और जो अवसर उसके सामने आ जाते हैं, उन्हीं से लाभ उठा लेता है। फ़िगारो कार्य करता है, ज़ील ब्ला पर कार्य किया जाता है। बोमार्शे का नाटक उपन्यास में रूपान्तरित किया जा सकता है, परन्तु ल साॅज़ का उपन्यास सुन्दर नाटक नहीं बन सकता। उपन्यास का नाट्यरूपान्तर तभी किया जा सकता है जब उसमें नाटकीय तत्व हो, अर्थात् तभी जब उसका केन्द्रीय पात्र अपने भाग्य का विधाता और स्वयं का नियन्ता हो। इस प्रकार नाटक का कार्य-व्यापार मात्र गति अथवा बाहरी उथल-पुथल नहीं है, वह तो अपने को जानने वाली ईहा की अभिव्यक्ति है।

इस फ्रांसीसी आलोचक ने यह भी कहा था कि जब नाटक का यह विधान पूर्णतया समझ में आ जाता है तो विभिन्न नाट्य-प्रकारों के पारस्परिक अन्तर को समझने में सहायता मिलती है। नायक की ईहा को जिन बाधाओं—भाग्य, नियति अथवा प्रकृति के नियम—के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ता है, उनको दूर करना यदि असंभव हो जाता है तो त्रासदी बनती है, और अन्त मृत्यु में होता है, क्योंकि नायक प्रारम्भ में ही पराजित हो जाता है। परन्तु यदि ये बाधाएँ केवल सामाजिक रूढ़ियों अथवा मानवी पूर्वाग्रहों से उत्पन्न होने के कारण दूर की जा सकती हैं तो नायक को अपनी इच्छा-पूर्ति का अवसर रहता है, ऐसी स्थिति में गम्भीर नाटक बनता है, जिसके अन्त में अनिवार्य रूप से मृत्यु नहीं होती। बाधाओं में कुछ और परिवर्तन हो जाय, और संघर्ष में दोनों ओर की परिस्थितियाँ बराबर हों, दो मानवीय ईहाएँ विरोध में हों, तो कामदी बनती है। यदि बाधाएँ और भी निम्न प्रकार की हों, उदाहरण के लिए किसी हास्यास्पद परम्परा का परिणाम हों, तो प्रहसन बनता है। यह भी है कि विभिन्न नाट्य-प्रकार अपने नितान्त शुद्ध रूप में बहुत कम मिलते हैं; कभी कामदी प्रहसन बन जाती है, और कभी प्रहसन ऊँचा उठकर कामदी बन जाता है।

ब्रूनेत्यार के सिद्धान्त की पुष्टि इस बात से भी होती है कि जिस युग में किसी राष्ट्र की ईहा भव्य प्रयत्न की ओर उन्मुख होती है, उसमें वहाँ पर नाटक की बड़ी उन्नति होती है। यूनानी त्रासदी सालामिस के समय में पनपी, और स्पेनी नाटक का

विकास नई दुनिया की विजय के समय में हुआ। शेक्सपियर उस समय हुए थे जब आर्मडा पराजित हुआ था, हेनरी चतुर्थ और रिशेलू के कारण मोलियर और कार्नाइ का अस्तित्व संभव हुआ, लेसिंग, गेटे और शिलर फ्रेडरिक के बाद हुए। पूर्व में महत्त्वपूर्ण नाटक नहीं लिखे गए क्योंकि वहाँ के लोग भाग्यवादी हैं और उस स्वतन्त्र ईहा पर विश्वास नहीं करते जिसके बिना नाटक का अस्तित्व ही असम्भव है। यह एक महत्त्व की बात है कि रिशेलू, कांडे, फ्रेडरिक और नेपोलियन जैसे कार्यरत लोग नाटक के प्रेमी रहे हैं। इस प्रकार स्वतन्त्र ईहा पर विश्वास होना नाटक के विकास के अनुकूल है; और नियति द्वारा परिचालन उपन्यास के प्रतिकूल नहीं है, क्योंकि उसके प्रमुख पात्रों के लिए सदैव अपने मन को समझना आवश्यक नहीं है।

यहाँ तक ब्रूनेत्यार ने यह चर्चा समाप्त की। अन्त में उन्होंने नाटक के तथाकथित नियमों तथा अपने द्वारा निर्धारित नाट्य-विधान के अंतर को बताया है। वे नियम सदैव संकीर्ण, सदैव कठोर होते हैं; और इसी संकीर्ण कठोरता के कारण उनका उल्लंघन निश्चित होता है। वह विधान व्यावहारिक रूप में विशाल, मृदु और मननशील होता है। वह सरल है और साथ ही व्यापक; उसके परिणाम महत्त्वपूर्ण होते हैं, और वह अनुभव और विचारों के निष्कर्षों से अपने को अधिक पुष्ट बनाता रहता है।

2

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि नाटक के विधान की यह विवेचना पिछले बहुत-से वर्षों में नाट्य-सिद्धान्त की चर्चा में सबसे सारगर्भित और महत्त्वपूर्ण देन है। नाटक के लिए यह उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितने कला-सिद्धान्तों के क्षेत्र में लेसिंग के विचार। जितनी ही स्पष्टता से इसे समझा जाएगा उतना ही अधिक तथ्यों का उद्घाटन होता जाएगा। ब्रूनेत्यार ने बहुत-सी निगूढ़ताओं को स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने हमारे हाथों में वह उपकरण दे दिया है जिससे हम किसी भी नाटक के नाटकीय मूल्य को आँक सकते हैं। उन्होंने हमें वह साधन भी प्रदान किया है जिससे हम जटिलताओं को स्पष्ट कर सकते हैं। उदाहरणार्थ उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि मध्ययुगीन मिस्ट्रीनाटक और (मिस्ट्री के ही समान नाट्य-रूप) अंग्रेजी वृत्त नाटक क्यों उतने रोचक नहीं हैं जितनी वे त्रासदियाँ जिनमें हम नायक को मान्य विधान से संघर्ष करते पाते हैं। वृत्त-नाटक के प्रधान पात्र के जीवन में घटनाएँ घटित हो जाती हैं, और हम चाहे नाटक के विभिन्न कथा प्रसंगों में कुछ देर को रुचि ले भी लें, पूरे कथानक में हमारा ध्यान शिथिल ही रहता है, परन्तु त्रासदी का प्रधान पात्र ईहा के मूर्त-रूप की भाँति सामने आता है, उसे अपनी इच्छा का ज्ञान होता है और उसकी पूर्ति के लिए वह अपनी पूरी शक्ति लगा देता है। नाटक के इस विधान से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रायः चहल-पहल से युक्त विविध घटनारूपों से भरे उपन्यास का नाट्यरूपान्तर जनता को आकर्षित करने में असफल क्यों रहता है?

इस सम्बन्ध में यदि कोई आपत्ति की जा सकती है तो यह कि ब्रूनेत्यार ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में स्वच्छन्दता से काम लिया है। कदाचित् यह कहना अधिक अच्छा होगा कि सभी श्रेष्ठ नाटकों और उन साधारण नाटकों से भी, जो किसी समय भी रंगमंच पर सफल हुए हैं, यह तथ्य प्रकट होता है कि दर्शकों का ध्यान रंगमंच पर मानवीय ईहा के प्रदर्शन से ही आकर्षित किया जा सकता है। व्यक्ति रूप में हम उन पात्रों के दुःखपूर्ण अनुभवों के विषय में पढ़कर आनन्द ले सकते हैं, जिनकी कोई अपनी इच्छा नहीं है; परन्तु जब हम नाट्यगृह में दर्शक रूप में एकत्र होते हैं, तब ये दुर्बल विपन्न पात्र हमें सन्तोष नहीं दे पाते, तब हम दृढ़ व्यक्तियों को देखना चाहते हैं, जिनके रक्त में अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए लौह-दृढ़ता हो। जिस पात्र के साथ घटनाएँ अनायास की घटित होती रहती हैं, उसकी जीवनी यदि रंगमंच पर प्रदर्शित की जायगी तो पर्याप्त रोचक नहीं लग सकती ; यद्यपि यह सम्भव है कि अध्ययन कक्ष में अकेले बैठकर हम उसी जीवनी को रुचि के साथ पढ़ें। कभी-कभी कोई नाटक हममें से कुछ को चरित्र की सूक्ष्म अभिव्यंजना और जीवन के व्यंगपूर्ण चित्रों के कारण रुचिकर लग सकता है, परन्तु जो नाटक दीर्घकाल तक अनेकों का मनोरंजन करते रहे हैं, उनका आधार संघर्ष तत्व ही रहा है। दूसरे शब्दों में, ब्रूनेत्यार ने जिस बात को इतने अकाट्य सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित किया, उसे मानवता के संकलित अनुभव के एक तर्क-संगत निष्कर्ष के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है।

यद्यपि इस सिद्धान्त को इतनी स्पष्टता से सामने रखने और इसको नाटक की परीक्षा में इस प्रकार लागू करने कि उसकी सारी विशेषताएँ उभर आएँ, और नाटक तथा उपन्यास का मूलभूत अन्तर स्पष्ट हो जाय—का श्रेय निःसन्देह ब्रूनेत्यार को ही मिलना चाहिए, परन्तु उनके पहले ऐसे कितने ही लोग थे, जिन्होंने इस सिद्धान्त की कुछ झलक दी थी। यह असम्भव है कि पहले के आलोचक ऐसी प्रमुख कला का इतना सारवान् तथ्य देख ही न पाते। वाल्टेयर ने अपने एक पत्र में लिखा था कि नाटक में हर दृश्य को एक द्वन्द्व प्रस्तुत करना चाहिए और स्टीवेंसन ने कहा था कि एक अच्छे गम्भीर नाटक को आवेशपूर्ण संघर्ष पर आधारित होना चाहिए जहाँ इच्छा और कर्त्तव्य परस्पर टकराते हों। यह श्लेगेल के कथन के समान है, जिन्होंने कहा था कि त्रासदी मानव की नैतिक स्वतन्त्रता से सम्बन्धित रहती है, और यह स्वतन्त्रता 'ऐन्द्रिय मनोवेगों से उसके संघर्ष' में प्रकट होती है। इसीलिए कॉलरिज ने इस सत्य पर जोर दिया था कि त्रासदी में दुर्घटनाओं का समावेश नहीं करना चाहिए क्योंकि मानव की स्वतन्त्र ईहा त्रासदी का प्रथम कारण होती है। **विलियम मीस्टर** में गेटे ने यहाँ तक कहा था कि "उपन्यास का नायक निष्क्रिय हो सकता है, परन्तु नाटक के नायक का सक्रिय होना अत्यावश्यक है, क्योंकि सभी घटनाएँ उसका विरोध करती हैं, और वह या तो अपने पथ की बाधाओं को हटा देता है या उनका शिकार बन जाता है।"

शायद गेटे के मत का आधार हीगल हैं। उन्होंने त्रासदी का विषय-निरूपण

बड़ी सूक्ष्मता से किया है। हीगल के मतों को स्पष्ट रूप में सामने रखते हुए प्रोफेसर ब्रेडले ने कहा कि सभी त्रासदियों में किसी न किसी प्रकार संघात या संघर्ष होता ही है—भावनाओं, विचारधाराओं, इच्छाओं, ईहाओं और प्रयोजनों का संघर्ष, व्यक्तियों का परस्पर संघर्ष और स्वयं से या परिस्थितियों से संघर्ष। उसके पश्चात् ब्रेडले ने हीगल द्वारा प्रस्तुत इस आत्यन्तिक तत्व को स्पष्ट किया—केवल दुर्भाग्य से उत्पन्न करुणा अथवा भय त्रासदी की करुणा या भय नहीं है, क्योंकि ऐसी करुणा संघर्ष और उससे उत्पन्न कष्ट को देखकर होती है, जो हमारी संवेदनाओं और स्वरक्षण-भावना को ही नहीं वरन् हमारी बुद्धि और भावना को जगाता है।" यह त्रासदी का संघर्ष हमारी चेतना को जगाता है, क्योंकि हमारी चेतना ही से उद्भूत है। ये भाव मानवता—विशेषकर मानव के नैतिक स्वभाव—का सार हैं। परिवार और राज्य, माता-पिता और सन्तान, भाई और बहिन, पति और पत्नी, नागरिक और शासक तथा नागरिक और नागरिक का सम्बन्ध और इन सम्बन्धों के दायित्व और भावनाएँ, अथवा वैयक्तिक प्रेम और गौरव, या किसी महान् कार्य अथवा आदर्श—जैसे धर्म, विज्ञान अथवा समाजकल्याण—के प्रति समर्पण-भाव—यही शक्तियाँ हैं जो त्रासदी के कार्य-व्यापार में अभिव्यक्त होती हैं। और क्योंकि ये शक्तियाँ मानव द्वारा परिपालन की माँग करती हैं, त्रासदी में उनकी अभिव्यक्ति किसी भी महान् कला-कृति के लिए आवश्यक गहरी और सार्वलौकिक अभिरुचि जगाने में समर्थ है।

3

परन्तु क्या ब्रूनेत्यार का नाट्य-सिद्धान्त हीगल के त्रासदी सिद्धान्त में समाविष्ट है? हीगल तो केवल त्रासदी की विवेचना कर रहे हैं, सब नाट्यरूपों की नहीं, और त्रासदी के संघर्ष के पुराने सिद्धान्त का ही विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं। परन्तु ब्रूनेत्यार ने इससे बहुत आगे जाकर एक ऐसे सिद्धान्त का आख्यापन किया जिससे महाकाव्य और उपन्यासों से नाटक का अन्तर पूर्णतया स्पष्ट हो गया। उनका सिद्धान्त कामदी और प्रहसन—साथ ही त्रासदी पर भी—घटित होता है। आगे चलकर ब्रूनेत्यार ने त्रासदी पर विचार करते समय भी संघर्ष—जिसमें नायक उलझा हुआ है—की परिस्थितियों पर उतना ज़ोर नहीं दिया, जितना नायक की ईहा की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति पर। उन्होंने यह तथ्य स्पष्ट कर दिया कि विरोधी शक्तियों का प्रत्याघात ही नाटकीय तत्व नहीं है, नाटकीयता तो नायक की ईहा में निहित है, उस अडिग निश्चय में समाहित है, जो मानव को संघर्ष-रत होने के लिए लौह-दृढ़ता प्रदान करता है।

इस सरलीकरण में ब्रूनेत्यार हीगल से भी पीछे गए हैं; यहाँ तक कहा जा सकता है कि वे अरस्तू तक चले गए हैं। ज्ञान-सम्राट् अरस्तू सदैव ही नियतिवाद के विरुद्ध स्वतन्त्र ईहा के दृढ़ पक्षपाती रहे। कदाचित् नाटक की मूलभूत विशेषता के सिद्धान्त का यह प्रकथन इस बात का एक और प्रमाण है कि अरस्तू केवल प्रथम ही नहीं प्रमुखतम नाटक आलोचकों में से थे। वे सॉफ़ॉक्लीज़ को तीन महान् नाट्य-

कवियों में सबसे बड़ा मानते थे; इसका एक कारण कदाचित् ईडिपस के लेखक का संरचना-कौशल और उसकी नाट्य-निर्माण की निपुणता हो सकता है; परन्तु दूसरा कारण निश्चय ही यह भी है कि सॉफॉक्लीज़ ने अपने नायक को कभी भाग्य के हाथों खिलौना नहीं बनने दिया, और अपनी कथा का निर्माण सदा इस प्रकार किया कि मानव की प्रेरणा के बिना किसी प्रबल शाप का कभी कोई प्रभाव नहीं हो सकता।

कॉलरिज के पहले अरस्तू ने ही दुर्घटनाओं के समावेश का विरोध किया था, और यह स्थापना की थी कि काव्य सांयोगिक घटनाओं का विरोध करता है। उन्होंने कथानक अर्थात् मानव ईहा से संचालित कथा की आवश्यकता पर ज़ोर दिया था। उन्होंने निर्धारित किया, "त्रासदी बिना चरित्र के भले ही सम्भव हो, बिना कार्य-व्यापार के नहीं हो सकती।" जैसा कि प्रोफ़ेसर बुचर ने कहा है—"नाटक का अर्थ यही नहीं है कि एक भाव सम्पूर्ण और महत् कार्य के रूप में किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख या अभिव्यक्त हो, उसमें संघर्ष का समावेश भी होना ही चाहिए।" इन अंग्रेज़ विद्वान ने यह भी कहा, "हम अरस्तू के कथन में थोड़ा-सा परिवर्तन करके यह भी कह सकते हैं कि नाटकीय संघर्ष, न कि केवल कथानक, त्रासदी की आत्मा है।" और प्रोफेसर बुचर के कथन में थोड़ा-सा परिवर्तन करके यह कहा जा सकता है कि नाटक की आत्मा नाटकीय संघर्ष नहीं वरन् उस संघर्ष का कारण—मानव ईहा—है।

इन परिवर्तनों के आवश्यक होने के कारण यह सिद्ध हो जाता है कि ब्रूनेत्यार का सिद्धान्त अरस्तू अथवा हीगल के लेखों में व्यक्त नहीं है; यद्यपि यह उनके सम्मिलित सिद्धान्तों का विकसित स्वरूप हो सकता है जिसे वे दोनों ही स्वीकार कर लेते हैं। ब्रूनेत्यार ने ही बाहरी संघर्ष पर नहीं वरन् संघर्ष को निश्चित करने वाले आंतरिक प्रेरणा के कार्य पर ज़ोर दिया था। उन्होंने अपने सिद्धान्त की पुष्टि मुख्यतः फ्रांसीसी नाटकों के उदाहरणों से की थी, किन्तु ऐसे ही उदाहरण अन्य साहित्यों से भी दिए जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी त्रासदी का विकास, जिसका उद्भव वृत्त नाटकों से हुआ था, जो एक राज्य-काल की घटनाओं की विभ्रान्त दृश्यपटी होते थे, सेनेका की उन त्रासदियों के प्रभाव में हुआ है, जिनका नाटकीय स्तर बहुत निम्न था, परन्तु जिनमें मानव की आत्मसत्ता और उसके अपने भाग्य के नियन्ता होने पर ज़ोर दिया गया था। अंग्रेज़ी त्रासदी के विकास में मैकियावली के प्रभाव का भी कुछ अंश रहा होगा—क्योंकि उनके प्रभाव के चिन्ह एलिज़ाबेथकालीन साहित्य में प्रत्येक स्थल पर दृष्टिगोचर होते हैं। भले ही रक्त-त्रासदी के तथाकथित मैकियावली शैली के खल-नायकों में उन इतालवी सिद्धान्तों के बारे में भ्रम होता हो; तो भी संभव है कि नाटकीय संघर्ष की तीव्रता को इस बात से कुछ बल मिला हो कि मैकियावली ने इस

बात पर जोर दिया कि मनुष्य को अपनी ईहा-शक्ति का उपयोग करना चाहिए जिससे घटनाओं के परिणाम उसके हित में हों।

ब्रूनेत्यार के सिद्धान्त का प्रमुख लाभ यह है कि वह हमें निम्न स्तर के द्वन्द्व से सच्चे नाटकीय संघर्ष को अलग करके समझने की क्षमता प्रदान करता है। नाटक का अस्तित्व नाट्य-गृह के बिना संभव नहीं है; और नाट्यगृह और क्रीड़ा-भूमि में बहुत अन्तर नहीं है। रंगमंच का क्रीड़स्थल से निकट सम्बन्ध है, और प्रोफेसर ग्रूस ने ठीक ही कहा था कि "नाटक और द्वन्द्व-युद्ध, पशु-युद्ध तथा दौड़ आदि से प्राप्त होने वाले मनोरंजन में एक तात्विक समानता है,—उन सब में हम एक ऐसा संघर्ष देखते हैं जिसमें हम स्वयं भाग लेते हैं।" तात्पर्य यह है कि हम किसी-न-किसी पक्ष के होना चाहते हैं, हम दोनों में से एक पक्ष की विजय चाहते हैं; हममें सामुदायिक भावना होती है जिसके कारण हम एक दृढ़ व्यक्तित्व वाले केन्द्रीय पात्र के साथ सहानुभूति करते हैं; वह कठिनाइयों के साथ युद्ध करता है और उसके साथ उस समय हम एकात्म हो जाते हैं।

प्राचीन क्रीड़ा-स्थल में तलवारबाज लड़ते-लड़ते प्राण दे देते थे; नाटकीय संघर्ष के ऐसे तीव्र प्रदर्शन से कोई भी रोमन नाटककार होड़ नहीं ले सकता था। अपने सर्वोच्च स्वरूप में भी नाटक का मात्र प्रदर्शन-कला से स्पष्ट सम्बन्ध रहता ही है; और जब हम क्रीड़ा-स्थल के क्रूर और भयंकर खेलों से ऊपर उठकर, सरकस के विस्मयकारी कार्यों से, नृत्यनाट्य के भव्य प्रदर्शनों को पार करके अंत में कामदी की सूक्ष्मता और त्रासदी की गम्भीरता तक पहुँचते हैं, तो इन सोपानों को इतनी जल्दी-जल्दी आते हुए पाते हैं, कि ठीक-ठीक यह बताना कठिन हो जाता है कि वास्तविक नाटक कहाँ से प्रारम्भ होता है। यहीं ब्रूनेत्यार का सिद्धान्त एक परीक्षण के रूप में उपयोगी हो सकता है, क्योंकि यह बाहरी संघर्ष की अपेक्षा संघर्ष की नियंत्रक मानव की आन्तरिक ईहा की दृढ़ता को महत्त्व प्रदान करता है।

सस्ते अतिनाटकों में भी पूर्ण खलनायक की पूर्ण नायक से प्रतिद्वन्द्विता दिखलाई जाती है, यह प्रतिद्वन्द्विता भले और बुरे की प्रतिपक्षिता होती है; नायक और खलनायक दोनों का मनवांछित एक ही होता है—अधिकतर नायिका की प्राप्ति; इस प्रकार उसमें परस्पर विरोधी निश्चयों का गहन संघर्ष होता है। उच्चतर स्तर के नाटकों में, जिनमें जीवन की ज्वलंत समस्याओं से युक्त समकालीन महत्त्व के विषय लिए जाते हैं, विरोध एक अच्छे आदमी और एक बुरे आदमी के बीच नहीं होता, दो भलों के बीच होता है, ऐसे दो व्यक्तियों के बीच होता है जो अपने को ठीक समझते हैं—वास्तव में दोनों ही अपने-अपने दृष्टिकोण से ठीक होते भी हैं। सच्चा नाटककार पक्षपात नहीं करता; वह निष्पक्ष भाव से दोनों ही पात्रों को अपने आप को सच्चाई से अभिव्यक्त करने देता है।

दर्शक के लिए सदैव यह बता सकना सरल न होगा कि वास्तविक संघर्ष क्या है; परन्तु वह केन्द्रीय पात्र की अभिलाषा को सदैव समझ लेता है। उदाहरण के लिए **हैमलेट** में इस विषय में तो प्रश्न उठ सकता है कि संघर्ष हैमलेट और क्लाडियस में है या हैमलेट और उसकी दुर्बल ईहा अथवा हैमलेट और नियति में, परन्तु हैमलेट की इच्छा के बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता। वह वही करना चाहता है जो ठीक हो, चाहे कभी-कभी ठीक क्या है वह इस बारे में संदेह में हो अथवा अपना मन स्थिर न कर पाता हो। **एज यू लाइक इट** में आरलैंडो और उसके भाई तथा रोज़लिंड और उसके चाचा के बीच का द्वन्द्व कथा के आवश्यक तत्व हैं। आरलैंडो जानता है कि उसे क्या चाहिए—वह रोज़लिंड को चाहता है; और रोज़लिंड चाहती है कि वह उसे चाहे।

4

ब्रूनेत्यार के सिद्धान्त को स्वीकार करने के पश्चात् हम उसका उपयोग सार्से के सिद्धान्त को समझने के लिए कर सकते हैं। सार्से पेशेवर आलोचक था, वह अपनी सब सन्ध्याएँ नाट्यगृह में बिताता था, और उसके नाट्य सिद्धान्त दर्शकों पर अभिनीत नाटकों के प्रभाव के अध्ययन पर आधारित थे। उसने यह कहा था कि जो कथा दर्शकों के सामने दिखाने के उपयुक्त है, उसमें कुछ ऐसा घटनाक्रम होना ही चाहिए जिसकी अभिव्यक्ति कथोपकथन द्वारा नहीं कार्य-व्यापार द्वारा हो। वह इनको 'अनिवार्य दृश्य' कहता था। यदि इस प्रकार के आवश्यक दृश्य नाटककार छोड़ दे अथवा उनका संवादों में ही वर्णन कर दे और दर्शकों के सामने प्रस्तुत न करे तो दर्शक-वृन्द निराश होंगे और उनकी रुचि कम होने लगेगी।

दर्शक चाहे अपने असंतोष का कारण न बता सकें परन्तु उन्हें इस बात की अस्पष्ट अनुभूति अवश्य हो जायगी कि कोई ऐसी घटना उनके सामने प्रस्तुत नहीं की गई जिसको देखने का उन्हें अधिकार था। यदि किसी महत्त्वपूर्ण दृश्य को अकुशल नाटककार विराम-काल में अथवा नेपथ्य में घटित कराये, और वे उसे आँखों से देख न सकें तो उन्हें यही लगेगा कि उनकी उचित माँग पूरी नहीं हुई।

अब हम देख लें कि वे अनिवार्य दृश्य क्या हैं जिनके बिना दर्शक नाटक से प्रभावित नहीं होते? वे कौन-से दृश्य हैं जिन्हें मंच पर रखना ही चाहिए? स्पष्टतः ये वे दृश्य हैं जिनमें हम विरोधी ईहाओं का संघर्ष देखते हैं; वे घटनाएँ हैं जहाँ नाटकीय द्वन्द्व चरम अवस्था में होता है, वे दृश्य हैं जिनमें कई संकल्पों की परस्पर टकराहट होती है, ईहा का ईहा के साथ संघर्ष होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सार्से के सिद्धान्त और ब्रूनेत्यार के सिद्धान्त में एक तर्क—संगत सम्बन्ध है। नाटक का अनिवार्य तत्त्व यही है कि वह मानव ईहा का चित्रण करता है, और कोई भी नाटक जिसमें नाटककार दर्शकों को इन विरोधी निर्णयों का घात-प्रतिघात देखने नहीं देता, उनकी रुचि को बनाये रखने में समर्थ नहीं हो सकता।

ब्रूनेत्यार और सार्से ने अपने सिद्धान्त महान् नाटककारों के रचना-व्यवहारों के अध्ययन के आधार पर निर्धारित किये थे ; और नाटकों से इन सिद्धान्तों के उदाहरण प्रस्तुत करना तनिक भी कठिन नहीं है क्योंकि प्राचीन और नवीन सभी नाटककारों ने अपने आप वही किया है जिसे ब्रूनेत्यार और सार्से ने आवश्यक बताया था। उदाहरण के लिए **अगामेमनान** में एस्किलँस अपने प्रमुख पात्र की हत्या रंगमंच के बाहर करवाता है, क्योंकि सामने प्रस्तुत अगामेमनान और लिकटमनेस्ट्रा के मिलन का वही अनिवार्य परिणाम था। **मैकबेथ** में शेक्सपियर ने डंकन की हत्या के पहले मैक-बेथ और लेडी मैकबेथ का निश्चय दिखाया है, और डंकन की हत्या को रंगमंच पर न दिखाकर उसे और भी प्रभावयुक्त बना दिया है। **ऑथेलो** में ऑथेलो की ईर्ष्या को इयागो द्वारा संचालित दिखाया गया है।

तारत्युफ़ में मोलियर ने कपटाचारी दुष्ट का एलमीर की पवित्रता पर किया हुआ प्रहार हमारे सामने प्रस्तुत किया है। उसी प्रकार शेरिडन ने रंगमंच पर लेडी टीज़ल के प्रति जोज़फ का दुर्व्यवहार दिखाया है।

डॉल्स हाउस में इब्सन नोरा के मुख से हमारे सामने वह सब कहलाता है जो वह अपने पति के ओछेपन का ज्ञान होने पर कहना चाहती है। हर युग का कुशल नाटककार यह जानता है कि दर्शक उसी बात में रुचि लेते हैं जो उनके सामने दिखाई जाती है, उस बात में तो उसका ध्यान कम ही रहता है जिसके बारे में उन्हें बताया जाता है। नाटक की विशेष सुविधा ही यह है कि वह दृष्टि का विषय होता है, क्योंकि उसमें देखी हुई बात की प्रभावशालिता आ जाती है—वह केवल सुनी हुई बात नहीं रह जाती। यदि नाटककार इस सुविधा का उचित उपयोग करने में असमर्थ होता है, तो उसके अपने लिए ख़तरा रहता है।

ब्रूनेत्यार और सार्से के सिद्धान्तों की जाँच हम अपने ऊपर नाटक के प्रभाव का विश्लेषण करके कर सकते हैं। यदि हम अपने को शिथिल और ऊबा हुए पायें, तो इस असन्तोष का कारण जानने के लिए हमें कथा की गति का विश्लेषण करना होगा और इसका निश्चय कर लेना होगा कि क्या नाटककार हमारे सम्मुख अनिवार्य संघर्ष के दृश्य प्रस्तुत नहीं कर सका। दूसरी ओर यदि कोई नाटक—चाहे वह त्रासदी हो या कामदी, अतिनाटक हो अथवा प्रहसन—हमारे ध्यान को आकर्षित कर सका है, तो थोड़ा-सा विश्लेषण ही बता देगा कि यह इसी कारण सम्भव हुआ है कि नाटक-कार ने विरोधी ईहाओं के घात-प्रतिघात के सम्पूर्ण भाव को स्पष्ट करने के लिए आव-श्यक दृश्यों का प्रदर्शन हमारे सम्मुख किया है।

छठा अध्याय

परिभाषाएँ

1

यांत्रिक कलाओं और हाट-बाजारों में नए शब्दों की आवश्यकता पड़ने पर तत्काल जो भी शब्द सामने आ जाता है, उसे स्वीकार कर लिया जाता है। वह शब्द भले ही बहुत उपयुक्त न हो, परन्तु तात्कालिक अभाव को पूरा करता है, और उसकी उपयोगिता निर्विवाद होती है। इसके विपरीत साहित्यिक अध्ययन-अध्यापन में हमारे मानदण्ड ऊँचे होते हैं। यहाँ यंत्रशालाओं के अनगढ़ तरीके काम नहीं दे सकते। नए शब्द गढ़ने और उनके सर्वस्वीकृत होने की कठिनाइयों के कारण ही आलोचना सम्बन्धी शब्द-भण्डार में बहुत-से आवश्यक शब्द नहीं हैं। उदाहरण के लिए वास्तविक कहानी को मात्र वृत्तान्त से भिन्न व्यक्त करने के लिए कोई शब्द नहीं है।

कलाओं में जहाँ भाव प्रधान रहते हैं और व्यक्तित्व का महत्त्व होता है, विज्ञान की भाँति सुनिश्चित शब्दावली की आशा नहीं की जा सकती, क्योंकि विज्ञान में तथ्यों को प्रधानता दी जाती है और वैयक्तिकता का कोई स्थान नहीं होता। 'हार्स पावर' 'किलोवाट' आदि ऐसे शब्द हैं, जो उपयोक्ता की भावना से बिलकुल स्वतंत्र अपना निश्चित अर्थ रखते हैं; परन्तु त्रासदी, कल्पना आदि शब्द प्रत्येक लेखक और पाठक के मन में विभिन्न भावनाएँ जगाते हैं। लेखक निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि उसके द्वारा प्रयुक्त इन शब्दों को पाठक ठीक उसी अर्थ में लेगा, जिसमें लेखक उसे समझता है। प्रोफ़ेसर गुमेयर ने गाथा-गीत का इतिहास लिखते समय अपनी पुस्तक के कितने ही प्रारम्भिक पृष्ठों में यह बताया है कि गाथा-गीत से वे क्या समझते हैं। इसी प्रकार प्रोफेसर थॉर्नडाइक ने अंग्रेज़ी त्रासदी के इतिहास का पहला अध्याय इस नाट्य रूप की परिभाषा देने में लगा दिया है।

परिभाषाएँ निश्चित कर लेने में लाभ है। यह तो ठीक है कि पूर्ण अर्थ-निष्ठा प्राप्त नहीं की जा सकती, फिर भी प्रत्येक लेखक को यह निश्चय होना ही चाहिए कि वह जिन शब्दों का प्रयोग कर रहा है, उनका ठीक अर्थ वह समझता है। उसे इस बात का निश्चय तो नहीं हो सकता कि उसके अधिकतर पाठक शब्दों को उसी अर्थ में लेंगे जिनमें उसने लिया है, परन्तु कुछ को वह अपनी परिभाषा मानने की प्रेरणा दे सकता है। धीरे-धीरे अन्य लोग भी वही परिभाषा मानने लगते हैं, और कला की शब्दा-

वली अधिक निश्चित हो जाती है। अब हम कहानी को उपन्यास से भिन्न साहित्य प्रकार मानते हैं, उसी तरह जैसे प्रगीत महाकाव्य से आकार में ही छोटे नहीं होते वरन् उनका लक्ष्य भी भिन्न होता है। वृत्त-नाटक और रक्त-त्रासदी के प्रकार-भेद से ही हमें एलिजाबेथकालीन नाटक के विकास का अधिक स्पष्ट ज्ञान हो सका है। नाटकों के विभिन्न प्रकारों के ये अलग-अलग नाम न केवल सुविधाजनक हैं, वरन् रंगमंच के हर विद्यार्थी के लिए बहुत सहायक होते हैं।

जब हम नाटक के क्रमिक विकास को देखते हैं तो पाते हैं कि हम इस क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ आए हैं, विशेषकर आज तक विकसित होने वाले नाट्य-रूपों को देखकर मिस्टरी नाटक, मोरैलटी नाटक, वृत्त-नाटक, रक्त-त्रासदी, त्रासदी-कामदी, ह्रास-कामदी, वीरता-प्रधान नाटक, गाथा-ऑपेरा, भावात्मक कामदी, पाठ्य-नाटक और समस्या-नाटक। जब हम देखते हैं कि त्रासदी का विकास रक्त-त्रासदी से हुआ है और रक्त-त्रासदी वृत-नाटक से विकसित हुई है, तो हमें लगता है कि और भी आगे बढ़ आए हैं। इसी प्रकार कथा साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने वाला विभिन्न कथा-रूपों के उत्थान और पतन के इतिहास से लाभान्वित होता है, जैसे कि ग्राम-आख्यायिका, शौर्य आख्यायिका, साहसिक आख्यायिका, कथा, लघु कथा, जासूसी कहानी, समुद्री कहानी और प्रयोजनशील उपन्यास।

इन नामों का लेखक के लिए बहुत-ही कम अथवा बिलकुल ही अर्थ चाहे न हो, क्योंकि वह तो अपनी योग्यता के अनुसार अपने जीवन के अनुभव को व्यक्त करना चाहता है, और न यही आवश्यक है कि नामों को साधारण पाठक के ऊपर लादा जाय जो कि रचना का केवल रसास्वादन करना चाहता है। परन्तु साहित्य का विद्यार्थी इन नामवाची शब्दों को अपने ध्यान में रख सकता है। फिर भी यह सोचना ठीक नहीं है कि रचनाकार ने अपनी कृतियों को कभी विशिष्ट नाम देने की बात सोची होगी जैसा साहित्य के इतिहासकार उसकी कृतियों को देते हैं। प्रायः उसके लिए यह निर्णय करना ही कठिन होता है कि उसकी रचना किस साहित्य रूप के अन्तर्गत रखी जायगी। ऐसा लेखक होना तो दुर्लभ ही है जो यह निश्चय करके लिखने बैठे कि वह वृत्त-नाटक या रक्त-त्रासदी लिखेगा, अथवा जो कुछ वह लिखेगा वह अंत में वृत्त-नाटक या रक्त-त्रासदी ही होगा। साहित्यरूपों के विशिष्ट नाम वास्तव में आलोचकों के लिए ही हैं और उनके लिए इनका इतना महत्त्व है कि यह कहना ग़लत न होगा कि आलोचना की आधी कला ठीक-ठीक परिभाषाएँ देने में है।

रचनाकार इस विषय में उदासीन होता है। वह तो अपने को प्रचलित साहित्य प्रकारों में से किसी एक में अभिव्यक्त करना चाहता है। और उसके स्वरूप में जहाँ तक हो सके स्वच्छंदता भी बरतता है। कभी साहित्य प्रकार बदल देता है, और कभी एक साहित्य प्रकार में दूसरे प्रकार की विशेषताओं का समावेश भी कर देता है।

यदि किसी ने मोलियर को बताया होता कि उनके दो उत्कृष्टतम नाटक—**मिसेंथ्रोप** और **तारत्युफ़** शुद्ध कामदी नहीं रह गए और त्रासदी की ओर उन्मुख हैं, तो संभवतः इस ज्ञान से उन्हें बिलकुल चिंता न होती। शेक्सपियर ने तो **हैमलेट** में पोलोनियस द्वारा हैमलेट के सामने त्रासदी, कामदी, इतिहास आदि अनेक प्रकार के नाटकों में अभिनय करने वाले अभिनेताओं की मंडली प्रस्तुत किए जाने का उपहास करवाया है। प्रोफ़ेसर बेकर ने **नाटककार के रूप में शेक्सपियर का विकास** (Development of Shakespeare as a Dramatist) नामक पुस्तक में यह तथ्य बतलाया है कि एलिजाबेथ युग के दर्शकों ने शेक्सपियर की त्रासदियों को त्रासदी नहीं समझा होगा; पहले नाटकों की अपेक्षा कथा का अधिक कुशल और नाटकीय प्रस्तुतीकरण मात्र समझा होगा। वृत्तनाटकों में कथासूत्र बिखरे रहते थे, शेक्सपियर की त्रासदियों में कथा कुशलतापूर्वक गठित थी, इसी से दर्शकों को अधिक मनोरंजक लगी। यह भी हो सकता है कि शेक्सपियर के लिए भी **मैकबेथ** अधिक कुशलता से गठित वृत्त-नाटक मात्र रहा हो।

2

नाटक के विद्यार्थी के लिए यह उपयोगी है कि विशेष प्रकार के नाटकों को व्यक्त करने के लिए वृत्त-नाटक और रक्त-त्रासदी ये दोनों नाम स्वीकार कर लिए जाएँ। यह और भी अधिक उपयोगी होगा यदि हम इसी प्रकार पूरी अर्थ-निष्ठा के साथ दो और नामवाची शब्दों का प्रयोग कर सकें। ये शब्द हैं: त्रासदी और कामदी। इनके सर्वथा नियत अर्थ नहीं हैं और इसी से इनके प्रयोग भी निश्चित नहीं हैं। यदि इन दो शब्दों को एक-दूसरे के विपरीत समझा जाय तो ऐसा लगेगा कि जो नाटक त्रासदी नहीं है वह कामदी होगा, और जो कामदी नहीं है वह त्रासदी होगा। लेकिन यह बिलकुल अर्थहीन बात है, क्योंकि ऐसे बहुत-से नाटक हैं जो कि न तो त्रासदी हैं और न कामदी और जो त्रासदी-कामदी भी नहीं है।

सबसे पहले त्रासदी-कामदी शब्द का प्रयोग प्लॉटस ने किया था। फिर सिडनी ने घोषणा की थी कि इसका विशिष्ट गुण इस बात में है कि इस प्रकार के नाटक में राजा और विदूषक दोनों रखे जाते हैं, और नाटककार इनमें उत्सव तथा अंत्येष्टि दोनों को साथ-साथ रखते हैं। आजकल हम त्रासदी को अधिक व्यापक अर्थ में लेते हैं, और बहुत ही सामान्य व्यक्तियों का जीवन चरित्र भी देखने में आपत्ति नहीं करते। आज इब्सन के नाटक **घोस्ट** को कोई भी त्रासदी कहने से इनकार नहीं करेगा, यद्यपि वह नाटक गद्य में है, उसके पात्र सामान्य वर्ग के हैं, और यद्यपि उसका अंत मृत्यु के साथ नहीं होता फिर भी हमें उसमें वास्तविक त्रासदी की गरिमा और विस्तार का अनुभव होता है।

अंग्रेज़ी और फ्रांसीसी दोनों ही भाषाओं में त्रासदी-कामदी शब्द को स्वीकृत होने के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ा, फिर भी वह स्वीकृत और स्थिर नहीं हो सका।

फ्लेचर ने अपने एक नाटक की भूमिका में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है : "त्रासदी-कामदी को हम त्रासदी-कामदी इसलिए नहीं कहते कि उसमें हत्याएँ होती हैं, और साथ ही मदपूर्ण वातावरण रहता है, परन्तु इस कारण कहते हैं कि उसमें प्रधान पात्रों की मृत्यु नहीं होती तो वह त्रासदी नहीं है, और हत्याएँ होने के कारण वह त्रासदी के इतने निकट आ जाती है कि कामदी भी नहीं कही जा सकती। आज हमारे पास इस प्रकार के नाटक के लिए कोई विशेष शब्द नहीं है और हम इसे मात्र नाटक कह सकते हैं।

इसी प्रकार फ़्लेचर और बोमाँट के द्वारा प्रारम्भ किया हुआ और आगे चलकर शेक्सपियर द्वारा अपनाया हुआ एक नाट्य-रूप और है, जिसको प्रो० थॉर्नडाइक ने आख्यायिकामूलक नाटक का नाम दिया है। यह आजकल के कुछ नाटकों के लिए अच्छा शब्द है, जो नाट्य-गृहों में बहुत दिखाए जाते हैं, और जिनका कथानक या तो ऐतिहासिक जैसा है या पूरी तरह काल्पनिक है। त्रासदी शब्द का अर्थ स्पष्ट है; इससे उस गम्भीर नाटक की अभिव्यक्ति होती है जिसका अन्त प्रधानपात्र की मृत्यु से होता है। इसीसे अन्य गम्भीर नाटकों में जहाँ मृत्यु नहीं होती त्रासदी का नाम नहीं दिया जाता। दूसरी ओर कामदी शब्द के अन्तर्गत वे सब नाटक ले लिए जाते हैं, जिनमें रंगमंच पर हास्य-भावना की अभिव्यक्ति की जाती है। उनके अन्तर्गत ऐरिस्टोफेनूज़ के गीतात्मक अति-प्रहसन, इतालवियो के बाजीगरी से पूर्ण प्रहसन, जिसका एक नाम मुखौटा-कामदी भी है, और आधुनिक काल के शेरिडन और बोमार्के के लिखे हुए **व्यंग्य-नाटक** भी आ जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि त्रासदी का प्रयोग केवल एक ही प्रकार के नाटक के लिए होता है, जबकि कामदी के अन्तर्गत सभी प्रकार के हास्यमय नाटक आ जाते हैं। उस विशेष प्रकार की कामदी के लिए भी कोई नाम नहीं है जिसको हम त्रासदी के विपरीत रख सकते हैं, उस हास्यपूर्ण नाटक को जिसमें जीवन का वास्तविक और व्यंग्यपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाता है, यदि हम कोई नाम देना ही चाहें तो उच्च-कामदी कहना पड़ेगा। इसके अन्तर्गत मोलियर का **फ्रेम** साबान्त, कांग्रीव का **वे ऑफ दि वर्ल्ड**, शेरिडन का **स्कूल फ़ार स्कैंडल** आदि नाटक आते हैं। इस प्रकार की कामदी का दूसरा नाम आचार-कामदी भी है। इस नाम का प्रयोग अधिक है। आश्चर्य की बात है ऐसे नाटक जो कभी न तो पूरी तरह गम्भीर ही होते हैं और न जिनमें प्रहसन की उछल-कूद ही होती है, विश्व के नाटक-साहित्य में बहुत कम हैं; और भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि एलिजाबेथकालीन नाटकों में इस प्रकार की उच्च कामदी नहीं मिलती। शेक्सपियर अथवा बेनजॉन्सन के किसी भी नाटक को यह नाम नहीं दिया जा सकता।

शेक्सपियर की रोमांस-प्रधान कामदियाँ अपने काव्य-माधुर्य और चरित्रों की विचित्रता के कारण बहुत आकर्षक हैं, परन्तु आधुनिक नाटककारों ने इस प्रकार के नाटकों की रचना नहीं की। उनका यह विचार रहा है कि इस प्रकार के नाटक

एलीजबेथयुग की अर्ध मध्ययुगीन नाट्य परम्परा की उपज थे और वे आधुनिक रंगमंच पर, जिसमें यथार्थ दृश्य-बन्ध होते हैं, ठीक नहीं लगेंगे । दूसरी ओर मोलियर की उच्च कामदियाँ, काँग्रीव, शेरिडन, ऑजिये और सार्दू के लिए और उन सभी के लिए जिन्होंने आचार-कामदियाँ लिखने का प्रयास किया है, आदर्श के रूप में रही हैं । बहुत थोड़े-से लोग इस प्रकार के सफल नाटकों की रचना कर सके हैं, इससे यही प्रतीत होता है कि यह कार्य कुछ कठिन है ।

3

प्रहसन और अतिरंजित नाटक ऐसे शब्द हैं, जो निरादरसूचक प्रतीत होते हैं; फिर भी वे उसी प्रकार सार्थक हैं और नाटक के विद्यार्थी के लिए उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने कामदी और त्रासदी । निरादर का कारण आगे के तथ्यों से स्पष्ट होगा। उच्च कामदी में और इसी प्रकार गम्भीर नाटक में, कथावस्तु का निर्माण चरित्र करते हैं, चरित्र ही कथावस्तु के नियामक होते हैं, और कथावस्तु जो कुछ होती है वही होती है जैसे वे चरित्र होते हैं । लेकिन प्रहसन में और अतिरंजित नाटक में इसके विपरीत स्थिति होती है । वहाँ कथावस्तु, स्थितियाँ और घटनाएँ नियामक तत्व होते हैं, और चरित्र वही कुछ होते हैं जो कि कथा वस्तु उनको होने देती है अथवा जैसा होने के लिए विवश करती है । उनका अस्तित्व केवल इसलिए होता है कि वह कुछ करें जो कि उनका रचयिता उनसे करवाना चाहता है न कि अपनी इच्छा और अपने व्यक्तित्व की प्रेरणा से आगे बढ़ें । उच्च-कामदी **तारत्युफ़** और **स्कूल फ़ॉर स्कैंडल** में तथा शुद्ध त्रासदी **इडिपस** और **ऑथेलो** में नाटकीय कथा की घटना का क्रम अनिवार्य-सा प्रतीत होता है, जैसे कि वे और किसी दूसरे रूप में घटित न हो सकती हों । इसके विपरीत, प्रहसन और अतिरंजित नाटक में पात्रों का क्रिया-व्यापार किसी भी क्षण नितान्त मनमाना हो सकता है ।

यदि किसी नाटक के पात्रों का परिस्थितियों से स्वतन्त्र अपना जीवन होता है, और वे हमारी स्मृति में ऐसे मनुष्यों के रूप में रहते हैं, जिनसे परिचित होने के कारण हम उनके व्यवहार के विषय में अनुमान लगा सकते हैं, तो हम उस नाटक को प्रहसन या अतिरंजितनाटक नहीं कह सकते; परन्तु इसके विपरीत यदि पात्र परिस्थितियों से अलग होकर कुछ भी नहीं रह जाते और उनकी गतिविधि पूर्णरूप से लेखक द्वारा संचालित प्रतीत होती है, तब हम उस नाटक को प्रहसन या अतिरंजित नाटक कहते हैं । यदि इस सिद्धान्त के अनुसार जाँचा जाय तो हम देखेंगे कि मोलियर के कम से कम एक दर्जन नाटक ऐसे होंगे जिन्हें हम प्रहसन कहने को विवश होंगे । इसी प्रकार कम से कम शेक्सपियर के दो नाटकों **कामेडी ऑफ एरर्स** और **मेरी वाइव्ज़ ऑफ विण्डसर** को हमें प्रहसन का नाम देना पड़ेगा । **टेमिंग ऑफ दी श्रू** तो बड़ा ही तीक्ष्ण प्रहसन है । शेक्सपियर का **सिम्बलीन** बड़ा अच्छा अतिरंजित नाटक है ।

शेक्सपियर की मृत्यु के वर्षों बाद जब उनके दो साथियों ने उनके सब नाटकों

को पुस्तकाकार रखा तो उन्हें तीन वर्गों में बाँटा : कामदी, त्रासदी और वृत्त-नाटक। त्रासदी के अन्तर्गत मैकबेथ और ऑथेलो की तरह महान् त्रासदियाँ ही नहीं हैं, वरन् कम से कम एक रक्त त्रासदी भी है। तीसरे वर्ग के नाटकों का नामकरण सन्तोष-जनक नहीं है। उसके अन्तर्गत हम रोमांटिक कामदियों, प्रहसनों और हास्यात्मक कल्पना-प्रधान नाटकों को चाहे रख भी लें, परन्तु **मेज़र फ़ॉर मेज़र** और **आल इज वैल दैट एण्डस वैल** जैसे षडयन्त्रपूर्ण और जुगुप्सामय नाटकों को स्वीकार करना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है।

4

यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यदि शेक्सपियर आज वापस लौट आएँ तो वे अपने आलोचकों की आलोचनाओं के जाल में फँसकर अपना तनिक भी समय नष्ट नहीं करना चाहेंगे। उन्होंने तो अपने दर्शकों के मनोरंजन के लिए और आत्माभिव्यक्ति के लिए अपने नाटकों की रचना की थी। उन्हें इस बात से बड़ा आश्चर्य होगा कि जिन नाटकों को उन्होंने प्रकाशित करवाने का कष्ट भी नहीं उठाया था; आज उनका अध्ययन विश्वविद्यालयों में होता है, और आलोचक गम्भीर भाव से उन नाटकों में से किसी को रक्त-त्रासदी, किसी को रोमांटिक कामदी, किसी को कल्पना-प्रधान नाटक और किसी को मात्र प्रहसन कहते हैं। यदि उनसे पूछा जाय कि उनके किन नाटकों को किस वर्ग में रखा जाय तो शायद वे इस प्रश्न को उत्तर के योग्य भी नहीं समझेंगे।

ये सब बातें सत्य हैं, फिर भी ज्ञान का प्रारम्भ वर्गीकरण से ही होता है। विद्यार्थी के लिए आवश्यक है कि वह यह जान ले कि सत्रहवीं शताब्दी में इंग्लैंड और फ्रांस में त्रासदी-कामदी शब्द का प्रयोग क्यों हुआ। जब वह यह जान लेता है कि गाथा-ऑपेरा क्या है, और संगीत-प्रधान कामदी क्या है, और उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है, तो ज्ञान के क्षेत्र में वह एक क़दम आगे बढ़ता है। अंग्रेज़ी वीर-नाटक और स्पेनी खड्ग-कामदी के विषय-क्षेत्र को ठीक-ठीक समझने में उसको लाभ होगा। इसी प्रकार प्रहसन और अतिरंजित नाटक की परिभाषाओं को ठीक-ठीक समझने में भी लाभ होगा।

परन्तु हमें हमेशा यह याद रखना चाहिए कि साहित्यिक कृतियों का विभिन्न रूपों में वर्गीकरण अपने आप में एक साधन ही है, साध्य नहीं है। यह बराबर इस बात की याद दिलाता है कि नाटक का विकास अखण्ड रूप से हुआ है, और वह ऐसे रचना-नियमों से नियन्त्रित है जो नाटक-साहित्य के इतिहास के विभिन्न युगों में विकसित होते हैं। चाहे अतीत और वर्तमान की रचनाएँ एक-दूसरे से बहुत भिन्न लगें, किन्तु उनमें बहुत-से तत्व एक-जैसे होते हैं, और इसलिए हमारे आज के अभिनेय नाटक के आलोचक और अतीत के नाटक-साहित्य के इतिहासकार, दोनों के ही लिए यह बात उपयोगी है कि वे एक की सहायता से दूसरे की व्याख्या कर सकें।

सातवाँ अध्याय

परम्पराएँ और रूढ़ियाँ

1

नाटककार अपनी समकालीन रंगशाला के लिए लिखता है, अतः वह सदैव पहले से स्थापित नाट्य-परम्पराओं को स्वीकार करके चलता है, और दर्शकों की रुचि जागृत करने के लिए उनकी मनोनुकूल रूढ़ियों का उपयोग करने में उसे कोई हिचक नहीं होती। कला तभी अस्तित्व में आती है जब कलाकार सत्य की खोज में जीवन के तथ्यों से दूर जा सकता है। चित्रकला समय की एक झलक ही ले पाती है, और गति से जीवन्त तत्व को गतिहीन रूप में प्रदर्शित करती है। मूर्तिकला न केवल गतिशून्य है वरन् एकवर्णीय भी है, और मूर्तिकार संगमरमर अथवा काँसे की एकीयता में ही मानव-शरीर की विभिन्न वर्णाभाओं और कभी-कभी तो तत्कालीन वस्त्रों के रंगों तक का आभास ला देता है। चित्रकार और मूर्तिकार को जीवन के तथ्यों की उपेक्षा का अधिकार न देने का अर्थ यही होगा कि हम उन्हें अपनी कला से सबको आनंदित करने के अधिकार से ही वंचित कर दें। तथ्य की दृष्टि से चित्र अथवा मूर्ति की गतिशून्यता 'स्वाभाविक' नहीं है; परन्तु यदि हम स्वाभाविकता से विलग जाना स्वीकार नहीं कर लेते तो चित्रकला और मूर्तिकला के आस्वाद से अपने को वंचित करते हैं। प्रत्येक कला का पृष्ठाधार यहीं प्रकृति से भिन्न होता है, जिसे हमें स्वीकार करना ही होगा, यदि हम उस कला से आनन्द उठाना चाहें। नितान्त प्रारम्भिक गाथा-गीत के पात्र परस्पर पद्य में बात करते हैं जैसा कि मानवों के बीच कभी नहीं हुआ। परन्तु हमें अपने उचित स्थान पर पद्य अच्छा लगता है, और हम प्रसन्नता से गीतकार को यह कल्पना करने की अनुमति दे देते हैं कि ऐसे प्राणी भी होते हैं जो अपने को लय और ताल में अभिव्यक्त करते हैं।

इस प्रकार कला के क्षेत्र में रूढ़ि तथ्य का वह निषेध है जिसकी अनुमति हम अपने आनन्द के हेतु दे देते हैं। अधिकतर कलाओं में हमने इन आवश्यक रूढ़ियों को ऐसी सम्पूर्णता से अपना लिया है कि हम इस बात को पूरी तरह विस्मृत ही कर चुके हैं कि उनके अनुसार कलाकार को 'अस्वाभाविक' होने का अधिकार मिल गया है। हमारा निर्माण ही इस प्रकार हुआ है कि हमें परिचित बातें सही और उचित अथवा तर्कसंगत लगती हैं। परन्तु यह आवश्यक तो नहीं कि जिससे हम परिचित हैं, दूसरे

भी उसी से परिचित हों, रेड इंडियन जब चेहरे के आधे भाग का चित्र देखते तो सदा पूछा करते थे कि मुख का दूसरा भाग कहाँ है ? हममें से कोई यह प्रश्न न करता क्योंकि हम ऐसे चित्र देखा ही करते हैं । हम रेखाकृतिकार की कला से इतने परिचित हैं कि सफ़ेद कागज़ पर काली स्याही से अथवा श्यामपट पर सफ़ेद खड़िया-मिट्टी से बने चित्र में चेहरा पाहचान लेते हैं, यद्यपि किसी भी मनुष्य के मुख के चारों ओर काली अथवा श्वेत रेखा नहीं होती ।

प्रत्येक कला की आधारभूत रूढ़ियाँ स्थायी होती हैं क्योंकि उनके बिना कला का अस्तित्व ही नहीं रह सकता । वे कलाकार और जनता के बीच एक मूक समझौते की भाँति हैं जिसके अनुसार यदि कलाकार को कुछ वस्तुतथ्यों को छोड़ देने का अधिकार मिले तो सत्य को जैसा वह देखता है वैसा ही प्रस्तुत कर सकेगा । रूढ़ि दो पक्षों के बीच समझौता है और उनमें से कोई भी पक्ष उस संधि की शर्तों के विरुद्ध नहीं जा सकता । उदाहरणार्थ ऑपेरा—गीतनाट्य—की रूढ़ि यह है कि कुछ ऐसे मनुष्य भी हैं जिनकी स्वाभाविक भाषा ही गीत है; अतः गीतिनाट्य के दर्शक को त्रिस्तां के मृत्युगीत पर इस आधार पर आपत्ति करने का कोई अधिकार नहीं है कि मृत्युशय्या पर पड़े हुए किसी भी व्यक्ति के शरीर में इतनी शक्ति ही नहीं हो सकती कि वह आध घण्टे तक गाता रहे । टॉल्सटाय ने गीतिनाट्य की इस रूढ़ि को मानना अस्वीकार कर दिया था, इसी से उनकी त्रिस्तां की कड़ी आलोचना निरर्थक हो गई । इसी प्रकार मूक-नाटक की रूढ़ि यह है कि कुछ ऐसे मनुष्य होते हैं जिनकी स्वाभाविक भाषा इंगित है और जो उन सब भावों को इंगित से प्रकट कर सकते हैं जिनके लिए हमें शब्दों की आवश्यकता होती है । मूकनाटक का आनन्द ले सकने की पहली शर्त यह है कि हम इस रूढ़ि को मानने को तैयार हों । हम यदि चाहें तो इस समझौते को अस्वीकार कर दें; परन्तु तब हमें उस नाट्य-गृह में जाना ही नहीं चाहिए जहाँ मूक-नाटक हो रहा हो, जैसे टॉल्सटाय को वहाँ नहीं जाना चाहिए था, जहाँ गीतिनाटक प्रस्तुत किया जा रहा था ।

इन आधारभूत स्थायी रूढ़ियों के अतिरिक्त दूसरी रूढ़ियाँ भी हैं जो अस्थायी और आकस्मिक हैं, ये केवल कुछ स्थानों और कालों में स्वीकृत होती हैं, और कला के अस्तित्व के लिए अनिवार्य नहीं होतीं । जैसे मिस्र के राजस्मारकों के भित्ति-चित्रों में पुरुष भूरे रंग में और स्त्रियाँ पीले रंग में चित्रित की गई हैं, और फारोआ (सम्राट्) अपनी प्रजा से आकार में बहुत बड़े बनाये गए हैं; इसी प्रकार पॉम्पियाई के चित्रों में कम महत्त्व के व्यक्तियों को छोटा बनाया गया है । कभी-कभी इस प्रकार की अस्थायी रूढ़ियाँ विशेष परिस्थितियों के कारण होती हैं । मूर्तिकार यदि मिट्टी के नमूने को कांसे में ढालता है तो उस धातु में मूर्ति के सुदृढ़ आधारों को छिपा सकता है, परन्तु यदि उसी नमूने को संगमरमर में बनाता है तो उसे नीचे ढुलकता सा वस्त्रखण्ड अथवा कोई स्तम्भ आदि उसमें बनाना होगा जिससे एड़ियों के

पाए मूर्ति को आधार मिल जाय क्योंकि वहाँ बहुत पतला रहने से संगमरमर के टूटने का भय रहता है। रोमन काल की कुछ ऐसी प्रतिमाएँ हैं, जिनमें घोड़े के शरीर को भूमि से उसके उदर तक एक वृक्ष के तने के सहारे टिकाया गया है यद्यपि वृक्ष का उस रूप में वहाँ होना वस्तु-तथ्य की दृष्टि से नितान्त असंभव है।

2

अन्य कलाओं की भांति नाटक की भी अपनी अनिवार्य रूढ़ियाँ हैं, उसकी कुछ अस्थायी रूढ़ियाँ भी होती हैं, जो प्रायः किसी एक नाट्यगृह की विशेष परिस्थितियों से उद्‌भूत होती हैं। नाटक की अनिवार्य रूढ़ियाँ नाट्य-प्रदर्शन की तीन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप होती हैं। इसमें से पहली यह है कि नाटककार के पास सीमित समय—दो या तीन घंटे—होता है, अतः उसके लिए यह आवश्यक है कि वह बड़ी सावधानी से अपनी विषय-वस्तु के लिए महत्त्वपूर्ण तत्व चुने और नैत्यिक जीवन की लम्बी-चौड़ी और आवृत्तिपूर्ण बातचीत के समान प्रतीत होने वाला किन्तु संघटित वार्त्तालाप प्रस्तुत करे। दूसरी और तीसरी शर्तें ये हैं कि रंगमंच पर किये हुए हर कार्य को नाट्यगृह में बैठे दर्शक देख सकें और मंच पर बोला हुआ हर एक वाक्य सुन सकें। दर्शक रंगमंच के दो घण्टों के कार्य-व्यापार में अधिक से अधिक घटनाओं का समावेश चाहता है, वह कथा के विषय में सब कुछ देखना और सुनना चाहता है, इसी से वह नाटककार को वे सब सुविधाएँ देना चाहता है जिनसे वह दर्शक को उसका मनवांछित दे सके।

सबसे पहले तो दर्शक कथा को अच्छी तरह समझना चाहता है; इसी से नाटककार ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जो दर्शक और नाटककार दोनों की ही भाषा हो। यह इतना आवश्यक है कि हम इसे सहज ही स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु यह स्वाभाविक नहीं है कि एस्किलस की त्रासदियों में ईरानी लोग यूनानी भाषा बोलते हैं; जूलियस सीजर, हैमलेट और मैकबेथ अंग्रेज़ी में संभाषण करते हैं न कि लैटिन और डेनी अथवा इतालवी में; और कार्नाइ की सिड तथा मोलियर के डॉन जुआन फ्रांसीसी में बोलते हैं। हेनरी पंचम में शेक्सपियर इस रूढ़ि को और आगे ले जाते हैं, अंग्रेज पात्र; और फ्रांसीसी पात्र आपस में अंग्रेज़ी ही बोलते हैं, परन्तु जब हेनरी पंचम कैथरीन को विवाह के लिए मनाने की चेष्टा करता है तो वह नौसिखियों की तरह टूटी-फूटी अंग्रेज़ी बोलती है।

यह सत्य है कि उपन्यास के संवादों की भाषा को भी संघनित करने की आवश्यकता होती है, क्योंकि वह भी महत्त्वपूर्ण कथनों का पुंजीभूत रूप होती है। कितना ही यथार्थवादी उपन्यासकार क्यों न हो अपने पात्रों को उसके आधे लम्बे संलाप भी नहीं करने देता जितने वे वास्तविक जीवन में करते हैं। परन्तु समय सीमित होने के कारण नाटककार को अपने पात्रों के संलाप जिस सीमा तक संक्षिप्त करने पड़ते हैं, उसका अनुमान भी उपन्यासकार को नहीं हो सकता। इसी कारण उपन्यास को

नाट्यरूप देने वाले व्यक्ति को उसके संवाद अपनी आवश्यकता के अनुकूल फिर से लिखने पड़ते हैं। रंगमंच पर बड़े ही महत्त्व का प्रेम-दृश्य कलात्मक ढंग से उतना छोटा करके दिखाया जा सकता है कि उसमें केवल पाँच मिनट लगें जबकि वास्तविक जीवन में उसके के लिए एक घंटे का समय पर्याप्त होता।

नाटककार अपने पात्रों के आलाप को संवनित ही नहीं करता, उसका स्पष्टीकरण भी करता है। नाटक के प्रत्येक पात्र में प्रथम प्रयास में और कम से कम शब्दों में अभीष्ट बात कहने की क्षमता होने की आशा की जाती है। यह बात दैनिक जीवन से भिन्न है, क्योंकि उसमें तो हमारी भाषा अनिश्चित, टूटी हुई और विभक्त होती है। नाटक में प्रत्येक पात्र अपने विचार प्रकट करने के लिए अच्छे से अच्छे शब्दों का प्रयोग करता है, और दूसरा पात्र उसके अर्थ को तत्काल ही समझ लेता है; यह भी वास्तविकता से कोसों दूर है क्योंकि हम सदा दूसरे की बात का पूरा-पूरा अर्थ नहीं समझ पाते हैं। सामाजिक नाटकों के संलापों के सत्याभास और प्रत्येक पात्र को अनुकूल भाषा प्रदान करने की निपुणता के लिए इब्सन की बहुत प्रशंसा हुई है। फिर भी उनका संवनित और परिमार्जित गद्य रूढ़ि पर उतनी ही स्पष्टता से आधारित है जितना गीतिनाटक के नायक का गीत अथवा मूक-अभिनेता के सब कुछ अभिव्यक्त कर सकने वाले इंगित।

शेक्सपियर की त्रासदियों का आधार यह रूढ़ि है कि पात्र ऐसे मनुष्यों में से हैं जिन्हें अतुकांत छंद में ही बात करने की आदत है। कुछ प्रारंभिक नाटकों में शेक्सपियर ने इस रूढ़ि का उल्लंघन किया है, उनमें कई स्थानों पर नाटककार ने तुक का प्रयोग किया है, कुछ अन्य नाटकों में, विशेषकर **जूलियस सीज़र** में हम देखते हैं कि महान् पात्र अतुकांत छंद में बात करते हैं जब कि कम विख्यात पात्र तुक में बोलते हैं, और साधारण जन नित्य के गद्य में बातचीत करते हैं। इसी प्रकार कार्नाइ और रासीन की त्रासदियों और मोलियर की कामदियों की रूढ़ि यह है कि उनमें संलाप तुक-युक्त छंद में होता है। अंग्रेज़ी भाषी जन अतुकांत छंद को स्वाभाविक समझते हैं; और तुकांत पंक्तियों को सुनने की आदत न होने के कारण कार्नाइ की पंक्तियाँ उन्हें प्रायः अस्वाभाविक जान पड़ती हैं। परन्तु देखा जाय तो दोनों व्यवहार मानव भाषा की वास्तविकता से दूर हैं और लेखक के समकालीनों द्वारा स्वीकृत रूढ़ियाँ हैं। इसी प्रकार स्पेनी नाटक में संवादों के बीच सानेट के दर्शन हो जाते हैं। काँग्रीव और शेरिडन की कामदियों में लेखक की परिमार्जित वाक्पटुता साधारण से साधारण पात्र में यहाँ तक कि अनपढ़ नौकरों तक में पाई जाती है। स्पष्ट है कि यह रूढ़ि वस्तुतथ्य के बहुत विपरीत है।

3

इस प्रकार यह अनिवार्य है कि हम नाटक की आधारभूत रूढ़ियों को स्वीकार करें अन्यथा उसके आस्वादन से हम को वंचित होना पड़ेगा। वास्तव में हमें ध्यान ही

नहीं रहता कि वे रूढ़ियाँ हैं। अपने आनन्द में सहायक होने वाली साधारण-सी रूढ़ि को भी हम स्वीकार कर लेते हैं, चाहे वह हमारी आदतों के कितनी भी विरुद्ध क्यों न हो। आधुनिक युग में हमें यथार्थवादी दृश्य-सज्जा और विशिष्ट वेशभूषा की आदत हो गई, परन्तु यूनानी और एलिजाबेथकालीन दर्शक बिना इसके नाटक का पूरा आनन्द उठा लेते थे और हम आज भी इनके बिना नाटक देखने के लिए पूरी तरह तैयार हैं, यदि पहले से बता दिया जाय। एक बार हेनरी अर्विंग ने **मर्चेण्ट ऑफ़ वेनिस** को केवल पताकाओं से सजे मंच पर बिना किसी दृश्य-सज्जा के प्रस्तुत किया था, और एडविन बूथ ने **हैमलेट** यात्रा के कपड़ों में प्रदर्शित किया था। दोनों ही बार दर्शकों को पहले से बता दिया गया था और उन्होंने अपने को इन असामान्य स्थितियों के अनुकूल बना लिया। मोलियर के **मिसेंथ्रॉप** का प्रदर्शन लुई चौदहवें के दरबार में बिना किसी उपयुक्त दृश्य-सज्जा के किया गया था।

नाटक में कार्य-व्यापार और भाषा के सभी तथ्य साभिप्राय होने चाहिए अन्यथा दर्शक का मन भटक जाता है और उसकी रुचि उसमें नहीं रहती। वह जो कुछ हो रहा है सभी देखना चाहता है, इसी से कमरे की चौथी दीवार हटा दी जाती है जिससे कि वह रंगमंच के सब कार्य देख सके। वह सब कुछ सुनना चाहता है इसी से एक पात्र दूसरे से कान में कहने की बात को भी ऊँचे स्वर में कहता है कि उसे रंगशाला की अंतिम पंक्ति में बैठा हुआ दर्शक भी सुन सके, और कल्पना यह की जाती है कि कुछ फुट के अन्तर पर खड़ा हुआ तीसरा पात्र उसे नहीं सुन रहा है।

18वीं सदी और 19वीं सदी के आरम्भ की अंग्रेज़ी रंगशालाओं में नाटक की सबसे महत्त्वपूर्ण घटनाएँ दर्शकवृन्द के पास मंच के भाग में, दृश्य-सज्जा से दूर, प्रस्तुत की जाती थीं, क्योंकि वहीं पर इतना काफ़ी प्रकाश होता था कि दर्शकगण अभिनेताओं के मुख-भावों को अच्छी तरह देख सकते थे। यह रूढ़ि तब दर्शक के लिए स्वीकार्य थी क्योंकि उसका आनन्द बढ़ता था, परन्तु आज, जब विद्युत् प्रकाश से सारा मंच आलोकित हो जाता है, हमारे लिए स्वीकार्य नहीं है। आज हम अभिनेता को सम्पूर्ण चित्र के अंग रूप में देखना चाहते हैं। रंगमंच के केन्द्र में अभिनय करना अस्थायी परिस्थिति से उद्भूत एक अस्थायी रूढ़ि थी, और जब यह परिस्थिति नहीं रही तो यह रूढ़ि भी असह्य हो गई, यद्यपि कहीं-कहीं उस परिस्थिति के न रहने के बाद भी बनी रही। हम अब भी चाहते हैं कि रोज़लिंड आर्डन के वन में जो गीत गाती हुई दिखाई गई है, उसके साथ पूरा नाट्यवाद्य बजे; इसकी अनर्गलता से हमें चिढ़ नहीं लगती, हम इसके अभ्यस्त भी हैं और इसे पसंद भी करते हैं।

परन्तु इसी प्रकार की कोई और विचित्रता जिसके अभ्यस्त हम नहीं हैं, तत्काल हमें अप्रिय लगेगी। हम यह कठिनाई से समझ पाते हैं कि शेक्सपियर और मोलियर के नाटकों के अभिनय के समय मंच पर दाहिने और बायें दर्शकों के जमा हो जाने पर भी सत्याभास में बाधा क्यों नहीं पड़ती थी। अब हमें यह स्थिति बड़ी विचित्र

लगेगी, यद्यपि तब दर्शकों को यह स्वाभाविक जान पड़ती थी, क्योंकि वे इसके अभ्यस्त थे और किसी दूसरी प्रणाली से परिचित न थे। यह कल्पना की जाती थी कि मंच के ये दर्शकगण वहाँ हैं ही नहीं, अत: वे दूसरों के आनन्द में बाधक नहीं होते थे। आज भी जापानी नाटकों में इससे मिलती-जुलती एक रूढ़ि है। एक अमरीकी दर्शक ने जापानी नाट्य प्रदर्शन के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए उसके समूचे प्रभाव का विश्लेषण किया है।

प्रांपटर मंच पर दर्शकों के सम्मुख बैठता था। वह शरीर से चिपका हुआ काला सूट और काला हुड पहने रहता था और दर्शकों की ओर कभी अपना मुँह नहीं करता था; इतने से ही यह कल्पना कर ली जाती थी कि वह वहाँ है ही नहीं। इसी प्रकार काले वस्त्रों में एक दूसरा व्यक्ति भी मंच पर रहता था और वेशकार तथा मंच कर्मी का कार्य करता था। उसका कार्य अभिनेता को वस्त्र परिवर्तन में सहायता देना और मंच पर उपयोग में लाई गई कोई भी वस्तु ले जाना होता था। यदि उसे यह प्रतीत होता था कि अभिनेता का कटिवस्त्र ठीक नहीं बंधा है तो वह उसके पीछे जाकर उसे ठीक से बाँध देता था, चाहे अभिनेता उस समय बात ही कर रहा हो। हम उसकी ओर ध्यान नहीं देते थे और आश्चर्य की बात तो यह थी कि थोड़ी देर में हमारा ध्यान उसकी ओर खिचता तक नहीं था।

जिस प्रकार अंग्रेज़ी मंच पर बैठे हुए दर्शकगण और जापानी मंच के परिचर अदृश्य समझे जाते हैं, इसी प्रकार शेक्सपियर के नाटकों में गद्य और पद्य के मिश्रित प्रयोग और संस्कृत नाटकों में महान् पुरुष पात्रों के संस्कृत में और स्त्रियों तथा परिचारकों के प्राकृत में बोलने की रूढ़ियों में समानता है। मध्ययुगीन पुर्तगाली पैशन नाटकों में शैतान अधिकतर स्पेनी भाषा में बोलता था, और न्यूयॉर्क की आधुनिक यहूदी रंगशालाओं में केवल हास्य पात्र ही यहूदियों की भाषा यिद्दिश का प्रयोग करते हैं।

रूढ़ि और परम्परा का अन्तर बताना सदैव सरल नहीं होता। ठीक-ठीक देखा जाय तो रूढ़ि वस्तुतथ्य से इस प्रकार की दूरी है जो दर्शक के आनन्द में वृद्धि करने के लिए स्वीकार की जाती है। परम्परा कार्य करने का स्वीकृत ढँग है, जो पूर्णतया स्वाभाविक हो भी सकता है और नहीं भी। सब रूढ़ियाँ परम्पराएँ होती हैं, परन्तु सब परम्पराएँ रूढ़ियाँ नहीं होतीं। लैटिन नाटक में ग्रीक नाटक से एक परम्परा ग्रहण की गई है—एक षड्यंत्रकारी दास का समावेश—जो अपने स्वामी के हित के लिए कपटपूर्ण योजनाएँ बनाता है। वहाँ इस दास का चित्रण परम्परा पर आधारित हो सकता है, परन्तु जब ऐसा सेवक मोलियर के नाटकों में दिखाई देता है तब तक वास्तविक जीवन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया, वह एक ऐसी परम्परा का द्योतक है जो रूढ़ि बन चुकी है।

यूनानी नाटकों में ही बहुत-सी 'पहचानों' की परम्परा है, इसकी चर्चा अरस्तू

ने भी की है—जैसे माता-पिता को बहुत समय बाद खोये हुए बच्चों का मिल जाना। यूनान में जब-तब युद्ध होते रहते थे और बालकों को बंदी बनाकर सेवकों के रूप में बेच दिया जाता था, वहाँ इस प्रकार खो जाना और मिल जाना सम्भव था। परन्तु जब लैटिन नाटक में यूनानी नाटक की यह परम्परा स्वीकृत हुई तो इसने रूढ़ि का रूप धारण कर लिया, क्योंकि जीवन की परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं और इस बात की संभावना नहीं रही थी कि बालक बेच डाले जाएँ और स्वयं उनके पिता उन्हें मोल लें—जैसा प्लॉटस के कैप्टिव्स में दिखलाया गया है; यूनान की यही परम्परा रोम में आकर रूढ़ि बन गई थी। फिर जब इतालवी कामदी और फ्राँसीसी नाटकों में यह रूढ़ि आई तो इसकी रूढ़िता सुदृढ़ हो चुकी थी, अतः मोलियर को इसे अपनाने में कोई हिचक नहीं हुई।

इटली से कथानक ग्रहण करने के कारण मोलियर एक दूसरी परम्परा को भी रूढ़ि में परिवर्तित करने के लिए बाध्य हुए। दक्षिण इटली में जहाँ मुखौटा-कामदी फली-फूली, लोग अधिकतर घरों के बाहर रहते हैं, और इन नाटकों का परम्परागत दृश्य बाजार का चौक होता है, जहाँ सब पात्र मिलकर अपने निजी मामलों के बारे में बातचीत करते हैं। परन्तु जब मोलियर ने इस परम्परा को पेरिस में प्रतिष्ठित किया, जो ठंडा देश है और जहाँ सब काम घरों के अन्दर होते हैं, और अपने कुछ पात्रों को हास्यपूर्ण सलाह-मशविरे के लिए गली में कुर्सियाँ डाल कर बैठे हुए दिखाया तो स्पष्ट है कि वह इतावली परम्परा मात्र रूढ़ि के रूप में स्वीकार की गई है।

मध्ययुगीन रंगमंच की परम्पराएँ बहुत दिनों तक जीवित रहीं और शेक्सपियर के नाटकों तथा कार्नाइ के भी कुछ प्रारम्भिक नाटकों में वे बहुत दिखाई देती हैं। आधुनिक नाट्य प्रदर्शन में दृश्य-परिवर्तन क्रमिक होता है; दूसरे अंक का दृश्य पहले से भिन्न हो सकता है, और बाद के सभी अंकों के अपने-अपने अलग दृश्यबंध हो सकते हैं। लेकिन मध्ययुगीन रंगमंच में, विशेषकर फ्रांस में, गिरजाघरों में पैशन नाटकों के प्रारम्भिक प्रदर्शनों की परम्पराओं के कारण बिलकुल दूसरी तरह का प्रबन्ध होने लगा था। गिरजाघरों में विभिन्न घटनाएँ विभिन्न स्थानों पर अभिनीत होती थीं, जिनको 'स्टेशन' कहा जाता था; फ्रांस में जब मिस्ट्री नाटकों का गिरजाघरों में प्रदर्शन बंद हो गया, तो इन सब 'स्टेशनों' को प्रदर्शनमंच के पीछे एक सीध में बनाने लगे, और उन्हें 'मैशन' (भवन) का नाम दिया गया। इस प्रकार फ्रांस के रंगमंच में दृश्यबंध क्रमिक न होकर समकालिक हो गया। वास्तव में दूर-स्थित स्थानों के एक साथ प्रदर्शन की इसी परम्परा का अनुपालन शेक्सपियर ने भी रिचर्ड तृतीय में किया है, जहाँ उन्होंने एक ही दृश्य में रिचार्ड और रिचमण्ड के शिविर दिखलाए हैं। सम्भवतः ग्लोब नाट्यगृह में ये शिविर ऊपर से लटकते हुए लम्बे-लम्बे पर्दों को दाएँ और बाएँ सिरों पर बाँध कर दिखला दिए जाते होंगे। जब कार्नाइ ने स्पेनी भाषा से सिड को लिया तो उन्होंने भी इसी समकालिक दृश्यबंध का प्रयोग किया, उन्होंने मंच पर अपने कथानक के लिए

आवश्यक भवनों का निर्माण करवाया, और रंगमंच को केवल पृष्ठभूमि के रूप में रखा, जहाँ अपने-अपने निवास-स्थानों से निकलकर पात्र आपस में मिल सकते थे। यह प्रयोग बिलकुल मध्ययुगीन परम्परा के अनुसार था।

4

नाटक की सब रूढ़ियों में से स्वगत-कथन के समान रोचक इतिहास किसी का नहीं है। स्वगत कथन वह उक्ति है जिसमें पात्र मंच पर किसी अन्य पात्र से नहीं वरन् अपने आप अथवा दर्शकों से बात करता है। हमारे समय के नाटक का सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करने वाला परिवर्तन स्वगत-कथन का पूर्ण लोप है। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशकों में प्रत्येक आधुनिक भाषा के नाटककार ने स्वगत-कथन की ओर अरुचि दिखाई, और इब्सन ने सर्वप्रथम इसको पूरी तरह छोड़ दिया। एक ऐसा समय था—और उसको कुछ बहुत दिन भी नहीं हुए—जब नाटककार के लिए यह सुविधा थी कि खलनायक अपने पर से मिथ्या का आवरण उतार कर अपने आंतरिक अवगुणों के बारे में सब कुछ स्वगत-भाषण में कह डाले। परन्तु अब यह उपाय सुगम होते हुए भी प्रयोग में नहीं लाया जाता। अब कोई पात्र रंगमंच के अग्रभाग में तल-बत्तियों के सामने आकर दर्शकों के प्रति आत्मीय भाव से अपने विचारों अथवा इच्छाओं की अभिव्यक्ति और अपने कार्यों को उचित सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं करता। इस प्रणाली के विरुद्ध इतनी तीक्ष्ण प्रतिक्रिया हुई, कि जर्मनी के उत्तर-कालीन यथार्थवादी नाटककारों के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक लेख में हॉप्टमान के तंत्र की प्रशंसा करने के उपरान्त यह निश्चयपूर्वक कहा गया है कि स्वगत भाषण और जनान्तिक का रंगमंच से बहिष्कार हो गया है।

परन्तु इन रूढ़ियों का त्याग—चाहे अब पूर्णतया क्यों न हो चुका हो—अभी थोड़े ही दिनों की बात है; इब्सन ने अपने प्रारम्भिक नाटकों में इसका खूब प्रयोग किया है। जूडरमान के **ऑनर** में एक पात्र स्वगत भाषण करता है, और फिर इसके लिए अपनी भर्त्सना करता है। हेनरी आर्थर जान्स के **मिडलमैन** में निःसंदेह स्वगत और जनांतिक का प्रयोग होता है, और उसमें इसका कोई संकेत नहीं मिलता कि बहुत शीघ्र ही इनका चलन समाप्त हो जाएगा। इन आधुनिक नाटकों में वे उसी प्रकार प्रयुक्त हुए हैं, जैसे मध्ययुगीन नाटकों में, और यूनानियों तथा रोमनों की त्रासदियों और कामदियों में।

जर्मन नाटक के सम्बन्ध में लिखने वाले फ्रांसीसी लेखक का यह विश्वास उचित ही है कि स्वगत-भाषण का अंत सुनिश्चित हो चुका है, और जनान्तिक का बहिष्कार अवश्यम्भावी है। परन्तु इन फ्रांसीसी लेखक द्वारा 1905 में प्रकट की हुई अरुचि 1864 में ऑब्रिनयाक के **प्रातीक दु थियेटर** के अंग्रेजी अनुवादक के मत के पूर्णतया विपरीत है। उन्होंने लिखा है कि—"कभी-कभी किसी व्यक्ति को रंगमंच पर अपने अंतर की बात बताते हुए और गुप्त विचारों को प्रकट करते हुए, अपनी कार्य-योजनाओं की

व्याख्या करते और अपने भावावेश के प्रति पूरी तरह आत्मसमर्पण करते हुए देखना बड़ा अच्छा लगता है। फ्रांसीसी लेखक ने नाटकीय कला सम्बन्धी सिद्धान्त अंशत: प्राचीन व्यवहार से और अंशत: लुई चौदहवें के फ्रांसीसी दर्शक-वृन्दों की रुचियों पर निर्धारित किए थे। उन्होंने समझ लिया था कि अंतर की भावनाओं को स्पष्ट करने वाले स्वगत-भाषण उसके समकालीनों के नाटकों में दर्शकों को प्रिय लगते हैं। और उन्होंने प्लॉबस के नाटकों में भी उनका निर्बन्ध प्रयोग देखा था। दो सदियों तक यह रूढ़ि नाटक के निर्माताओं को सुगम और दर्शकों को रुचिकर जान पड़ती रही। तब उन्नीसवीं सदी के अन्त में नाटककार इसका शीघ्रता से बहिष्कार करने लगे, और दर्शक इस पुरानी रूढ़ि के विरुद्ध हो गए। नाटककार और दर्शक दोनों में ही यह अनपेक्षित परिवर्तन क्यों हुआ ? किस बात से अचानक उनका ध्यान इस तथ्य पर चला गया कि स्वगत-भाषण अस्वाभाविक है ? इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए हमें नाटक के इतिहास पर दूर तक दृष्टिपात करना होगा। यूनानी नाटक गीत से उपजा था। अत: उसमें गीति प्रधान आत्माभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता दिखलाई पड़ सकती है, और एस्किलॅस में बंदी प्रॉमेथियस तो तब तक शीतलता के आकाश को ही अपनी व्यथा सुनाता रहता है, जब तक एकान्तवास में उसका जी बहलाने वाली समुद्र-पुत्रियाँ विमान पर नहीं आ जातीं। सॉफ़ॉक्लीज़ में भी यद्यपि कोरस के चारों ओर बैठ जाने पर लम्बे भाषण दिए जाते हैं, परन्तु उद्दिष्ट होते हैं पूरे दर्शक-वृन्द को, न कि केवल इन विनीत श्रोतागणों को। फ्रांसीसी प्राचीनता परक त्रासदी में कोरस के स्थान में प्रत्येक प्रमुख पात्र के साथ एक-एक परिचर रखा गया है। रासीन के उत्कृष्ट नाटक में फ़ैदे के साथ सदैव ओनोन रहता है, इमीनी के साथ ओरिसी और ईपोलीत के साथ तेरामेन, और इनसे वे उन्मुक्त भाव से अपने मन की सब बातें कह डालते हैं। इस प्रकार चतुर कवि ने स्वगत भाषण को हटाकर भी इस उपाय से उसका पूरा लाभ उठा लिया है। ये विश्वासपात्र परिचर महत्त्वहीन प्राणी हैं, उनके चरित्र की रूपरेखा मात्र प्रस्तुत की गई है, और नाटक में उनका अस्तित्व इस प्रकार के कथनों के श्रोता बनने के लिए ही है। वे अपने स्वामी और स्वामिनी की छाया-मात्र हैं। उनका भाग्य ही वही होता है, और जब श्वेत साटनधारिणी नायिका पागल होती है तो उसके साथ उसकी श्वेत मलमलधारिणी दासी भी। ये विश्वस्त पात्र उन बाह्य और स्पष्ट चिन्हों में से थे जिनके कारण 1830 के उत्साही रोमांसवादियों ने इनकी विशेष निन्दा की थी। विक्टर ह्यूगो ने अपने नाटकों से इन निष्क्रिय पात्रों को निकाल फेंका, और उन्हें पुन: स्वगत-भाषण की शरण लेनी पड़ी। हरनानी में उन्होंने राजा से जो लम्बा और तर्कपूर्ण एकपात्रीय संवाद कहलाया है, वह समस्त नाटक-साहित्य में सबसे लम्बा स्वगत-भाषण है। यह अन्तर्मुखी अभिभाषण ह्यूगो की अलंकारमय भाषा का श्रेष्ठ उदाहरण है।

लोप द वेगा ने अपनी पुस्तक **न्यू आर्ट ऑफ मेकिंग प्लेज़** (नाटक-निर्माण की नई कला) में विभिन्न छन्दों पर विचार करते हुए कहा कि स्वगत-भाषण के लिए उपयुक्त छन्द सॉनेट है। इस सुझाव के कारण एक प्रश्न यह उठता है कि क्या स्वगत-भाषण की कृत्रिमता इसकी अभिव्यक्ति के माध्यम की कृत्रिमता से छिप जाएगी? शेक्सपियर के प्रारम्भिक नाटकों में सॉनेट में तुकों का स्वच्छन्द विन्यास कई स्थानों पर देखा जा सकता है, इससे तरुण कवि को मात्र शब्दों की चातुरी में ही कितना आनन्द मिला यह स्पष्ट होता है। परन्तु शेक्सपियर एक व्यवहारकुशल नाटककार था, वह अपनी जीविका की हर युक्ति को भलीभाँति समझता था, और अपने दर्शकों को स्वीकार्य प्रत्येक रूढ़ि से लाभ उठाता था। स्वगत-भाषण इतना सुकर उपाय था कि उसे त्याग देने का विचार भी शेक्सपियर के मन में नहीं आया होगा।

अपने किसी अन्य नाटक के कथानक और संरचना के लिए उन्होंने इतना श्रम नहीं किया, जितना **ऑथेलो** के लिए; और किसी में भी स्वगत-भाषण की इतनी अधिकता नहीं है। इयागो द्वारा अपनी खलता स्वयं अभिव्यक्त करवाने के लिए बार-बार उन्होंने इसका प्रयोग किया है, मानो वे सामने बैठे हुए दर्शकों के मन में उसकी दुष्टता के प्रति कोई संदेह नहीं रहने देना चाहते थे। और इसी से पहले अंक के अन्त में इयागो स्वगत-भाषण में अपनी पाप-योजनाओं के बारे में बता देता है। और फिर दूसरे अंक के मध्य और अंत में वह दर्शकों को अपने दुष्ट मस्तिष्क में बनती हुई योजनाओं के बारे में बताता जाता है।

जैसे इयागो अंग्रेज़ी रंगमंच के वरेण्य नाटककार द्वारा चित्रित अतुलनीय खलनायक है, उसी प्रकार फ्रांसीसी रंगमंच के वरेण्य नाटककार की रचना तारत्युफ़ है और हमें यह स्वीकार करना होगा कि मोलियर अपने पात्र के कपट को बिना किसी स्वगत-भाषण अथवा जनान्तिक की सहायता के स्पष्टतया प्रदर्शित कर लेते हैं। इन कलाहीन युक्तियों का त्याग करके वे अपनी कथा की रचना इस प्रकार करते हैं कि हम तारत्युफ़ से एक भी शब्द सुनने के पहले ही जान जाते हैं कि वह क्या है। इस बात में मोलियर बिलकुल आधुनिक प्रतीत होते हैं, परन्तु एलिज़ाबेथकालीन परम्परा को स्वीकार करके शेक्सपियर अपने तंत्र में अर्धमध्ययुगीन बन जाते हैं।

परन्तु कभी-कभी मोलियर भी स्वगत-भाषण का प्रयोग उतने ही असंगत रूप से करते हैं जितना कि शेक्सपियर। दोनों ही नाटककारों ने चरित्र-चित्रण करने वाले और कथानक के तथ्य बताने वाले स्वगत कथन में कोई अन्तर नहीं किया। दोनों का ही विश्वास था कि चाहे ऐसी सूचना देने में, जिसे अधिक सावधान नाटककार किसी अन्य कम कृत्रिम उपाय से देता, और चाहे किसी कठिन स्थिति में नायक के विरोधी भावों को प्रकट करने में जो अन्य किसी प्रकार नहीं किया जा सकता, स्वगत-भाषण एक समान रुचिकर होते हैं; फिर भी इन दोनों प्रयोजनों का, जिनके लिए स्वगत का

प्रयोग होता है, अन्तर स्पष्ट होना चाहिए, भले ही मोलियर और शेक्सपियर उसे न समझ पाये हों।

5

आजकल नाटककारों के लिए आवश्यक हो गया है कि वे पात्र को अपनी योजनाएँ बताने के लिए मंच पर अकेला छोड़ने के स्थान पर कोई अन्य उपाय खोजें। यह कार्य-विधि तो इतनी सरल है कि उसका प्रयोग लेखकों के लिए आकर्षक नहीं है और दर्शकों को सूचना देने वाले स्वगत-भाषण के पक्ष में कुछ भी कहना कठिन है। परन्तु जिस स्वगत-भाषण में पात्र निश्चिन्तता से अपने गोपनीय विचारों को प्रकट करता है, उसका स्तर कुछ ऊँचा है। यह कष्टपीड़ित नायक को अपने मन का बोझ हल्का करने का अवसर देता है; उसके अन्तर के गवाक्ष खोल देता है, और दर्शक को वह आनन्द प्रदान करता है जो और किसी तरह उसे नहीं मिल सकता। उसके द्वारा हम पात्र को अपने से इस प्रकार बात करते हुए देखते हैं जैसेकि हम उसे न सुन रहे हों। प्रोफेसर ब्रैडले ने शेक्सपियर की त्रासदियों पर विचार प्रकट करते हुए कहा है कि स्वगत-भाषण सुनते समय हमें यह कभी नहीं समझना चाहिए कि हमें सम्बोधित करके कुछ कहा जा रहा है। उन्होंने कहा है कि इस प्रकार देखने पर शेक्सपियर के बहुत-से स्वगत-भाषण बहुत श्रेष्ठ प्रतीत होंगे, परन्तु वे यह स्वीकार करते हैं कि कुछ में तो सूचना देने का प्रयोजन अतिस्पष्ट हो जाता है, एक या दो में तो पात्र प्रत्यक्ष रूप से दर्शकों को सम्बोधित करता है। मोलियर के विषय में भी यह आक्षेप उतना ही सत्य है जितना शेक्सपियर के।

वास्तविकता यह है कि जब शेक्सपियर और मोलियर नाट्य-लेखन की ओर उन्मुख हुए तो उन्हें श्रम बचाने वाली युक्ति के रूप में स्वगत-भाषण मिले; उन्होंने इस उपाय को उसके आधारभूत सिद्धान्त के विषय में चिन्ता किए बिना ही अपना लिया। यदि इस सिद्धान्त की विधिवत् परिभाषा दी जाय तो कुछ इस प्रकार होगी—'स्वगत-भाषण किसी पात्र के वास्तविक विचारों को अकेले में प्रकट करने का साधन है।' दूसरे शब्दों में स्वगत बोलते हुए पात्र को मुखर होकर विचार करता हुआ समझना चाहिए। परन्तु शेक्सपियर और मोलियर को सिद्धान्त की चिन्ता इतनी कम थी कि वे दोनों प्रायः हमारे सम्मुख स्वगत बोलते हुए एक पात्र की बात को दूसरे पात्र से सुना जाना प्रदर्शित करते थे। यदि हम ध्यान से विचार करें तो इस बात में अंतर्विरोध प्रकट होगा। परन्तु इन दोनों ही नाटककारों ने इस प्रकार का विश्लेषण कभी नहीं किया। यह प्रवृत्ति जो हमें नितांत अनर्गल लगती है, प्राचीन समय में टेरेंस से लेकर आधुनिक समय में बोमार्शे तक दृष्टिगोचर होती है। शेक्सपियर रोमियो को जुलियट का स्वगत-भाषण सुन लेने देते हैं। और मोलियर माइज़र में स्वगत कथनों के सुने जाने के सम्बन्ध में इतने ही असावधान हैं।

एक समय एक चतुर व्यक्ति ने अपने से बात करने की वृत्ति को दो कारणों से उचित बताया था—उसे एक समझदार व्यक्ति से बात करना और उसकी बात सुनना अच्छा लगता था। विक्टर ह्यूगो ने ला मिज़राब्ल में स्वगत को एक अपर्याप्त कारण से उचित बताने का प्रयत्न किया; उन्होंने कहा कि यह विश्वास करना भूल है कि स्वगत-भाषण स्वाभाविक नहीं है, क्योंकि प्रायः कठिन उद्वेग में विचार मुखर हो जाते हैं। परन्तु कठिनतम उद्वेग में भी विचार मुखर होकर हरनानी में राजा की कही हुई सौ पंक्तियों के लम्बे भाषण का रूप नहीं लेते। यह स्वीकार करने में कोई लाभ नहीं है कि स्वगत-भाषण स्वाभाविक है। स्वाभाविक वह नहीं है, न अतुकान्त छंद और न अत्यधिक संघनित गद्य स्वाभाविक होता है। परन्तु जैसा प्रोफेसर ब्रैडले ने कहा है—"स्वगत अथवा पद्य के प्रयोग का तिरस्कार इस आधार पर नहीं किया जा सकता कि वह अस्वाभाविक है। नाटक की कोई भाषा स्वाभाविक नहीं होती।"

यह बात कुछ विचित्र लगती है कि जो दर्शक अन्य इतनी ही अस्वाभाविक रूढ़ियों को बिना झिझक के स्वीकार कर लेते, वे अकस्मात स्वगत-भाषण का सत्याभास के अभाव के कारण विरोध करने लगे हों। उन्होंने **रिपवॉन विंकल** में इसका विरोध नहीं किया, जहाँ एक अंक में रिप के स्वगत-भाषण के अतिरिक्त कुछ सुनाई नहीं देता। वे एकांकी **डि कर्टापिन** में भी इसे स्वीकार कर लेते हैं जिसमें सभी भूमिकाओं का अभिनय एक ही पात्र करता है, और एक के बाद दूसरा संवाद बोलता चलता है। परन्तु वास्तविक जीवन से सम्बन्धित आधुनिक नाटक में पात्रों के स्वगत-भाषण से वे रुष्ट होते हैं, क्योंकि नाटककार और दर्शक दोनों ही यह समझ गए हैं कि चाहे अतीत के रंगमंच पर यह कितना ही संगत क्यों न रहा हो, आज के तस्वीरी फ्रेम वाले रंगमंच में इसका कोई स्थान नहीं है। नाटककार को आज इसके प्रयोग में खतरा है; बहुत कम अवसरों पर ही पात्र के अंतर्भूत भावों को प्रकट करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है। यदि यह पहले की तरह अधिकता से प्रयुक्त हुआ तो आज के नाट्य के साथ इसका इतना विरोध देखकर इसके प्रति हमारा विरोधी भाव ही जागेगा। अब यह काव्य-नाटकों में ही परम्परा के रूप में जीवित रह सकता है, जहाँ हमें उच्च विचारों को सुन्दर शब्दों में सुनने में प्रसन्नता होती है। हल्के-फुल्के हास्यपूर्ण नाटकों में भी यह चल सकता है, क्योंकि उनमें हम किसी को गम्भीर भाव से स्वीकार नहीं करते, इसी से इसकी असंगति हमें तीव्रता से अनुभव नहीं होगी।

आठवाँ अध्याय

नाटकीय चरित्र-चित्रण

1

रंगमंच पर सफलता प्राप्त करने के लिए नाटक में ऐसे सशक्त कथानक की आवश्यकता होती है जो दर्शकों की रुचि को जागृत रख सके और उसे बनाये रख सके। अरस्तू अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से इस तथ्य को भली-भाँति समझ गए थे और आज से दो हज़ार वर्ष पहले ही इसके विषय में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की जब कि उन्हें इस विषय में केवल एथेंस के रंगमंच का ही अनुभव था। यद्यपि सशक्त कथानक तात्कालिक सफलता के लिए ही आवश्यक है, परन्तु यदि नाटक में ऐसे पात्र नहीं हैं जो कथा से अलग भी पाठकों की स्मृति में अक्षुण्ण रह सकें तो उसे क्षणिक लोकप्रियता ही मिल सकेगी। कथारुचियाँ देश-देश और समय-समय पर बदलती रहती हैं, और संभव स्थितियाँ इतनी कम होती हैं कि नया नाटककार अधिक-से-अधिक यही कर सकता है कि उन्हीं पुराने कथानकों को थोड़े हेरफेर से नये पात्रों के साथ प्रस्तुत करे। परन्तु मानव स्वभाव विश्वभर में और पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक-सा रहता है। जिस पात्र को लेखक के समकालीन व्यक्ति जीवन्त और महत्त्वपूर्ण समझते हैं, वह अनेकों वर्षों तक जीवित रहता है। विश्लेषण से यह प्रकट होता है कि नाटककार पात्रों का सृजन करने की क्षमता के आधार पर ही स्थायी कीर्ति अर्जित करता है।

कथानक, स्थितियों, और घटनाक्रम—इन सभी तत्वों में—जो जन-साधारण की रुचि जगाने के लिए सबसे पहले आवश्यक हैं—नाटककार को नई बातों का समावेश करना होगा, और कथा-रुचि को बनाये रखने के लिए उसे चतुर युक्तियों का प्रयोग करना होगा। जो पात्र उसकी कथा में वर्तमान हों, उनके निर्माण में नाटककार को अपनी कल्पना का पूरा उपयोग करना होगा, और उनमें वह जीवनी शक्ति फूँक देनी होगी कि जब हमें उस कथा की ओर कोई रुचि न रह तब भी उसके पात्र हमारे लिए सजीव बने रहें। आज हमारे लिए **मर्चेण्ट ऑफ वेनिस** की केन्द्रीय घटनाएँ अविश्वसनीय हो चुकी हैं, परन्तु शाइलॉक अविस्मरणीय है। वह आज भी उतना ही सजीव प्रतीत होता है जितना पहली बार ग्लोब नाट्य-गृह के प्रदर्शन के समय रहा होगा। **विन्टर्स टेल** का कथानक असंभव बातों से पूर्ण है, परन्तु पर्दिता और फ्लोरिज़ेल का तरुण प्रेम हमें अब भी मुग्ध करता है, क्योंकि

उसमें शाश्वत मानवीयता है। **मर्चेण्ट ऑफ वेनिस** में हम प्रमुख पात्र के लिए घटनाओं के असंभव तत्वों को सहन कर लेते हैं; यद्यपि इसके पात्र हमारे मन में उतना बड़ा स्थान प्राप्त नहीं करते। नाटक में कथा तो होनी ही चाहिए, परन्तु हमारी भावनाएँ उन पात्रों के लिए ही सुरक्षित होती हैं जो इस कथा को आगे बढ़ाते हैं। नाटक चरित्र-चित्रण और मनोविज्ञान की सूक्ष्मता के कारण महान् होते हैं। इसी प्रकार के सजीव और जीवन्त पात्रों की रचना करने से, जो हमें सदा सुपरिचित लगें, नाटककार सच्चे अर्थों में नाटककार बनता है। यदि उसमें यह शक्ति नहीं है, और उसने ऐसे पात्रों का सृजन नहीं किया जिन्हें अगली पीढ़ी पहचाने और पसंद कर सके, तो उसकी कीर्ति क्षणस्थायिनी ही होती है। यदि उसने केवल अपने कथानकों की उत्कृष्टता के कारण ही ख्याति प्राप्त की है तो अगली पीढ़ी के नाटककार अपने समय की बदली हुई रुचियों के कारण उससे आगे निकल जाएँगे।

पात्रों को प्रस्तुत करने के लिए नाटककार के पास बड़े सीमित साधन होते हैं। वह उन्हें उसी रूप में चित्रित कर सकता है जैसे वे अपने साथियों को प्रतीत होते हैं। वह उन्हें हमारे सम्मुख केवल उनके कथनों और कार्यों द्वारा ही प्रस्तुत कर सकता है, स्वयं किसी शब्द अथवा कार्य का विश्लेषण नहीं दे सकता। नाटक में स्वयं पात्र के कथनों और कार्यों को ही उसका चित्रण करना होगा, क्योंकि नाटककार को अपने को कथा के बाहर रखना है और व्याख्या करने की सुविधा भी उसे प्राप्त नहीं है। नाटक और उपन्यास के बीच सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर यही है। उपन्यासकार अपने पात्रों के विषय में पाठकों से बात कर सकता है; वह न केवल हमें यह बताता है कि वे क्या कहते हैं, क्या करते हैं, वरन् यह भी कि वे क्या सोचते हैं; चाहने पर वह और भी आगे जा सकता है, और हमें यह भी बता सकता है कि वह स्वयं उनके विषय में क्या सोचता है अथवा हमें उनके विषय में क्या सोचने देना चाहता है।

उदाहरण के लिए थैकरे के उपन्यासों का बहुत-सा आकर्षण इसी में है कि वह निरन्तर कथा में हस्तक्षेप करता रहता है, और कथा का कार्य-व्यापार उसके विवरणों में डूबा रहता है। चाहे हम थैकरे की पद्धति को पसंद करें, चाहे बाल्ज़ाक की दृढ़ तटस्थता और पक्षपातहीनता को, परन्तु यह निश्चित है कि नाटककार को इस प्रकार की सुविधा प्राप्त नहीं है। नाटक में कोई टिप्पणी, कोई व्याख्या, कोई भी संकेत संभव नहीं है। रंगमंच पर प्रत्येक पात्र को अपने ऊपर निर्भर रहना है, और अपने लिए बोलना है, उसे अपनी कथनी और कार्यों द्वारा ही अपना औचित्य सिद्ध करना है, और यदि वह चतुर है, तो हम सबके सम्मुख उसे अपनी चतुराई सिद्ध करनी होगी, क्योंकि स्वयं देखे बिना हम इस पर विश्वास नहीं करेंगे। उसके वाक्-चतुर कहे जाने का भी हम अपने कानों से उसका प्रभाव पाये बिना विश्वास नहीं करेंगे। यदि उससे कोई निन्दनीय कार्य हो गया है तो लेखक को ऐसी सुविधा नहीं है कि ऐसा तर्क

दें कि हम वह कार्य भूल जाएँ। रंगमंच पर पात्र हमारे सम्मुख खड़े होते हैं, और वे जो हैं, वही हैं; वह नहीं, जैसा लेखक चाहता है कि हम उन्हें समझें।

पात्र के चित्रण के साधन सीमित होते हुए भी, कदाचित् इस सीमा के कारण ही नाटककार इस अनिवार्यता को ही शक्ति समझकर हमारे सम्मुख ऐसे पात्रों को लाता है जो अपने कार्यों और वचनों से ही उजागर होते हैं। हमारे निकट हैमलेट और ऑथेलो उतने ही सत्य हैं जितना डॉन क्विक्सोट; और बेकी शार्प तथा लेडी टीज़ल भी उतनी ही सजीव हैं। मोलियर अपनी प्रतिभा से एक पाखंडी व्यक्ति—तारत्युफ़—का चित्रण करने में समर्थ हुए हैं, तारत्युफ़ कभी अपनी पवित्रता का नक़ाब नहीं छोड़ता और हम उसका स्वर सुनने के पहले ही उसकी वास्तविकता को जान लेते हैं। वास्तव में, यदि हम साहित्य के उन पात्रों को देखें जो हमारे मस्तिष्क में हैं, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनमें से आधे नाटक के पात्र हैं। सॉफ़ॉक्लीज़ का नाटकीय पात्र इडिपस, और यूरिपिडीज़ की पात्री मीडिया हमारी स्मृति में उतने ही स्पष्ट हैं जितने होमर का अकिलीज़ और वर्जिल का दीदो। नाटकों में इन पात्रों के सृजन में चाहे महाकाव्यों की अपेक्षा अधिक कठिनाई पड़ी हो परन्तु इनका चित्रण उतना ही सजीव है।

नाटक का पात्र अपने कथनों और कार्यों द्वारा दर्शकों का परिचित बनता है। उसका अस्तित्व उसके कार्यों में ही है; वह पहले कथानक के लिए जीता है, और बाद में अपने लिए। अथवा हम इससे कुछ आगे जाकर यह भी कह सकते हैं कि नाटककार अपने पात्र के जीवन के उन अंशों पर कुछ भी ध्यान नहीं देता जो उस कथानक से सीधे सम्बन्धित न हों अथवा जो उस नाटक की कथा के अंग न हों। पात्र को नाटक में जैसा होना चाहिए वैसा होता है; परन्तु वह वैसा कैसे बना, नाटककार हमें यह नहीं बताता, या तो वह जानता नहीं है या उसे बताने की चिंता नहीं होती। नाटककार इस बात में तो गहरी रुचि रखता है कि उसके पात्र नाटक में क्या हैं? परन्तु वे पहले क्या रह चुके हैं, अथवा नाटक के बाहर क्या हो सकते हैं, यह प्रश्न वह नहीं पूछता।

यह बात मोलियर के विषय में विशेषकर सत्य है। आर्गोन के हँसी-खुशी-भरे घर में अपनी भयंकर छाया डालने के पहले तारत्युफ़ कौन था? उसके पहले वह कौन-से दुष्कर्म कर चुका था? कौन-सी दुर्घटनाएँ उसके जीवन में हो चुकी थीं? मोलियर यह कुछ नहीं बताते, शायद वे बता ही नहीं सकते थे। सम्भवतः वे यह कहते कि इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि तारत्युफ़ जो है वह है, वह वैसा है जैसा हम उसे देखते हैं; हमें उसे जानने के लिए केवल उसे देखने और उसे सुनने की आवश्यकता है। जिसने उस मानवद्वेषी को इस प्रकार अधीर बना दिया था, वह युवती विधवा सेलीमेन कौन थी? किस परिवार की थी? उसने कहाँ तक शिक्षा पाई थी? उसका पहला पति कौन था? उसकी मृत्यु कब हुई? मोलियर इन प्रश्नों

का उत्तर नहीं देते। सेलीमेन उस नाटक का एक सजीव पात्र है, उसी प्रकार जैसे तारत्युफ़; और उनके रचनाकार के लिए इतना ही पर्याप्त है। मोलियर के पात्र सम्पूर्ण और सशक्त रूप में उभरते हैं, नाटक में अपनी भूमिका निभाते हैं, तब पर्दा गिर जाता है, और हमारे लिए वही उनका अन्तिम परिचय है।

इसमें—जैसे कि और भी बहुत-सी बातों में—शेक्सपियर मोलियर के समान हैं। हम दुखित जैक्स को आर्डेन के जंगल में एक विदूषक से वाक्चातुरी दिखाते और नैतिकतापूर्ण बातें करते देखते हैं; वह बात करता है और हम तत्काल उससे परिचित हो जाते हैं, एक ऐसे व्यक्ति की भाँति जिससे हम जाने कितनी बार मिल चुके हों। परन्तु वह कौन है ? उसका पद क्या है ? वह कहाँ से आया है ? इतनी दूर ग्रीनवुड में कैसे आ गया ? शेक्सपियर इन सब प्रश्नों के विषय में हमें अपरिचित ही रखते हैं, सम्भवतः वे स्वयं भी अपरिचित थे। नाटक में निर्वासित ड्यूक और उसके साथियों के पास जैक्स की आवश्यकता थी और शेक्सपियर ने वहाँ उसे रख दिया; इसी विशेष प्रयोजन के लिए उसका तत्काल सृजन कर डाला। और इयागो, वह कौन है ? ऐसा अद्वितीय दुष्ट ऑथेलो का घनिष्ठ कैसे बना ? और वेनिस के अग्रणी लोगों में से उसके मित्र कैसे थे ? उसने कब कहाँ ईमिलिया को देखा और उससे विवाह किया ? उसकी पत्नी डेसडीमोना की दासी कैसे थी ? शेक्सपियर इन सब बातों के बारे में कुछ बताने को रुकते नहीं, उन्हें वैसा का वैसा स्वीकार कर लेते हैं; वे हैं जैसी हैं, और इयागो जो कुछ नाटक में है, वह है; इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता कि नाटक की कथा के पहले वह क्या था ?

उपन्यास लिखने के पहले तुर्गनेव अपने कथानक के हर पात्र के जीवन-चरित्र की रूपरेखा पूर्ण रूप से खींच लेता था और पहले से ही उनके पूर्व के जीवन, जन्म, उनकी शिक्षा और उनके आपसी सम्बन्धों के विषय में निश्चय कर देता था। इसमें सन्देह नहीं कि अन्य उपन्यासकारों के लिए भी इस प्रकार की युक्तियों का प्रयोग लाभदायक रहा है, परन्तु नाटककार के लिए ऐसा विशिष्टीकरण अनावश्यक होगा। पात्र उसके सम्मुख चलते और बोलते हुए जाते हैं; वह उन्हें सजीव रूप में अपने नाटक में रख देता है, और सदा-सर्वदा के लिए वे उसमें ही रहते हैं। नाटककार उनसे उस नाटक विशेष की भूमिका के पहले के अस्तित्व के विषय में कोई प्रश्न नहीं करता।

श्रीमती जेम्सन ने **शेक्सपियर की नायिकाओं का बचपन** नाम से एक सुन्दर और कल्पनापूर्ण पुस्तक लिखी थी। उसमें उन्होंने पोर्शिया, रोज़लिंड, बियेट्रिस और ऑफ़ीलिया इन चार नायिकाओं के बाल-जीवन के चित्र खींचने की चेष्टा की है। उन्होंने उन संकेतों को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करने में कुशलता दिखलाई जो उन्हें नाटकों में दिये गए प्रतीत हुए। उनकी कृति इस बात का प्रमाण है कि उस महान् नाटककार ने ऐसे पात्रों का सृजन किया है जिनके विषय में जितना लेखक ने बताया

है, हम उससे अधिक जानना चाहते हैं। परन्तु उसका श्रम कितना ही सुखद क्यों न हो, एक प्रकार से वह व्यर्थ था। पोर्शिया और रोज़लिंड, बियेट्रिस और ऑफ़ीलिया उन नाटकों में जीवित हैं जिनमें वे प्रस्तुत की गई हैं; वे उसी प्रकार और केवल उसी प्रयोजन के लिए जीती हैं। यदि शेक्सपियर को इसके विषय में ज्ञात हो जाता तो जितनी भी पुस्तकें उनके सम्बन्ध में लिखी गई हैं, उन सबमें श्रीमती जैक्सन की यही स्नेहपूर्ण श्रद्धांजलि उन को सबसे अधिक हास्याप्रद प्रतीत होती।

शेक्सपियर की ये बालिका नायिकाएँ और उनके दूसरे सब पात्र स्वयं स्पष्ट हैं। हम उन्हें प्रथम बार देखकर ही बिना किसी झिझक के स्वीकार कर लेते हैं। हम उनकी मानवीयता और सजीवता से परिचित हो जाते हैं, यद्यपि हमें उनके जीवन के एक अंश का क्षणिक चित्र ही देखने को मिलता है। यद्यपि हमारे सामने वे थोड़े समय को ही आते हैं फिर भी शेक्सपियर, मोलियर, और सॉफ़ॉक्लीज़ तथा अन्य मेधावी नाटककारों के लिए अपने-अपने ढंग से उतना ही समय पर्याप्त है। वे हमारे सामने रंगमंच पर जिन पात्रों को प्रस्तुत करते हैं, वे पूर्ण और समूचे दिखाई पड़ते हैं। हमें लगता है कि हम इन प्रमुख पात्रों से जितने परिचित हैं, उतने अपने परम आत्मीय मित्रों से भी न होंगे। उनके बारे में जितना आवश्यक है उतना हम जान लेते हैं यह बात इसी से स्पष्ट है कि हमें पता चल जाता है कि अवसर पड़ने पर वे किस प्रकार का व्यवहार करेंगे। हम परीक्षण के समय उनकी भावनाओं और उनके कार्यों के विषय में अनुमान लगा सकते हैं। हमें इसमें कोई सन्देह नहीं होता कि वे अपने चरित्र के अनुसार व्यवहार करेंगे।

यदि वे पात्र अतिलौकिक होते हैं, और हमारे भौतिक जीवन के किसी भी सम्भव अनुभव से परे होते हैं तब भी हमें ऐसा ही लगता है। उदाहरण के लिए, शेक्स-पियर प्रेतों, चुड़ैलों और परियों का चित्रण करने में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं; और कम से कम एक बार कैलिबन में तो वे ऐसे विचित्र, अप्रकृत पात्र का सृजन करते ही हैं जो केवल अर्ध-मानवीय है। परन्तु हमारे सम्मुख कभी इन अतिप्रकृत जीवों के औचित्य का प्रश्न नहीं उठता—इनमें से हर एक अपने अस्तित्व के नियमों का पूर्ण रूप से पालन करता है। वे भले ही प्रकृति से परे हों जैसा हम समझते हैं, परन्तु हमें अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होते। जैसा कि चार्ल्स लैंब ने कहा था जब शेक्सपियर अति-मानवों का चित्रण करते हैं तो मानो मानवता के निकटतम हो जाते हैं; उन्होंने प्रकृति के क्षेत्र से बाहर के पात्रों का सृजन किया है, परन्तु उन्हें प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत ही रखा है। कैलिबन और चुड़ैलें अपनी प्रकृति के नियमों की दृष्टि से उतने ही वास्तविक हैं जितने ऑथलो, हैमलेट और मैकबेथ।

2

प्रसिद्ध नाटककारों के मुख्य नाटकों के प्रमुख पात्र अत्यन्त सजीव होते हैं, और कथानक से अलग उनका अपना अस्तित्व होता है, उनमें से प्रत्येक पात्र केवल एक

चरित्र ही नहीं, वरन् अभिनीत होने के लिए सर्जित भूमिका भी है। कभी-कभी तो ये भूमिकाएँ किसी विशेष अभिनेता के लिए होती हैं, जैसे, बर्बेज, काकलें, कुमारी शामेंसले, कुमारी मोलियर आदि अभिनेता और अभिनेत्रियाँ। निम्न श्रेणी के लेखकों के नाटकों में केवल भूमिकाओं का सृजन ही होता है, और इन भूमिकाओं का व्यक्तित्व अभिनेताओं की अभिनय-क्षमता पर निर्भर होता है। उच्च कोटि के नाटककारों के नाटकों में ये भूमिकाएँ विशेष अभिनेताओं के अनुसार समंजित किये हुए वे चरित्र हैं जिनका जीवन उस विशेष अभिनेता ही नहीं नाटक से भी अलग अपना व्यक्तित्व रखता है। सम्भव है, नाटक के पहली बार खेले जाने के समय जिस कामदी या त्रासदी-अभिनेता ने उनका अभिनय किया हो उसके अनुसार वे भूमिकाएँ विस्तृत अथवा सीमित कर दी गई हों, परन्तु पात्रों के रूप में वे हमारे ऊपर ऐसा प्रभाव डालती हैं कि हम जब उनके विषय में विचार करते हैं तो रंगमंच का ध्यान आना आवश्यक नहीं है।

लेखक हमारे सम्मुख किसी भी चरित्र के कौन से विशेष पक्ष और गुण बतायेगा, यह जिस कृति का वह पात्र होता है उसकी स्थितियों और घटनाओं पर निर्भर करता है। यह बात अधिक स्पष्ट हो जाती है जब नाटककार एक ही पात्र को दो नाटकों में प्रस्तुत करता है, क्योंकि हम यह देखते हैं कि दोनों नाटकों में वही चरित्र एक-सा नहीं है। सॉफ़ॉक्लीज़ **ईडिपस और एन्टिगोने** दोनों नाटकों में क्रियॉन नामक पात्र को प्रस्तुत करते हैं, परन्तु दोनों नाटकों में उसके चरित्र में निश्चित अन्तर है। इस अन्तर का कारण यही नहीं है कि दोनों नाटकों की कथा में समय का बहुत व्यवधान है। पिछला क्रियॉन पहले वाले क्रियॉन से इस कारण भिन्न हैं कि दोनों नाटकों के कथानक भिन्न हैं, और वह दोनों नाटकों में एक-सा नहीं हो सकता था। शेक्सपियर ने **मेरी वाइव्ज़** नामक नाटक में जिस स्थूलकाय सामन्त को प्रेमी के रूप में प्रस्तुत किया, वह पहले के फ़ॉल्स्टाफ़ का अत्यन्त शीर्ण रूप था, जो प्रहसन के कथानक के कारण हमारे सम्मुख आया। इस प्रहसन के कार्यव्यापार और उसकी हास्यपूर्ण स्थितियों के मनमाने क्रम के कारण शेक्सपियर ने हमारे सम्मुख जिस फ़ॉल्स्टाफ़ को प्रस्तुत किया वह पहले के क्रॉनिकल नाटक के फ़ॉल्स्टाफ़ की शीर्ण प्रतिकृति था। मोलियर ने स्गनरेल का अभिनय छः से अधिक नाटकों में किया, परंतु किसी दो में वह एक-सा नहीं रहा।

अपनी बाह्य रूपरेखा में दोनों क्रियॉन, दोनों फ़ॉल्स्टाफ़ और छहों स्गनरेल के चरित्र एक-से ही हैं, परन्तु उनमें छोटी-छोटी बातों में अन्तर है—इतना कि कभी-कभी तो पहले वाली विशेषताओं का विरोधी रूप प्रकट होता है और यह दिखाना कठिन नहीं है कि ये विभिन्नताएँ बाद के नाटकों के कथानकों का परिणाम हैं। यदि नाटककार ने चाहा भी होता कि उसकी कल्पना के इन प्राणियों में अपनी सब मूल विशेषताएँ बनी रहें तब भी वह ऐसा कर नहीं सकता था, क्योंकि मूल कथानक और मूल पात्र इस प्रकार आपस में गुँथे और मिले रहते हैं कि जब पात्रों को पहले कथानक से निकाल कर दूसरे घटनाक्रम में रखा जाता है तो उन्हें अपने को उसके अनुसार ढालना

पड़ता है। जिन परिस्थितियों में वे काम करते हैं, उनके अनुकूल होने से वे अपने को रोक नहीं सकते। नाटककार रंगमंच पर हमारे सामने किसी भी पात्र का चित्रण उसके कार्य द्वारा ही कर सकता है, और कार्य-व्यापार द्वारा यह भी निश्चित होता है कि चरित्र का कितना अंश दिखलाया जा सकता है और उसके किन पक्षों पर ज़ोर देना होगा।

किसी भी महत्त्वपूर्ण नाटक में पात्र ही कथानक का निर्माण करते हैं, और कथा का स्वरूप भी पात्रों के व्यक्तित्व से ही निर्मित होता है। फिर भी पात्र उसी प्रकार के हो सकते हैं जैसा उन्हें कथानक बना दें। पात्र और कथानक का संयोग कोई आकस्मिक यांत्रिक मित्रता नहीं है, घनिष्ठ रसायनिक यौगिक के समान है। पात्र और कथानक समानान्तर नहीं रखे जाते, वे परस्पर एकीकृत होते हैं; उनका अस्तित्त्व एक-दूसरे के लिए है और एक-दूसरे के साथ है। कदाचित् यही कारण है—अथवा यह एक कारण है—जिससे नाटककार अपने पात्रों के व्यक्तित्व के नाटक की स्थितियों में अभिव्यक्त रूप के अतिरिक्त और किसी पक्ष की चिंता नहीं करता। उसे तभी तक इसकी गहरी चिंता रहती है कि वे क्या कहते हैं और क्या करते हैं, जब तक वे उसके नाटक के मंच पर रहते हैं। इसके अतिरिक्त वे पात्र क्या हो सकते हैं, अन्य अवसरों में उन्होंने क्या कहा और किया था, इसकी उसे बिलकुल चिंता नहीं रहती। नाटककार के लिए उसका महत्त्व अपने नाटक के रूपबंध में ही होता है।

नाटककार किसी भी पात्र के जीवन का एक छोटा अंश ही दिखा सकता है; और यदि हम उस अंश में से पूरे व्यक्तित्व का अनुमान लगाना चाहें, तो हमें मानव-प्रकृति के विषय में सूक्ष्म ज्ञान और कल्पना-शक्ति की आवश्यकता होगी। हम श्रीमती जेम्सन का अनुकरण करके अपना मनोरंजन कर सकते हैं, उससे और कोई लाभ नहीं होगा। हमें ऐसे प्रयत्नों के महत्त्व को बढ़ा-चढ़ा कर देखने के सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिए।

3

स्टीवेन्सन ने एक बार एक मित्र से कहा था कि उसे कथा-निर्माण की तीन ही पद्धतियाँ मालूम हैं। लेखक कुछ पात्रों को लेकर चल सकता है और उनके प्रदर्शन के लिए एक कथानक की रचना कर सकता है, या एक कथानक ले सकता है जिसमें पात्रों को समो सकता है, अथवा पात्रों तथा कथानक को एक विशेष वातावरण का अंग बना सकता है। नाटक में इस तीसरी पद्धति का प्रयोग असम्भव है क्योंकि दर्शकों के ध्यान को आकर्षित रखने के लिए केवल वातावरण पर्याप्त नहीं है। अन्य दोनों पद्धतियाँ नाटककार को सुलभ हैं, और एक या दूसरी पद्धति के अनुसार रचे हुए नाटकों का उदाहरण देना कोई कठिन नहीं है। उदाहरण के लिए **बूर्जुआ जांतियाम** निश्चय ही ऐसा नाटक है जिसकी संकल्पना लेखक के मन में जूर्दे के चरित्र से आरम्भ हुई थी। इस केन्द्रीय चरित्र को स्पष्टता से ध्यान में रखकर मोलियर ने नाटक में ऐसी स्थितियाँ

तथा अन्य बंधनों के होते हुए भी त्रासदियाँ लिखीं, लेकिन त्रासदियों पर बन्धन का कोई प्रभाव नहीं है। **अगामेमनान** और **ईडिपस** पूर्णतया मुक्तभाव से लिखी हुई प्रतीत होती हैं, और उनके कथानक उनके पात्रों के आन्तरिक सम्बन्ध के संगत परिणाम प्रतीत होते हैं।

शेक्सपियर भी इसी प्रशंसा के अधिकारी हैं। यदि कोई ऐसा नाटक है, जिसमें पात्र कथानक को संचालित करता है, जिसमें कार्य-व्यापार केंद्रीय पात्र पर निर्भर है, तो ऐसे नाटकों में पहला **हैमलेट** है। इस त्रासदी में सभी क्रमिक घटनाएँ नायक की विशेषताओं का परिणाम हैं ? यदि हम और अच्छी तरह न जानते तो यह समझते कि शेक्शपियर ने पहले हैमलट की अवधारणा की है, और उसके पश्चात् उस चरित्र की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त कथा गढ़ ली है। परन्तु हम अच्छी तरह जानते हैं कि यह ठीक नहीं है; हैमलेट के कथानक की रचना पहले के एक नाटककार—संभवतः किड ने की थी, जिसने उस कथा को एक अतिभावुकतापूर्ण नाटक के—एक प्रबल रक्त-त्रासदी के—योग्य समझा जिसमें अतिनाटकीयता भरी थी और जो उस उथल-पुथल से भरे समय के दर्शक वर्ग को अत्यन्त रुचिकर थी। इस रक्त-त्रासदी की कथा को शेक्सपियर ने अपनाया और उसके ग्राम्य तत्वों को हटाकर तथा हैमलेट के चरित्र को उच्चतम स्तर तक उठाकर इसे अपने साँचे में ढाल लिया। स्पष्ट है कि उन्होंने यह सब एकबारगी ही नहीं कर लिया था। कथा-विषय को उपयुक्त जानकर वे इस पर बार-बार लौटे। वह हैमलेट का पुनरीक्षण करते रहे और अपने को इसमें पूरी तरह लगा दिया, यहाँ तक कि वह इस प्रकार उच्चतम स्तर तक उठ गया कि शेक्सपियर की प्रतिभा की सबसे समृद्ध अभिव्यक्ति बन गया। जिसे उन्होंने एक ग्राम्य अतिनाटक के रूप में पाया था उसे बौद्धिक त्रासदी के रूप में ढाल दिया, एक ऐसे नाटक के रूप में जिसमें उन्होंने सब नाटकों की अपेक्षा अपने को अधिक अभिव्यक्त किया है। उन्होंने एक दूसरे व्यक्ति की आविष्कृत कथा को लेकर अपनी महान् कल्पनाशक्ति से अपूर्व बना दिया।

जो एस्किलस और सॉफ़ॉक्लीज़ ने **अगामेमनान** और **ईडिपस** के साथ किया था और शेक्सपियर ने **हैमलेट** के साथ, वही मोलियर ने **डान जुआँ** के सम्बन्ध में किया। इस महान् नाटक की रूपरेखा एक स्पेनी नाटक से बहुत भिन्न नहीं है, जिससे इसका कथानक परोक्ष रूप से ग्रहण किया गया है; परन्तु इसका अर्थ, सजीवता और इसका वास्तविक मूल्य मोलियर की ही देन है, यह तथ्य वैसा ही निर्विवाद है, जैसे **हैमलेट** के कथानक का अपनी स्थायी प्रभावशालिता के लिए शेक्सपियर का ऋणी होना। अब यह स्वीकृत है कि नाटककार चाहे कथानक से प्रारम्भ करे या पात्र से, उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। मुख्य बात तो यह है कि वह समाप्त कहाँ पर करता है, नाटक में पात्र कथानक द्वारा संचालित जान पड़ते हैं अथवा कथानक पात्रों के कारण गौण हो जाता है। नाटककार का मूल्यांकन सम्पूर्ण नाटक के आधार पर होना चाहिए, उसके द्वारा चुनी गई पद्धति के आधार पर नहीं।

महान् नाटकों के प्रमुख पात्र सदैव अभिनय की दृष्टि से अच्छी भूमिकाएँ होते हैं, जिनकी ओर महत्त्वाकांक्षी अभिनेता आकर्षित होते हैं। यद्यपि वे लेखक के समकालीन किसी अभिनेता के लिए रचे जाते हैं, परन्तु अभिनेता के व्यक्तित्व की सीमाओं का अतिक्रमण कर जाते हैं। वे केवल एकपक्षीय आकृतियाँ ही नहीं होते, समूची आकृतियाँ होते हैं जिन्हें प्रत्येक ओर से देखा जा सकता है; इसी से बाद के अभिनेताओं द्वारा विभिन्न प्रकार से उनका निरूपण किया जा सकता है। वास्तव में लेखक को यह देखकर आश्चर्य ही होगा कि जिस भूमिका को उसने एक विशेष प्रकार के अभिनेताओं के उपयुक्त समझा था, उसका अभिनय नितान्त भिन्न स्वभाव के अभिनेता द्वारा सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण **स्कूल फ़ॉर स्कैंडल** के प्रदर्शनों का इतिहास है। शेरिडन ने इस कामदी की भूमिकाओं को गैरिक से प्राप्त कम्पनी के अभिनेताओं के अनुसार रखा था, विशेषकर लेडी टीज़ल की भूमिका तो अभिनेत्री अबिंगटन के लिए ही निर्मित की गई थी। नाटक में टीज़ल एक ग्रामीण लड़की है, जो नगर में आकर फ़ैशनपरस्त बन गई है। श्रीमती अबिंगटन उच्च-कामदी की उच्चस्तरीय स्त्रियों को अद्वितीय ढँग से प्रस्तुत करतीं थीं और उन्होंने लेडी टीज़ल की भूमिका इसी रूप में प्रस्तुत की। परन्तु जब उन्होंने नाटक से अवकाश ग्रहण किया तो लेडी टीज़ल का अभिनय श्रीमती जॉर्डन करने लगीं। श्रीमती अबिंगटन ने लेडी टीज़ल को केवल फ़ैशनपरस्त स्त्री के रूप में देखा था, श्रीमती जॉर्डन ने उसमें उच्च वर्ग की स्त्री के व्यवहारों और अदाओं की नक़ल करने वाली एक ग्रामीण लड़की देखी। चरित्र का यह दूसरा निरूपण सम्भवत: शेरिडन को अभीष्ट न था, परन्तु कदाचित् उनके न जानते हुए भी उस पात्र में अधिक विषमता आ गई थी। अपने ढँग से श्रीमती जॉर्डन का प्रदर्शन भी उतना ही प्रभावशाली रहा जैसा श्रीमती अबिंगटन का होता था। जो पात्र केवल एक ही कोण से देखा जा सकता है, वह छाया नाटक की भाँति एकपक्षीय होता है, उसमें वास्तविकता का ठोसपन नहीं होता।

जो बात कामदी के पात्रों के लिए सही है वही त्रासदी के पात्रों के लिए भी सही उतरती है। उदाहरण के लिए इयागो का प्रदर्शन एडविन बूथ ने दुष्टता के अवतार के रूप में किया जो अपने दुष्ट उद्देश्यों को अथक इच्छाशक्ति से पूरा करने में लगा रहता है। परन्तु दूसरे अभिनेताओं ने ईमानदार इयागो के चरित्र का ग्राम्य, आवेशपूर्ण और सैनिक पक्ष प्रस्तुत करना पसन्द किया है, इस चित्रण में ऑथेलो का उसके प्रति इतना विश्वास करना अधिक सम्भव जान पड़ता है। लूइस ने, जिसने दोनों प्रदर्शन देखे थे, सालबीनी द्वारा प्रदर्शित **ऑथेलो** और एडमंडकीन द्वारा प्रस्तुत **ऑथेलो** के असाधारण अंतर के बारे में चर्चा की है। एडमंडकीन आवेशपूर्ण, क्रोधी और विस्फोटी प्रकृति का था और इतालवी अभिनेता सालवीनी भव्य, विशाल और अतिप्रभावशाली था। इसी प्रकार का अन्तर फ़ैश्टर द्वारा प्रस्तुत **हैमलेट** और बूथ तथा इर्विंग द्वारा प्रस्तुत **हैमलेट**

में था। फ़ेश्टर उस नाटक को केवल अत्यधिक प्रभावशाली घटनाओं के क्रम के रूप में देखता था और उसे केवल एक अतिभावुकतापूर्ण नाटक के रूप में निरूपित करता था। बूथ और इर्विंग घटनाओं को नाटक के काव्यमय तत्व से गौण स्थान देते थे; वे यथासंभव कथानक की तीव्रता को कम करते थे और अपने प्रदर्शन को एक उदास सौन्दर्य से भर देते थे।

ऐज़ यू लाइक इट के जेक्स को देखकर विचार किया जाय कि उसका अभिनय किस प्रकार होना चाहिए। क्या वह संसार के विरुद्ध दोषारोपण करने वाला कटु निराशावादी और समूची मानवता के प्रति विद्वेष प्रकट करता हुआ मानव-विरोधी है, अथवा केवल एक परिहासप्रिय व्यक्ति है, जो अपनी भावनाओं की अतिरंजना करता है और बढ़ा-चढ़ाकर कहता रहता है और उसे इस बात का निश्चय रहता है कि उसके साथी उसकी बातों को गम्भीरता से नहीं लेंगे। उसे तो जैसे इस बात का भी विश्वास है कि बातें जितनी ही बढ़ा-चढ़ाकर कही जाएँगी उतना ही वे लोग उन पर हँसेंगे। शेक्सपियर ने जो शब्द जैक्स से कहलाए हैं उनसे इन दोनों रूपों से उसे कुछ भी समझा जा सकता है; और इन शब्दों के द्वारा ही वह पात्र अपने स्वरूप का परिचय देता है। हमें उसके विषय में कोई भी अन्य सूचना नहीं है, जो कुछ वह कहता है उसी के आधार पर उसके चरित्र के विषय में निर्णय करना है, और जो कुछ वह कहता है उसके आधार पर तो उसे इन दोनों, परस्पर इतने भिन्न रूपों से, समझा जा सकता है।

हम नाटक में पात्र को उसकी उक्तियों अथवा उसके कार्यों से ही समझ सकते हैं। जैक्स तो कुछ करता ही नहीं; कामदी में उसका कार्य केवल बात करने का है और ऐज़ यू लाइक इट के दूसरे पात्रों की उक्तियों से उसके विचित्र चरित्र के विषय में कुछ पता नहीं चलता। सम्भवतः शेक्सपियर इस प्रकार के परस्पर विरोधी निरूपण नहीं चाहते थे; सम्भवतः वे यही चाहते होंगे कि जैक्स वैसा ही समझा जाय जैसा वह वास्तव में है। परन्तु उन्होंने इस पात्र को इस प्रकार प्रक्षेपित किया है कि दूसरा निरूपण—चाहे जिस निरूपण को दूसरा निरूपण माना जाय—भी अब उतना ही स्वीकार्य हो गया है, जितना उनका इच्छित निरूपण। जैक्स, इयागो, ऑथेलो तथा हैमलेट के चरित्रों में शेक्सपियर ने मनुष्य की सहज जटिलता का समावेश किया, और उनके व्यवहार तथा बातचीत की विशेषताओं के सम्बन्ध में हम उसी प्रकार बात कर सकते हैं जैसे अपने किसी आत्मीय के बारे में। यह चरित्र सजीव हैं; उनमें असीम विविधता है जो विभिन्न दर्शकों की दृष्टि में विभिन्न रूप ग्रहण करती है।

ऐसा भी हो सकता है कि पात्र के चित्रण में यह विविधता और जटिलता नाटककार का निश्चित उद्देश्य न रहा हो; परन्तु यदि वह ऐसा कर सका है—चाहे करना न चाहा हो, और चाहे उसे ज्ञात भी न हो कि उसने ऐसा किया है— तो उसे इसके लिए प्रशंसा मिलनी ही चाहिए। कदाचित् उसका विचार यह हो कि उसने

अपनी कल्पना की सृष्टि—उस पात्र को—कथानक में ही सीमित रखा है, परन्तु उसकी कल्पना ने उस प्राणी को विशालतर जीवन और अधिक समृद्ध व्यक्तित्व प्रदान कर दिया है। यदि उसकी कल्पना-शक्ति प्रबल और मानव स्वभाव के लिए उसकी अंतर्दृष्टि पैनी होगी तो उससे यह आश्चर्य अनजाने ही घटित हो जाएगा। जो कलाकार अपनी शक्तिभर अपनी ओर से सर्वोत्तम प्रस्तुत करता है, वह अधिकतर अपने प्रयत्न की एकाग्रता के कारण मानो अपनी प्रकृत क्षमताओं का भी अतिक्रमण कर जाता है।

4

यह शक्ति केवल महान् नाटककारों में ही होती है, साधारण नाटक लिखने वालों में नहीं। घटिया लेखक में, चाहे वह कितना भी कुशल और चतुर क्यों न हो, इतनी समृद्ध कल्पना-शक्ति नहीं होती, और उसके नाटकों के पात्र जैसा वह बनाता है उससे अधिक कुछ नहीं हो पाते। वास्तव में घटिया नाटककार स्थायी पात्रों का सृजन नहीं करता ; वह अधिक से अधिक यह कर सकता है कि कुछ विशिष्ट अभिनेताओं के लिए उपयुक्त भूमिकाएँ जुटा दे ; ये भूमिकाएँ उन अभिनेताओं के कारण ही सजीव प्रतीत होती हैं। रचनात्मक कल्पना की कमी होने के कारण घटिया नाटक लेखक पात्रों से अधिक कथानक का आश्रय लेता है। कार्य-व्यापार का संचालन, जो सच्चे नाटककारों के नाटकों में गौण महत्त्व की वस्तु समझा जाता है, इन साधारण नाटक लेखकों के नाटकों में प्रमुख महत्त्व प्राप्त कर लेता है। उदाहरण के लिए काटज़ेबू और स्क्रीब में घटनाओं को गढ़ने की प्रतिभा बहुत थी, परन्तु उसके किसी भी नाटक का कोई भी चरित्र स्मरणीय नहीं बन सका। उसके नाटकों को देखने के बाद हमें यह तो याद आ सकता है कि विभिन्न व्यक्तियों ने उसमें क्या किया, परन्तु वे विभिन्न व्यक्ति कैसे थे, इसका कोई प्रभाव मन पर नहीं पड़ता।

काटज़ेबू और स्क्रीब के पात्रों का अस्तित्व केवल अपने-अपने नाटकों के कथानकों के लिए ही है, उन पात्रों की सृष्टि कथानक के लिए ही की गई थी, वे कार्य-व्यापार को आगे बढ़ाने के लिए काफी हैं, उस विशेष कथा के बाहर उनकी कोई वास्तविकता नहीं है। यही कारण है कि उनके नाटक अब नहीं पढ़े जाते। रंगमंच सम्बन्धी उनकी आश्चर्यजनक कुशलता उनके बीसों नाटकों में से किसी को भी स्थायी कीर्ति प्रदान नहीं कर सकी।

नाटक-रचना के अत्यन्त समृद्ध काल में भी सच्चे नाटककार बहुत थोड़े होते हैं; और रंगमंच के लिए नाटक जुटाने वाले अधिकतर घटिया नाटक-लेखक होते हैं। ये घटिया लेखक जनता को प्रसन्न करने के लिए कथानक का ही सहारा लेते हैं ; उनकी कथाएँ रोचक होती हैं और उनके पात्र पिटे-पिटाये चरित्रहीन होते हैं, जिन्हें जनता पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनाती चलती है। एक तरुण नायक होता है—बहुत तरुण और बड़ा वीर, निर्दोष और आत्मत्यागपूर्ण। अत्यन्त सुन्दरी एक नायिका होती है, उच्च विचारों और आत्मत्याग की भावना से पूर्ण। मुस्कराते चेहरे वाला एक खलनायक होता है जो

अपने नीच उद्देश्यों को पूरा करनें के लिए सब कुछ करने को तैयार रहता है और नायिका के अतिरिक्त सबसे घृणा करता है। एक झगड़ालू सास होती है, और उस अभागे व्यक्ति का जिसने दुर्भाग्य से उसकी पुत्री से विवाह कर लिया है, उपहास किया करती है। मूर्ख नौकर होता है, जो अपने स्वामी की आज्ञाओं को समझने में निरंतर भूलें करता रहता है। वह कठोर हृदय पिता होता है, जो अपने पुत्र या कन्या के प्रेम के स्वप्नों पर ध्यान दिये बिना अपना तय किया हुआ विवाह करने पर विवश करता है।

लोकप्रिय नाटकों में आने वाले ये कतिपय परम्परागत पात्र हैं। प्रत्येक युग के नाटकों में ये पात्र देखे जा सकते हैं। लैटिन कामदी ने यूनानी नाटक से इस प्रकार के बहुत से, लगभग एक दर्जन, निश्चित पात्र लिए जो प्लॉटस और टेरेंस के नाटकों में निरंतर आते रहे। उसमें था एक लोभी परमुखापेक्षी व्यक्ति जो अपने संरक्षक की नीच खुशामद से अपनी रोटी कमाता था, डींग मारने वाला कायर जो सदैव अपने कारनामों की शान दिखाया करता था और समय पड़ने पर लड़ाई-झगड़े से बचता था, एक कूटनीतिज्ञ गुलाम, जो अपने बुड्ढे स्वामी की जेब से तरुण स्वामी के लिए धन निकालने के कुशल तरीके ढूंढ लेता था, जो छोटे-मोटे काम करने, जैसे—प्रेम-पत्र ले जाने और ले आने में कभी नहीं थकता था।

यूनानी और लैटिन नाटकों के ये परंपरागत पात्र इटली के मुखौटा कामदी नाटकों में, जो नाटक के लम्बे इतिहास में उसके विकास का अत्यन्त रोचक स्वरूप हैं, फिर देखने में आते हैं। यह केवल इतालवियों में ही सम्भव था, क्योंकि वे कुशल अभिनेता होते हैं और उनमें अविष्कारी शक्ति भी बहुत होती है। यात्रादलों में लगभग एक दर्जन अभिनेता होते थे, उनमें से प्रत्येक निरंतर एक ही पात्र का अभिनय करता था। उनमें एक होता तरुण प्रेमी लीलियो, जो चाहे जिस परिस्थिति में हो, उसका नाम और स्वभाव वही रहता था। दूसरा पांतलान हो सकता था, एक वृद्ध व्यापारी जो वेनिस की बोली बोलता था। तीसरा बोलोन की बोली बोलने वाला डॉक्टर होता। और चौथा दुष्ट घरेलू नौकर वुलचिनेला—जो तरह-तरह के छल-कपट में प्रवीण होता था। पाँचवाँ होता था कप्तान, एक सैनिक जो सदैव अपनी वीरता की डींग मारता रहता। स्त्रियों में से एक हो सकती थी लिओनोरा—तरुण और सुन्दरी नायिका, दूसरी इसाबेला उसी के समान सुन्दरी उसकी प्रतिद्वन्दी। तीसरी फ्रांचेस्कीना, वह चालाक नौकरानी जो नौकर की भाँति छलकपट में कुशल होती थी और उसके साथ उसका प्रेम दिखाया जाता था। यदि कंपनी में वृद्ध स्त्रियों का अभिनय करने वाला कोई होता तो एक पुरुष अधिक अवस्था वाली स्त्रियों के सबसे कम आकर्षक गुणों का प्रदर्शन करता। इसमें साधारण पात्रों का अभिनय करने के लिए तीन-चार और अभिनेता जोड़ दिए जायँ तो कंपनी पूरी हो गई, जो किसी भी कथानक का अभिनय बिना लिखित नाटक के, कभी-कभी तो बिना रिहर्सल के भी, करने में समर्थ होती थी।

यदि मैनेजर, जो कथानकों की रचना करने के साथ ही प्रमुख अभिनेता भी होता था, वह इतावली कथा पढ़ता जिसको शेक्सपियर ने **रोमियो और जूलियट** का आधार बनाया था, तो वह इस कथा को इस प्रकार ढाल लेता कि उसमें से दुःखपूर्ण अंत निकल जाता, उसके रोमांसपूर्ण पक्षों पर ज़ोर दिया जाता, और अभिनेताओं के हास-अभिनय के लिए अधिक से अधिक स्थितियाँ गढ़ने का अवसर लिया जाता। पांतलान का डॉक्टर से झगड़ा हो जाता, लीलियो पांतलान का पुत्र होता, लिओनोरा डॉक्टर की पुत्री होती। वृद्ध स्त्रियों का अभिनय करने वाला व्यक्ति लिओनोरा की नर्स का अभिनय करता, कैप्टेन लिओनोरा का भाई बनता जिसे लीलियो एक द्वन्द्व युद्ध में मार डालता। फ्रांचेस्कीना लिओनोरा की नौकरानी होती और पुलचिनेला लीलियो का नौकर बनता। मैनेजर लेखक सब लोगों को एक साथ बुलाता और उनका पारस्परिक सम्बन्ध बताता। उसके पश्चात् वह अंकों में दृश्यों के क्रम का संकेत देता, और यह नाट्य-कथा लिख डाली जाती और नाटक डॉक्टर और पांतलीन के बीच तेज़ बहस के साथ प्रारम्भ हो जाता। परन्तु यह काम दोनों ही अभिनेताओं के लिए कठिन न था, क्योंकि पहले के अनेक नाटकों में वे लड़ने का काम कर चुके थे। इसके कुछ देर बाद लीलिओ और लिओनोरा के बीच एक लम्बा प्रेम-दृश्य आ जाता। इसमें भी कोई नवी-नता न होती, क्योंकि उसने जबसे कम्पनी में काम करना आरम्भ किया होता अनेक नाटकों में लीलिओ ने इसी प्रकार लिओनोरा से प्रेमालाप किया था। लीलिओ को प्रेम की दर्जनों गम्भीर घोषणाएँ याद थीं, और लिओनोरा उन घोषणाओं को दर्जनों भिन्न तरीकों से स्वीकार करना जानती थीं।

इस प्रकार रोमियो और जूलियट की प्रेम-कथा इन निश्चित पात्रों के द्वारा कही जा सकती थी, और इनमें से हर एक अपना नाम और अपना व्यक्तित्व बनाये रखता। इसी ढँग से इसी प्रकार की इतालवी कंपनी द्वारा कोई भी दूसरी सुखान्त या दुखान्त कथा कही जा सकती थी। इनके अभिनेताओं को एक-दूसरे के साथ अभिनय करने का अभ्यास था, और उन्हें साथ मिलकर काम करने में विश्वास था। स्थिर और अतिशयोक्तिपूर्ण चरित्रों की जैसी नक़ल ये अभिनेतागण प्रस्तुत करते थे, वह शतरंज के मोहरों के समान प्रतीत होती, जैसे इन मोहरों की चालें नितान्त सीमित और निश्चित होती हैं; परन्तु उन्हें दूसरे मोहरों के साथ भिन्न प्रकार के और अनेक सम्बन्धों में बाँधकर चलाया जा सकता है।

यह तथ्य कि इतालवी अभिनेता इस प्रकार के पारम्परिक कथानकों से, जिनमें चरित्र को कथा से गौण स्थान दिया जाता है, पीढ़ी-दर-पीढ़ी जनता को रिझा सके, इस बात का प्रमाण है कि नाटक में कार्य-व्यापार का प्रमुख स्थान है। परन्तु ये लोग जिन नाटकों की रचना तत्काल कर लिया करते थे, उनका जीवन क्षणिक था। चरित्र-की गहराई और सच्चाई के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु नाटक को वह स्थायी गुण

नहीं प्रदान कर सकती जिससे वह रचना सम्बन्धी व्यवहारों के परिवर्तनों के बाद भी स्वीकृत होता रहे। शेक्सपियर का **रोमियो और जूलियट** आज भी जीवित है— उतना ही जीवन्त, जितना तब था जब पहले खेला गया था क्योंकि इसके नायक-नायिका उत्साही तरुणों के निर्द्वन्द्व और सुदृढ़ प्रेम के शाश्वत प्रतीक हैं।

नवाँ अध्याय

संरचना-पद्धति

1

नाटक का शिल्प उपन्यास के शिल्प से कठिन है, क्योंकि उपन्यासकार को केवल अपने पाठकों का ध्यान रखना होता है, और नाटककार को अभिनेताओं, रंग-शाला और दर्शक-वर्ग—तीनों का । जब हम नाटक—रचियता की रचना-शक्ति की तुलना उपन्यास-लेखक से करते हैं तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उपन्यास उस व्यक्ति के द्वारा भी रचा जा सकता है जो शिल्प-कुशल नहीं है, परन्तु नाटक की रचना तो ऐसे ही साहित्य-शिल्पी द्वारा सम्भव है जो अपना शिल्प ठीक से सीख चुका है और जिसे अपने उपकरणों पर पूरा अधिकार है। अंग्रेज़ी भाषा के बहुत-से उपन्यास, जिनमें डिकेंस के उपन्यास भी सम्मिलित हैं, रेंगते हुए चलते हैं। कथा का विस्तार इधर-उधर हो जाता है, और हम भली भाँति यह अनुमान लगा सकते हैं कि अपने लेखन-क्रम में लेखक ने एक से अधिक बार अपने इरादे बदल दिये हैं। स्काट ने वुडस्टाक लिखना बिना यह विचारे प्रारम्भ कर दिया था कि उसका अन्त कैसे करेंगे, और उन्होंने अपनी संस्मरण-पुस्तिका में लिखा है कि पहला खंड समाप्त करने के पश्चात् उन्हें दूसरे खंड के लिए सामग्री ढूँढ़ना कठिन हो रहा था।

नाटककार के लिए इतनी सरलता नहीं होती। उसे एक सशक्त विषय की आवश्यकता होती है, क्योंकि यदि कथा ही रोचक न हो तो निरूपण-कौशल और घटनाओं की विविधता से कुछ न होगा। नाटककार कृत्रिम अलंकरणों पर निर्भर नहीं रह सकता, उसको अपनी रचना को स्वतः सुन्दर और आकर्षक बनाना होगा; जैसा कि वाल्टेयर ने कहा था कि सफलता बहुत कुछ उसके विषय पर निर्भर है। अरस्तू का कथन है कि विषय-वस्तु में कुछ विशालता होनी चाहिए अर्थात् उसे क्षुद्र और महत्त्वहीन नहीं होना चाहिए। उसमें निश्चित प्रारम्भ, मध्य और अन्त होना चाहिए। नाटक की कथा उपकथानकों में भटक नहीं सकती।

नाटककार को दृढ़ता से और निश्चिय से दर्शकों के सम्मुख मुख्य संघर्ष के आवश्यक दृश्यों को रखते हुए आगे बढ़ना होता है। बड़े ड्यूमा ने एक बार कहा था कि रंगमंच पर सफलता प्राप्त करने का रहस्य है—पहले अंक को स्पष्ट, अंतिम अंक को छोटा और सभी अंकों को रोचक बनाना। यह कोई सरल काम नहीं है;

यह बड़ी सावधानी और दूरदर्शिता से ही सम्भव है। नाटककार के लिए कुछ अनिवार्य दायित्वों को स्वीकार करना आवश्यक है और जितनी अच्छी तरह हो सके उन्हें निभाना ही होगा, क्योंकि उन्हें निभाने पर ही उसकी सफलता या असफलता निर्भर है।

बहुत वर्ष पहले स्वयं नाटक की रचना करने से पूर्व हेनरी जेम्स ने इस सम्बन्ध में कहा था :

घटिया नाटक और श्रेष्ठ नाटक के बीच सफलता के मानों में और किसी भी साहित्यिक कृति की अपेक्षा अधिक अन्तर होता है। विभिन्न पात्रों के कथनों के प्रश्नों के क्रम, अथवा अंकों और दृश्यों में बटी हुई संवादमाला से ही नाटक नहीं बन जाता, चाहे संवादों में कितनी ही वाक्चातुरी हो। सामान्यत: वास्तव में उत्कृष्ट नाटक के सम्बन्ध में यह बात अच्छी होती है कि उसके लिए किसी भी अन्य साहित्यिक कृति की अपेक्षा अधिक कुशल संरचना की आवश्यकता होती है। उसे सुबद्ध रूप देने और सँवारने की आवश्यकता होती है, और इस प्रक्रिया में कलाकार की दुर्लभ क्षमताओं का प्रयोग होता है। कथा को संयोजित और व्यवस्थित करना है। कुछ बातें जोड़नी हैं, कुछ छोड़नी हैं; बहुत-ही सावधानी से जुड़ाई करने वाले का काम करना है; और अन्त में अपने सारे उपकरणों को ढँक कर अपने रचित ढाँचे पर चिकना और चमकता हुआ मुलम्मा चढ़ाना है। पाँच अंकों का नाटक—गंभीर अथवा हास्यपूर्ण, काव्यात्मक अथवा गद्यात्मक—निश्चित आकार और अनम्य वस्तु के बने बक्से की भाँति है, जिसमें बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुओं को बन्द करके रखना है। रचना-निपुणता की यह बड़ी भारी समस्या है और बड़ी ही रोचक समस्या। वे बहुमूल्य वस्तुएँ बक्से के लिए अधिक जान पड़ती हैं; परन्तु कलाकार को यह विश्वास है कि धीरज और कुशलता से काम लेने पर प्रत्येक के लिए स्थान बन जाएगा और किसी को भी कुचलना, दबाना और क्षति पहुँचाना नहीं पड़ेगा। घटिया नाटककार या तो बक्स के किनारे तोड़ देता है या उन वस्तुओं को उलट-पुलट डालता है। सच्चा नाटककार घुटनों के बल बैठकर अपनी वस्तुओं को ठीक से रखता जाता है, भले ही झुँझला उठे, परन्तु धीरज नहीं छोड़ता और अन्त में बक्स को बिलकुल ठीक-ठीक सजाकर विजयी होकर उठता है। बक्स बिलकुल ठीक से बन्द हो जाता है, ताला भी लग जाता है, और एक से दूसरी वस्तु के बीच में चाकू घँसाने का भी स्थान नहीं रहता। कुछ गंभीर कठिन नियमों के अधीन काम करना सशक्त मनुष्य की सफलता का उच्चतम आदर्श होता है।

नाटककार को एक विषय चुनना पड़ता है और उस विषय को रंगमंच के लिए उपयुक्त कथा में विकसित करना पड़ता है : उसे इस कथा में गति लानी पड़ती है, जिससे एक के बाद एक दृश्य सहजभाव से आता जाय। कथा में बहुत-से चरित्रों का समावेश करना पड़ता है, जो अपने आप में रोचक हों और परस्पर अत्यन्त भिन्न।

इन चरित्रों को उपयुक्त परिस्थितियों में रखना पड़ता है, जिससे कि वे एक-दूसरे के सम्पर्क में स्वाभाविक रूप से आ सकें। उसे एक समय में एक काम करना होता है और सभी कुछ बारी-बारी करना होता है। उसको सदा यह याद रखना पड़ता है कि जिन दर्शकों के आनन्द का उपक्रम वह करता है, वे एक समय में एक ही कार्य-व्यापार को देख और सुन सकते हैं।

कथानक कितना भी जटिल क्यों न हो, नाटककार को अपने दर्शकों के लिए कथा को ऐसा बनाना होता है कि वे आसानी से उसे समझ सकें। रंगमंच के किसी भी व्यापार के लिए दर्शक के मन में कोई उलझाव या सन्देह नहीं रहना चाहिए। पहले अंक को तो स्पष्ट होना ही चाहिए; सभी अंकों को स्पष्ट होना चाहिए नहीं तो वे रोचक न होंगे। यदि दर्शकों के मन में एक पल को भी कोई उलझाव आ जाय और वे एक-दूसरे से पूछें कि यह सब क्या हो रहा है, तो इसका मतलब यही है कि नाटककार ने अपना कर्त्तव्य नहीं निभाया। ड्यूमा का यह आग्रह ठीक है कि पहले अंक का नितान्त स्पष्ट होना बहुत आवश्यक है, क्योंकि यदि ऐसा न हुआ हो तो दर्शकों का ध्यान बट जाएगा और उन्हें आगे जो होगा वह समझ में नहीं आएगा। नाटक और उपन्यास के बीच दो प्रमुख भेद प्रदर्शन के कारण उत्पन्न होते हैं: एक तो रंगशाला में प्रत्येक मिनट गिना हुआ रहता है, नाटककार यदि समय नष्ट करेगा तो दर्शकों के ऊबने और घबड़ा जाने का खतरा रहेगा; दूसरे यह बहुत आवश्यक है कि दर्शक कथा का सूत्र पकड़ लें, क्योंकि उन्हें यह सुविधा नहीं होती कि पन्ने पलट कर पहले अध्याय को देखकर उन संकेतों को पुनः ग्रहण कर सकें जो अनजाने छूट गए हों।

2

साहित्य की प्रत्येक कृति के लिए आरम्भ, मध्य और अन्त अनिवार्य हैं। यहीं पर कला जीवन से भिन्न है, जो केवल मध्य होता है; क्योंकि उसका अंत कदाचित् कोई देख नहीं सकता और उसका प्रारम्भ काल की गहराइयों में छिप चुका है। कलाकार को निश्चय करना होता है कि निरंतरता के इस अबाध क्रम में से कौन-सा और कितना अंश वह प्रस्तुत करना चाहता है; उसे कहीं न कहीं से प्रारम्भ करना है और फिर कहीं पर समाप्त भी करना है। प्राचीन महाकाव्यकार और आधुनिक काल के उपन्यासकार को नाटककार की भाँति ही उसका ध्यान रहता है; परन्तु कहानी-कला नाटक की कला से कहीं अधिक स्वतन्त्र है, वह अधिक नम्य है, और उसमें रूप-विधान का दृढ़ नियन्त्रण नहीं है।

नाटककार को इतना सीमित समय मिलता है कि वह उपयुक्त समझने पर भी उपन्यासकार के समान अवकाशपूर्ण ढँग नहीं अपना सकता। कहानी में लेखक जहाँ से चाहे प्रारम्भ कर सकता है; प्रारम्भ के पृष्ठों में नायक के वंशानुक्रम का वर्णन कर सकता है, और ऐसे तथ्य भी बता सकता है जो इतने आवश्यक न हों, अथवा जितना

चाहे इधर-उधर बहक सकता है। परन्तु नाटक में लेखक के लिए महत्त्वपूर्ण तथ्यों को चुनना अनिवार्य है, और उन्हें इस तरह प्रस्तुत करना है कि उनका महत्त्व प्रथम दर्शन में ही स्पष्ट हो जाय। वह न तो भटक सकता है, न बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन कर सकता है; उसे दो बिन्दुओं के बीच की सीधी रेखा के समान छोटे-से-छोटा मार्ग अपनाना होता है। पर्दा उठने से पहले बहुत कुछ हो चुका होगा और इस सबमें उसे ऐसी घटनाओं को चुनना होगा जिसमें वह उन विशेष बातों पर ध्यान आकर्षित कर सके जो पूरे कार्य-व्यापार को समझने के लिए दर्शकों के मन में होनी चाहिएँ। वह अन्य सब बातों को दबा देता है, चाहे वे अपने में कितनी ही रोचक क्यों न हों। उसे दर्शकों को उतनी ही जानकारी देनी है—न कम न अधिक—जिससे वे कथानक की गति को भली-भाँति समझ सकें।

नाटक के प्रदर्शन को देखने आई हुई जनता की पहली इच्छा यह होती है कि वह कथा को भलीभाँति समझ ले; और दूसरी यह कि कार्य-व्यापार का विकास उसके सामने हो, जिससे बिना प्रयत्न के ही उसे समझा जा सके। यदि नाटक के दो पात्र मंच पर पहली बार मिलें और दर्शक उनके पारस्परिक सम्बन्ध और उद्देश्य को पहले से जानता हो तो उसे बड़ी प्रसन्नता होती है। यदि यह जानकारी उसे पहले प्राप्त हो चुकी है तो वह उनके संवादों को रुचि और ध्यान से सुनता है। यदि यह जानकारी उसे नहीं है तो उसका ध्यान संवादों की ओर से हट जाएगा और वह इस विचार में पड़ जाएगा कि ये लोग कौन हैं और क्या करना चाहते हैं। कभी-कभी दोनों पात्र अपनी बातचीत के प्रारम्भ में एक-दो शब्दों में ही अपना परिचय दे सकते हैं परन्तु कभी-कभी अनपेक्षित घटनाओं के क्रम के कारण उनके पारस्परिक सम्बन्ध कुछ जटिल होते हैं। पात्रों के सम्बन्धों में जितनी ही जटलता होगी नाटककार को उसे उतनी ही चतुराई से स्पष्ट करना होगा, जिससे उनके सम्बन्ध में कोई मिथ्या धारणा न बन जाय। नाटक के कार्य-व्यापार में रुचि रखने के लिए विभिन्न पात्रों के परस्पर सम्बन्ध को पूर्ण रूप में समझना अत्यन्त आवश्यक है।

नाट्य शब्दावली में दर्शकों द्वारा कथानक को समझने के उद्देश्य से प्रस्तुत की गई जानकारी को उद्घाटन कहते हैं। यह नाटक-रचना का बड़ा महत्त्वपूर्ण अंग है। इसी के परीक्षण के आधार पर हम नाटककार की कुशलता का अनुमान लगा सकते हैं। बहुत-से नाटककारों को नाटक के प्रथम अंक के प्रारम्भिक दृश्यों में ही दर्शक को इतनी सरलता से पूरी कथा से परिचित करा देने की युक्ति आती है कि दर्शक को उस कलात्मक चतुराई का भान ही नहीं होता जिससे वे प्रमुख-पात्रों के विगत जीवन के विषय में हर प्रकार की जानकारी दे देते हैं। इसके विपरीत कुछ नाटककारों का उद्घाटन शिथिल और ढीला-ढाला होता है और कुछ का गतिहीन और नीरस।

परन्तु कोई भी नाटक-लेखक दर्शकों को पहले अंक में पर्दा उठने के पहले की सारी कथा बतलाने की आवश्यकता को टाल नहीं सकता। जल्दी या देर में यह सूचना

उसे किसी-न-किसी प्रकार देनी ही होगी। नाटककार इसे उस प्रस्तावना में बता सकता है, जो नाटक प्रारम्भ होने के पहले होती है, जिस प्रकार प्लॉटस ने **कैप्टिव्स** में किया है। उसे नाटक में ही किसी लम्बे स्वगत कथन द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है, जैसा यूरिपिडीस ने **मीडिया** में किया है। वह इसे पहले अंक के प्रारम्भिक दृश्यों में गम्भीर संवादों और तीव्र कार्य-व्यापार द्वारा बतला सकता है, जैसा शेक्सपियर ने **ऑथेलो** में किया है। वह इसे कुछ देर के लिए स्थगित भी कर सकता है और नाटक में जहाँ-तहाँ इस जानकारी को बिखरा दे सकता है, जैसा इब्सन ने **गोस्ट्स** में किया है। परन्तु पूर्वकथा सम्बन्धी सूचनाएँ देने का कार्य नाटककार को बहुत देर तक नहीं टालना चाहिए जैसा इब्सन के ही **रोज़मरशाम** नाटक में हुआ है, जिसमें हम अन्तिम अंक तक रेबेका वेस्ट के वास्तविक प्रयोजन को नहीं जान पाते। हमें नाटक के प्रारम्भ में ही यह ज्ञात हो जाना चाहिए था, जिससे हम उसके चरित्र-परिवर्तन को भलीभाँति समझ सकते।

यदि हम अत्यन्त कुशल नाटककारों की रचना से उदाहरण लें तो हम यह समझ लेंगे कि पहले अंक में यह जानकारी देना उद्घाटन का सर्वोत्तम ढंग है; चाहे इससे प्रारम्भिक दृश्य कुछ धीमी गति के और श्रम-साध्य ही क्यों न प्रतीत हों। जिस समय दर्शक नाट्यगृह में आते हैं, वे सतर्क होते हैं और तनिक से संकेत को भी ग्रहण कर लेना उनके लिए संभव होता है। वे तब तक थके नहीं होते, इसलिए ऊबते भी जल्दी नहीं हैं। और यदि वे पहले अंक में ऊब भी जायँ तो भी विशेष हानि न होगी, क्योंकि नाटक देखने के लिए उन्होंने खर्च किया है, इसलिए वे इस आशा में बैठे रहेंगे कि अगले अंक अधिक रोचक होंगे।

स्क्रीब ऐसा ही करता था, और नाट्य-रचना के सभी रहस्यों पर उसका पूर्ण अधिकार था। वह अपने नाटक के प्रारम्भिक दृश्यों में सारी परिचयात्मक कथा-सामग्री रख देता था, इससे सब बातें पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाती थीं, और अत्यन्त मूर्ख और जड़ दर्शक भी पूरी स्थिति को समझ सकता था। वह एक-एक करके पात्रों को मंच पर लाता था और सावधानी से उनका परिचय दर्शकों को करवाता था जिससे कि उसके बाद वे सदैव पहचाने जा सकें। यदि ठीक समझता तो स्क्रीब पूरा अंक ही उद्घाटन में लगा देता था, और यह भलीभाँति जानता था कि आगे चलकर इन प्रारम्भिक परिचयों और व्याख्याओं के बाद जब कार्य-व्यापार तेज़ी से आगे बढ़ेगा तो दर्शकों का पूरा ध्यान फिर आकर्षित हो जायगा। अपने एक नाटक में उसने प्रथम अंक में नायिका को नहीं आने दिया, शेष सभी पात्र कथानक का आधार तैयार करने आ जाते हैं। उसने कुशलतापूर्वक नायिका का प्रवेश दूसरे अंक तक रोके रखा जिससे कि दर्शकों में नई रुचि जागृत हो सके।

स्क्रीब के समकालीन बड़े ड्यूमा भी प्रारंभिक दृश्यों में इतनी ही कुशलता और सावधानी से काम लेते थे। वे तेज़ी से प्रारम्भ करना पसन्द करते थे और उद्घाटन

को कार्य-व्यापार से सम्बद्ध रखते थे। उन्होंने हमें बताया है कि अपने एक सबसे सफल नाटक की कथा नाटक लिखने के दो-तीन वर्ष पहले ही उन्होंने सोच ली थी, पर वे लिखना टालते रहे क्योंकि उन्हें उसके लिए प्रभावशाली प्रारम्भ नहीं सूझ रहा था। तब एक दिन उन्होंने ऐसे प्रेमियों के विषय में सुना जिन्होंने एक सिक्के को दो हिस्सों में तोड़कर एक-एक हिस्सा अपने पास इस मन्तव्य से रखा था कि उनमें जो कोई भी दूसरे से ऊब जाय वह अपने हिस्से को सम्बन्ध की समाप्ति के चिन्ह के रूप में दूसरे को वापस कर दे। उन्होंने तत्काल इस कथा को लिया और अपने नाटक के प्रारम्भ में इसका प्रयोग कर लिया।

अमरीकी दर्शकों में **कामील** के नाम से प्रसिद्ध करुण नाटक के रचयिता छोटे ड्यूमा ने अपने पिता से नाटक-रचना की स्वाभाविक शक्ति प्राप्त की थी। उन्होंने कहा था कि नाटककार की कला मुख्यत: उद्घाटन और क्रमिक विकास की कला है; और प्रत्येक दृश्य इस प्रकार कुशलता से आना चाहिए कि दर्शक अनजाने ही उसकी प्रतीक्षा करता हो और उसके आ जाने पर उसका स्वागत करे। अपने पिता से उन्होंने नाटक को आकर्षक ढँग से प्रारम्भ करने की कला पाई थी, जिससे पर्दा उठते ही दर्शकों का ध्यान उसमें लग जाय और वे प्रमुख पात्र तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों को बिना हिचक मान लें। उनके बाद के कुछ कम सफल नाटक **फ़्रेम द क्लॉड** में नाटक को आकर्षक ढँग से प्रारम्भ करने की उनकी कुशलता का अच्छा नमूना देखने को मिलता है। जब पर्दा उठता है तो रंगमंच पर अँधेरा होता है और दर्शकों को एक अँधेरा कमरा दिखाई पड़ता है जिसकी खिड़कियाँ बंद हैं। एक पुरानी नौकरानी लैंप लेकर आती है, और उसे ऊँचा करके घड़ी के सामने रखती है; सबेरा हो चुका है, और वह खिड़कियाँ खोलने जा रही है। तभी उसे खिड़की पर खटखट सुनाई देती है, और उसके पश्चात् एक स्त्री-कंठ जिसे सुनकर उसे खेद होता है; "यह अब भला क्यों वापस आ गई है? यहाँ सब ठीक चल रहा था"—वह अपने से कहती है। तब वह खिड़की के पट खोल देती है और किवाड़ खोलकर उस स्त्री को भीतर बुला लेती है। उसके बाद द्वन्द्वयुद्ध में चलती हुई तलवारों की तरह तीक्ष्ण और कटु जो संक्षिप्त बातचीत होती है, उससे दर्शकों को यह पता चल जाता है कि जो स्त्री वापस आई है वह भ्रमण से लौटी हुई गृहस्वामिनी है; और उसके विभिन्न प्रश्नों के उत्तर में कि उसकी अनुपस्थिति में घर में क्या-क्या हुआ है, हमें उन सभी तथ्यों का पता चल जाता है जो इस अनोखे नाटक में हमारी रुचि उत्पन्न करने के लिए आवश्यक हैं।

छोटे ड्यूमा का समकालीन सार्दू, जो स्क्रीब का अनुवर्ती था, नाटकों के उद्घाटन में बहुत कुशल था। उसके **फ़ेडोरा** नाटक का पहला अंक एक प्रस्तावना है, जो नाटक की व्याख्या प्रस्तुत करने और उसे उचित सिद्ध करने के लिए आवश्यक है; परन्तु साथ ही उस अंक का कार्य तीव्र गति से आगे बढ़ता है, और उसकी गति में चित्रमयता है; और जब पर्दा गिर जाता है, तब हम देखते हैं कि चतुर

नाटककार ने कुछ प्रश्न-चिन्ह छोड़ दिए हैं, जिसके कारण हम अपने स्थान पर बैठे इस सोच में पड़ जाते हैं कि यह जो भयंकर घटना हमने अभी देखी है उसका परिणाम क्या होगा।

अक्सर सार्दू दूसरा तरीक़ा अपनाता था जैसा कि पहले के सामाजिक व्यंग्य नाटकों और बाद के ऐतिहासिक अतिरंजित नाटकों में अपनाया जाता था। इन नाटकों में पहला और कभी-कभी तो दूसरा अंक भी समाज का प्राचीन या आधुनिक चित्र उपस्थित करने में लगा दिया जाता था। लेखक हमें ऐसे पात्रों के सामने रख देता है, जो अपने में बड़े मनोरंजक होते हैं और बड़े हास्यजनक रूप में परस्पर विरोधी होते हैं; वे हास्यपूर्ण बातें करते हैं और अपना परिचय मनोरंजक स्थितियों में देते हैं। जैसे-जैसे नाटक आगे बढ़ता है, दर्शक का ध्यान अधिक महत्त्वपूर्ण पात्रों की ओर आकर्षित होता जाता है; और अगले अंकों में यही पात्र मंच में प्रमुख स्थान ग्रहण करने लगते हैं, पहले आये हुए पात्रों का समूह पृष्टभूमि में चला जाता है क्योंकि उनको दिखाने का प्रयोजन सिद्ध हो चुका है। इन्हीं गौण चरित्रों की बातचीत से हमें प्रमुख पात्रों के सम्बन्ध में ज्ञान होता है। सार्दू ने तो इस तरीक़े का प्रयोग सफलतापूर्वक किया, परन्तु इसके प्रयोग में खतरा है क्योंकि इससे दर्शकों का ध्यान नाटक के केन्द्र-बिन्दु से हट सकता है। इसके सफल प्रयोग के लिए वैसे ही कुशल नाटक-रचयिता की आवश्यकता है जैसा सार्दू था। इसे सार्दू का दुर्भाग्य समझना चाहिए कि वह अपनी निपुणता से इतना आनन्दित हो उठता था कि प्राय: ऐसा नाटक लिखता था जिसमें कोइ तथ्य न होता था, जिसमें दर्शक कार्य-व्यापार को भली भाँति संचालित होते तो देखते थे पर कथा समस्त मानवीय तत्व से हीन हो जाती थी।

3

एक अत्यन्त पुरानी युक्ति है, जो अब बिलकुल लुप्त-सी हो गई है और जिसे आत्माभिमानी नाटककारों ने बहुत पहले छोड़ दिया है, वह है नाटक का प्रारम्भ दो-तीन नौकरों की बातचीत से करना। वे लोग कमरे की झाड़-पोंछ करते या फ़र्नीचर ठीक से रखते हुए बातचीत करते जाते हैं। उस बातचीत से दर्शकों को इस प्रकार की सूचनाएँ मिल जाती थीं कि दो या दस वर्षों से मालिक-मालकिन में झगड़ा है, अब पति-पत्नी अपने अलग होने के बाद से पहली बार मिलने जा रहे हैं, आदि। इसी प्रकार एक-दूसरी पुरानी युक्ति यह थी कि एक पात्र दूसरे पात्र से वह बातें करे जिनको वह जानता है। यह युक्ति हम लोगों को बड़ी ही कृत्रिम लगेगी। फिर भी ड्राइडन ने इसे अनेकों बार अपनाया था, विशेषकर **स्पेनी फायर** में। यह नाटक दो अफ़सरों के रात्रि में मिलने और परस्पर ज्ञात बातों को दुहराने से आरम्भ होता है। कोई आश्चर्य नहीं कि शेरिडन ने इस रीति की तथ्यहीनता को समझा और अपनी अतिप्रहसनात्मक त्रासदी में इसका उपहास किया।

परन्तु दर्शकों को किसी न किसी प्रकार सूचित अवश्य रखना है, घटिया

उद्घाटन भी दर्शकों को अपरचित रखने से अच्छा है। अन्य कलाओं की भाँति नाटक में भी सरलता सबसे अच्छी नीति है, और वही उद्घाटन सबसे अधिक सन्तोषजनक होता है, जो सबसे सरल, द्रुत और स्पष्ट हो। सब बड़े नाटककारों का उद्देश्य यही रहा है, और उन्हें यह ज्ञान भी रहा है कि बिना अच्छी तरह सोचे इसका उपाय नहीं मिल सकता। नाटक-कला के सिद्धान्त युगों में भी नहीं बदलते हैं, और एथेंस में एस्किलस, लन्दन में शेक्सपियर तथा पेरिस में मोलियर को उन्हीं समस्याओं को सुलझाना पड़ा था जिन्हें स्क्रीब और सार्दू ने अपने समय में सुलझाया था। प्रत्येक को अपने ढँग से दर्शकों को कथा के मूल से परिचित कराना पड़ा है और उसे समझ पाने के लिए आवश्यक सूचना प्रस्तुत करनी पड़ी है। एस्किलस ने **अगामेमनान** के आरम्भ में महल की छत पर एक प्रहरी दिखाया है जो उस प्रकाश-दण्ड की राह देख रहा है जिससे ट्रॉय के पतन की सूचना मिलेगी। इसी बीच एक लम्बे स्वगतकथन में वह दर्शकों को उस स्थिति का ज्ञान करा देता है जो बहुत दिनों से छूटे हुए घर को वापस लौटने पर नायक को मिलेगी। मोलियर **तारत्युफ** का प्रारम्भ उस पाखण्डी पात्र के चरित्र के सम्बन्ध में बातचीत से प्रारम्भ करता है, जिससे हमें नाटक के मूल स्वर का परिचय मिल जाता है, और इस प्रकार जो आगे आने वाला है उसके लिए हम तैयार हो जाते हैं। गेटे ने कहा था कि **तारत्युफ** ऐसे उद्घाटन का महान् और सर्वोत्तम उदाहरण है जो आगे की कथा का महत्त्व बताता है, और उन्होंने यह भी कहा था कि मोलियर ही वह व्यक्ति है जिससे आधुनिक नाटक का सबसे अधिक शिल्प सीखा जा सकता है। मोलियर कभी-कभी उद्घाटन के अत्यन्त अनगढ़ तरीकों को भी स्वीकार कर लेते हैं; कभी-कभी वे नाटक का प्रारम्भ एक पात्र के स्वगत कथन से करते हैं जिससे सारी स्थिति स्पष्ट रूप से सामने रख दी जाती है।

शेक्सपियर अपने आरम्भिक नाटकों—त्रासदी और कामदी—दोनों ही में—उद्घाटन के विषय में सावधान रहते थे। **ऑथेलो** के प्रारम्भिक दृश्य में ही इयागो डेसडिमोना के पिता को जगाते ही यह अप्रिय समाचार देता है कि वेनिस के एक पादरी की कन्या ने एक अफ्रीकी से विवाह कर लिया है। फिर वह सेनेटरों की बैठक में जाता है जहाँ ऑथेलो अपने विवाह की कथा बताने को विवश किया जाता है। पहले अंक की समाप्ति पर हमें सब कुछ, जो आवश्यक था, उसका ज्ञान हो जाता है। हमारी रुचि उसमें जागृत हो जाती है और हम यह देखते हैं कि इस विचित्र विवाह की प्रगति क्या होगी। इसी प्रकार **रोमियो और जूलियट** का प्रथम अंक भी प्रभावशाली है, जिसमें हम देखते हैं कि मांटेग्यू और कैप्युलट घरानों में इतनी शत्रुता है कि सड़क पर झगड़ा हो जाता है और इसी झगड़े के बाद एक परिवार के पुत्र को दूसरे परिवार की कन्या के साथ प्रथम दर्शन में ही परस्पर प्रेम में पड़ते देखते हैं।

हैज़लिट ने अपनी अस्पष्ट आलोचना शैली के कारण ही **कामडी ऑफ़ एरर्स** को एक असावधान कृति कह कर टाल दिया है। यह सच है कि शेक्सपियर, जो विषय

के रोचक हो जाने पर कथानक को चलाने में बहुत ही सावधानी बरतते थे, अपने कुछ बाद के नाटकों की रचना में थोड़े असावधान हो गए थे । परन्तु उनके आरम्भिक नाटकों में उनके कलात्मक मानों में शिथिलता आने के उदाहरण नहीं हैं, और **कामडी ऑफ एरर्स** में तो बिल्कुल ही नहीं । यह नाटक असावधानी से नहीं रचा गया, सच तो यह है कि वह रचना-कौशल पर ही निर्भर होने के कारण असावधानी से रचा जा ही नहीं सकता था। यह केवल निम्न श्रेणी का प्रहसन है, जो **ऑथेलो** और **मैकबेथ** के रचयिता की कृति नहीं जान पड़ता। अन्य प्रहसनों की भाँति यह भी अपने पात्रों के हास्य और सजीवता पर निर्भर न होकर स्थितियों के कुशल प्रस्तुतीकरण पर निर्भर है। कथानक को देखते ही स्पष्ट हो जाता है कि यह एक प्रहसन है क्योंकि कथा असंभव है। इसमें हमें जुड़वाँ व्यक्तियों के ऐसे दो जोड़ों के अस्तित्व को स्वीकार करना पड़ता है जो विभिन्न स्थानों पर पले होकर भी रूप, भाषा, व्यवहार और वेषभूषा सभी में इतने मिलते हैं कि एक को देखकर दूसरे का भ्रम हो जाता है।

यह अत्यन्त आवश्यक था कि नाटक के प्रारम्भ में ही इन दो जुड़वाँ व्यक्तियों के विषय में बता दिया जाय, जिससे दर्शक इस कथानक का आनन्द उठा सकें और उन्हें परिस्थितियों के उस विचित्र संयोग का भी पता चल जाय जिसके कारण दोनों अचानक एक ही शहर में पहुँच गए हैं, और एक स्वामी तथा सेवक को दूसरे स्वामी और सेवक के समुद्र में डूब जाने पर पूरा विश्वास हो सके। इन बातों को इस प्रकार बताना कि इन की सत्यता पर कोई सन्देह न हो, सरल काम नहीं था; और शेक्सपियर ने इसे पूरे निश्चय और नाटकीय प्रभाव के साथ किया है। उन्होंने नाटक का प्रारम्भ ड्यूक के दरबार में एक मुकदमे से किया है, जो दोनों तरुण स्वामियों के पिता पर चलाया गया है। यह दुखी पिता अपने पुत्र को ढूँढ़ता हुआ इस नगर में आ गया है, और नगर-व्यवस्था के स्थानीय क़ानून का अनजान में उलंघन कर दिया है। वह पुत्र-प्रेम का कारण देकर क्षमा माँगता है। इस प्रकार उन दो जोड़ों की पूरी कहानी—उनके जन्म और अलग होने की तथा एक दूसरे के अनजाने बच जाने की—सब ऐसे मुकदमें में फँसे हुए वृद्ध के मुख से पता चल जाती है, जिसमें उसे मृत्युदंड भी मिल सकता है। यह स्थिति तत्काल दर्शकों की सहानुभूति जगा देती है और उसका ध्यान एकाग्र भाव से नाटक की कथा में केन्द्रित हो जाता है।

नाटकीय कथा के उद्घाटन के विषय में शेक्सपियर के इतने सावधान होने का एक कारण तो यह था कि एलिजाबेथकालीन दर्शकों में आधे से अधिक लोगों को बैठने की जगह नहीं मिलती थी। पूरे प्रदर्शन में उन लोगों को खड़े रहना पड़ता था। इस कारण वे अशान्त रहते थे और लेखक की व्याख्याओं को समझने में कम ध्यान दे सकते थे। परन्तु यद्यपि वे कभी-कभी अशान्त हो उठते थे, फिर भी दर्शकों की दृष्टि से शेक्सपियर प्लॉटस से अधिक भाग्यशाली थे; क्योंकि प्लॉट्स को रोमन जनता को प्रसन्न करना पड़ता था, जिसमें से बहुत-से विदेशी होते थे, नगर के अति निम्न

वर्गों के व्यक्ति होते थे और उन्हें अक्सर लैटिन बहुत कम आती थी। कैप्टिवस नामक नाटक में प्लॉट्स ने ऐसी कथा ली जिसका प्रारम्भ कुछ उलझा हुआ था, यद्यपि कामडी ऑफ एरर्स प्रारम्भ जितना जटिल नहीं था। रोमन नाटककारों को अपने दर्शकों की समझने की शक्ति पर भरोसा न था, इससे उन्होंने संयोग पर कुछ भी नहीं छोड़ा। उन्होंने प्रस्तावना के बिना नाटक में ही पात्रों के पारस्परिक सम्बन्धों को विकसित करने की बात नहीं सोची। प्रस्तावना में सारी स्थिति इतनी स्पष्टता से वर्णित है, कि मन्दबुद्धि भी उसे भली भाँति समझ ले। फिर भी उन्हें इतने से सन्तोष नहीं हुआ; उन्होंने प्रस्तावना के वाचक से वही व्याख्याएँ दो-तीन बार कहलाई कि जिससे दर्शक कितने ही मूर्ख क्यों न हों उनकी समझ में आ जाए; और उसकी परिस्थितियों को देखते हुए उद्घाटन पर इस सीमा तक ज़ोर देना उचित प्रतीत होता है।

नाटककार के लिए अपने दर्शकों की औसत कल्पना-शक्ति के विषय में निश्चय कर पाना हमेशा कठिन होता है। कुछ लोगों के लिए जो पर्याप्त व्याख्या होती है, वही दूसरे दर्शकों को ऐसी लग सकती है कि नितान्त स्पष्ट बात को बार-बार दुहराया जा रहा है। चतुर नाटककार देर में समझ पाने वाले अधिकाँश व्यक्तियों के समझने के लिए थोड़े-से तीव्र कल्पना शक्ति वालों को रुष्ट कर देने का खतरा उठाने को तैयार होता है। प्लांशे ने लिखा है कि उन्हें 19वीं सदी के प्रारम्भ में एक चतुर रंगमंच प्रबंधक ने यह सलाह दी थी, "यदि तुम चाहते हो कि जो कुछ कर रहे हो अंग्रेज़ जनता उसे समझे, तो तुम्हें उन्हें यह बताना होगा कि तुम यह करने जा रहे हो, फिर यह बताना होगा कि यह कर रहे हो, और अंत में यह भी बताना होगा कि तुम यह कर चुके हो, इसके बाद शायद वे तुम्हें समझ सकें।"

4

यह कटु बात है परन्तु इसमें बड़ा सार है। यह नाटक लेखक के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि वह दर्शकों को बताये कि वह क्या करने जा रहा है—दर्शकों में आगे देखने की इच्छा जगाना, और जो सामने आने वाला है उसी की अनजाने ही इच्छा करना आवश्यक है। उपन्यास में रहस्य रखकर और सबसे प्रभावपूर्ण समय पर उसे बताकर पाठकों को रिझाया जा सकता है। बल्कि जासूसी कहानी का तो प्रभाव ही इसी युक्ति पर निर्भर है।लेखक एक पहेली रचता है, और हम अन्त तक उसके सम्बन्ध में अनुमान लगाते रहते हैं। और ऊँची प्रतिभा वाले उपन्यासकार भी, जिनमें केवल आविष्कारी बुद्धि ही नहीं, (रहस्य-कथाओं के रचयिताओं के लिए तो इतना ही आवश्यक है) सच्ची कल्पना शक्ति भी होती है—फ़ील्डिंग और थैकरे के स्तर के उपन्यासकार—हम लोगों को थोड़ी देर के लिए सन्देह में रहने दे सकते हैं और टॉम जोन्स तथा हेनरी एसमांड के जन्म का रहस्य जिस समय वे उपयुक्त समझें तभी खोलें, यह हो सकता है। उपन्यासकार ऐसा कर सकता है क्योंकि उसके पाठक को कोई जल्दी नहीं होती और वह सोचने के लिए समय ले सकता है; परन्तु नाटककार यह नहीं कर

सकता। रंगमंच का पहला नियम यही है कि दर्शक से कुछ भी छिपाया न जाय। चार्ल्स लैंब के प्रहसन मि० एच० की असफलता का कारण यही था कि लेखक ने नायक का वास्तविक नाम—जिससे उसे लज्जा आती थी—न केवल दूसरे पात्रों वरन् दर्शकों तक से अंत तक छिपाये रखा। दर्शकों को तो तथ्य ज्ञात होने ही चाहिए, चाहे पात्रों को अन्तिम अंक तक कुछ भी ज्ञात न हो। दर्शकों को पात्रों के एक-दूसरे के बारे में न जानने पर बड़ा आनन्द आता है, वे सोचते रहते हैं कि जब आँथेलो को इयागो की धूर्तता का और सर पीटर टीज़ल को जोज़ेफ़ सरफ़ेस के पाखण्डी होने का पता चलेगा तो क्या होगा।

दर्शक अपनी कल्पना-शक्ति से काम लेकर यह जानना चाहता है कि रंगमंच पर आगे क्या होगा। वास्तव में उसकी रुचि घटना पर इतनी नहीं होती जितनी अन्य पात्रों पर उस घटना के प्रभाव में। वह इसे तो सम्भव समझता ही है कि सर पीटर जान जाएँगे कि लेडी टीज़ल जोज़ेफ़ सरफ़ेस से मिलने गई हैं, चिंता उसे यह जानने की होती है कि पति के रूप में सर पीटर पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी। ऐसे स्थान पर मिलने से जहाँ उनके होने की आवश्यकता न थी, लेडी टीज़ल क्या कहेंगी ? (सर पीटर उनके बहानों को किस प्रकार स्वीकार करेंगे ?) और इसका प्रभाव पति-पत्नी के भावी सम्बन्धों पर कैसा पड़ेगा ? दर्शक उन्हीं प्रश्नों का उत्तर चाहता है। नाटककार चाहे कितनी ही कुशल युक्तियों से दर्शकों का कौतूहल जाग्रत करे, परन्तु उसे दर्शकों को धोखा न देना चाहिए। वह कुछ देर उन्हें अनिश्चिय या संदेह में रख सकता है, परन्तु घटनाएँ जिस ओर स्वाभाविक रूप से बढ़ती हुई प्रतीत होती हैं उस ओर से उन्हें पूर्णतया अनपेक्षित मोड़ नहीं दे सकता।

उपन्यास में भी अचानक विस्मय उत्पन्न करने का प्रभाव अस्थायी होता है। जब हमारे सम्मुख एक बार उन रहस्मय कार्यों की व्याख्या प्रस्तुत हो जाती है, तो हमारा कौतूहल शान्त हो जाता है, और पुस्तक दुबारा कभी पढ़ी नहीं जाती। हममें से बिरला ही होगा जो बिल्की कॉलिंस रचित कथा दुबारा पढ़े, परन्तु टॉम जोन्स और हेनरी एसमांड पर हम बार-बार लौट आते हैं, यद्यपि हमें उनके जन्म का रहस्य ज्ञात हो चुका होता है। नाटक में कथा के अंत को जान लेने से हमारे आनन्द में कोई बाधा नहीं पड़ती। स्कूल फ़ॉर स्कॅंडल और आँथेलो जब भी अच्छी तरह प्रस्तुत किया जाय, हम उन्हें देखने जाते हैं, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि उनका अन्त हमें ज्ञात है। हम लोगों को नए नाटककारों द्वारा फ्रांचेस्का दारिमीनी और फ़ॉस्ट जैसे पुराने कथा-विषयों पर फिर से लिखना अच्छा लगता है; यह देखने का कौतूहल हमें होता है कि नयी पीढ़ी के लेखक ने प्राचीन कथा में क्या-क्या परिवर्तन किए हैं। इसमें हम सब प्राचीन यूनानियों के समान ही हैं, जो नई चीज सुनने की इच्छा होते हुए भी नाट्य-शाला में उन परम्परागत कहानियों से संतुष्ट हो जाते थे, जिन्हें प्रत्येक नाटककार बारी-बारी से अपनाकर अपनी बुद्धि के अनुसार नया रूप देता था।

इसमें, जैसे कला के और विषयों में भी, हमें यूनानी जनता की सहजबुद्धि का परिचय मिलता है। कथानक की नवीनता सँकरी सीमाओं में ही संभव है, और प्रत्येक नाटककार को उन स्थितियों को लेना पड़ता है जो उसके पूर्ववर्ती लेखक द्वारा निरूपित हो चुकी हैं। इतालवी नाटककार गॉज़ी ने एक बार कहा था कि सम्भव कथा-स्थितियाँ केवल छत्तीस हैं, और जब गेटे और शिलर ने सूची बनानी चाही तो उन्हें छत्तीस भी न मिलीं। एक स्कूली विद्यार्थी ने साहित्यिक चोर की परिभाषा देते हुए लिखा था 'वह व्यक्ति जो नाटक लिखता है।' इसमें सत्य का अंश था। नाटककार को निरन्तर पुरानी सामग्री पर ही काम करना पड़ता है क्योंकि संसार में कुछ भी पूर्णतया नवीन नहीं घटित होता। परन्तु यद्यपि नई स्थितियाँ मिलना बहुत कठिन है, फिर भी जिन चरित्रों का निर्माण नाटककार कर सकता है, वे असंख्य हैं। मानव चरित्र में अनन्त भेद, उपभेद हैं और नाटककार को मानवता का चित्र उपस्थित करते समय अनन्त क्षेत्र मिलता है। उसका कथानक भले ही पर्वतों जितना पुराकालीन हो, यदि वह उसे वसंत के समान तरुण प्रेमियों से भर दे सकता है, तो वे सदैव नवीन और ताज़े लगेंगे क्योंकि वे सजीव हैं, जीवन्त हैं। **फारेस्ट ऑफ आर्डन** में ऑरलेंडो और रोज़लिंड के मिलने के बहुत पहले भी बहुत-सी कामदियों में रसिक युवक लज्जाशीला युवतियों से प्रेम-याचना करते रहे थे, और ओरेस्टेस के अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध लेने के प्रयत्नों के सदियों बाद हैमलेट पर यह कठिन भार फिर पड़ा था।

कथानक केवल वह फ्रेम है जिसमें चित्र लगाया जाता है, यद्यपि कथानक-निर्माण चरित्र-चित्रण से अधिक आवश्यक है। स्थितियों का वास्तविक मूल्य यह होता है कि उनसे नाटककार को मानव स्वभाव प्रकट करने का अवसर मिलता है। और यह एक कारण है जिससे उच्च कोटि के नाटककार अपने नाटकों को समाप्त करने में असावधान जान पड़े हैं। निश्चय ही प्रत्येक नाटक-लेखक को पहली पंक्ति लिखने के पहले नाटक के अन्त का निश्चय कर लेना चाहिए। यह जाने बिना कि गंतव्य क्या है, वह अपने रास्ते पर चल नहीं सकता, क्योंकि भूल करने का अवकाश उसे नहीं है। फिर भी जो गंतव्य उसने चुना है उसका चुनाव मनमाना भी हो सकता है, और अन्त आने पर असंगत और विरोधी भी जान पड़ सकता है।

ऐसे उद्घाटन की आवश्यकता के विषय में तो जितना कहा जाय कम है कि वह इतना स्पष्ट हो कि किसी दूसरे विचार में मग्न दर्शक के मन में भी कथा के सम्बन्ध में संदेह न रह जाय। नाटक का प्रारम्भ उसके अन्त से अधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि तर्कसंगति इसी बात में प्रतीत होती है कि गाँठ ढँग से खोली जाय, परन्तु जब दर्शकगण तीन घण्टों तक संतुलित शक्तियों के बीच संघर्ष की अनुक्रमिक घटनाएँ आनन्द लेकर देखते रहे हैं, तो उन्हे तर्कसंगति के प्रति इतना आग्रह नहीं रह जाता; अक्सर तो वे गाँठ के जल्दी से खोल दिए जाने को उसके ढंग से धीरे-धीरे खुलने की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं। उन्हें तो आनन्द प्राप्त हो चुका है, और वे लेखक को

जैसा वह उपयुक्त समझें वैसा अन्त प्रस्तुत करने की सुविधा देना पसन्द नहीं करते। नाटक ही महत्त्वपूर्ण है, कथा को समाप्त करने का ढँग नहीं। दर्शकगण जीवन के चित्र से आनन्द उठाते हैं, और अधिकांश को उस नैतिक निष्कर्ष में कोई रुचि नहीं होती जो नाटक से निकलता है। शायद यह भी कारण है जिससे शेक्सपियर और मोलियर अपने कथानकों को इतने साधारण ढँग से समाप्त कर देते हैं जैसे वे यह प्रकट करना चाहते हैं कि जिस प्रकार वास्तविक जीवन में कुछ भी समाप्त नहीं होता, उसी प्रकार रंगमंच पर भी; क्योंकि अन्त आवश्यक है, एक अन्त उतना ही अच्छा है जितना कि दूसरा।

आधुनिक दर्शक नाटक का सुखान्त होना पसन्द करते हैं। उन्हें परी कथाओं की समाप्ति—'और उसके बाद वे सब सुखपूर्वक रहने लगे' से मोह है। केवल ऑपेरा में वह मृत्यु की करुणा को सहन करने को तैयार होते हैं। वे एथेंस के दर्शक की भाँति नहीं हैं, जो पहले से ही आपत्ति झेलने और नियति द्वारा निश्चित बात पूरी होने की आशा से रंगशाला में जाते थे। नाटक-दर्शकों की यह वृत्ति नई नहीं है। हम **मेज़र फॉर मेज़र** के अन्त में विवाह कर देने को इसी प्रवृत्ति का परिणाम कहेंगे, क्योंकि उस अवसादपूर्ण नाटक का और गम्भीर अन्त होना चाहिए था। मोलियर ने न केवल तारत्युफ़ को न्यायालय में खड़ा कर दिया, वरन् आरगाँ की सम्पत्ति भी उसे वापस दिला दी, यहाँ भी सुख-पूर्ण अन्त जनता की रुचि के कारण रखा गया है। इसी प्रकार जिलेट अपने **सीक्रेट सर्विस** नामक नाटक को, जो अपनी सजीवता और कुशलता में प्रशंसनीय है, परिस्थितियों और पात्रों के तर्कसंगत अन्त—दुःखान्त—की ओर ले जाते और अन्त में ज़रा-सा पहले—मानों जब प्राम्प्टर पर्दा गिराने के लिए घंटी बजाने वाला था तभी—अचानक अपने नायक को बचा लेते हैंऔर पलक झपकते उसका विवाह करा देते हैं। इसका प्रभाव इस प्रकार होता है मानो लेखक दर्शकों से कह रहा हो, "निश्चय ही यह नाटक दुःखान्त है और कुछ हो ही नहीं सकता है, परन्तु यदि आप सभी को सुखान्त प्रिय है, तो वही हो जाय।" यह भी सच है कि **सीक्रेट सर्विस** में इधर-उधर इतना हास-परिहास भरा है कि दर्शक उसे त्रासदी के रूप में स्वीकार करने को तैयार न थे।

तर्क-संगति का ऐसा उल्लंघन छोटे ड्यूमा को बहुत ही बुरा लगता जो इस बात पर दृढ़ता से ज़ोर देते थे कि नाटक का कथानक गणित के प्रश्न की भाँति संचालित होना चाहिए। नाटक का अन्त सब दृश्यों के स्वाभाविक परिणाम के रूप में घटित होना चाहिए। यह सिद्धान्त ड्यूमा के नाटकों के लिए—जिनमें वह अपना कोई न कोई मत—प्रतिपादन किया करते थे—ठीक था। इब्सन के सामाजिक नाटकों के लिए भी, जिनमें नैतिक उपदेश रहता है—यह सिद्धान्त ठीक था। सामाजिक नाटक में लेखक को अपने दर्शकों के प्रति सच्चा होना ज़रूरी है। वह तर्क-संगति की उपेक्षा नहीं कर सकता, क्योंकि तर्क-संगति ही उसका सार है। उसको दर्शकों के लिए विश्वसनीय

बना रहना ही चाहिए, क्योंकि वह एक सामाजिक समस्या प्रस्तुत कर रहा है, और दर्शकों को अपना सुझाव स्वीकार करने का आमंत्रण दे रहा है। परन्तु चरित्र-कामदी या आचार-कामदी में ऐसा कोई प्रतिबन्ध लेखक पर नहीं होता। इन दोनों में नाटककार को अपना कोई मत प्रतिपादन नहीं करना होता और वह हमारे सम्मुख केवल कुछ पात्र रख देना चाहता है, जिन्हें वह नितान्त स्पष्ट रूप में चित्रित करना चाहता है। यह कर चुकने के बाद उसका प्रयोजन सिद्ध हो चुकता है और वह विवाह की सुखद शहनाइयों के साथ नाटक का अन्त कर सकता है।

नाटक के अन्त-जैसी छूट कभी-कभी लेखक मध्य के लिए भी चाहता है; परन्तु इसमें उसके लिए खतरा होता है, चारों ओर देखते हुए सावधानी से चलना चाहिए। उसका हमेशा यही लक्ष्य होना चाहिए कि जहाँ तक हो सके नाट्य-कृति अत्यन्त स्वाभाविक हो; उसकी कला को तभी अधिकतम आदर मिलेगा जब वह न केवल अतिरिक्त और मनमानी बातों को छोड़ सके वरन् आकस्मिकताओं को भी। उसको अपने इतने श्रम के फलस्वरूप लिखे गए नाटक को इस प्रकार प्रस्तुत करने का प्रयत्न करना चाहिए कि वह कम से कम श्रम से समझा और पसन्द किया जा सके। यही अपने सर्वोत्तम रूप में मूर्तिकला और चित्रकला की विशेषता है। यह उन साहित्यिक कलाओं का गुण और भी अधिक है जिनमें लेखक नाटक या उपन्यास के माध्यम से कोई कथा कहता है चाहे कथाकार अपनी कथा को रंगमंच पर प्रस्तुत कर रहा हो, चाहे उसे गद्य या पद्य में वर्णित कर रहा हो, उसे घटनाक्रम को जीवन की वास्तविकता प्रदान करनी ही होगी। अपने कथानक की रचना करते समय उसे घटनाओं को सुसम्बद्ध, सम्पूर्ण और स्पष्ट बनाना होगा। वह यह तभी कर सकता है जब उस समय घटने वाली अन्य सभी घटनाओं से उन्हें अलग कर दे। जीवन की तूफ़ानी उथल-पुथल में से उसे ऐसा घटनाक्रम चुनना होगा, जिसमें वह एकता का आभास दे सके और जिसमें उसे कलात्मक अभिव्यक्ति के योग्य महत्त्व प्रतीत हो।

वास्तविक जीवन से लिए हुए कुछ पात्रों और कार्यों को उसे अलग करके रखना होगा; उसे उन्हें संक्षिप्त करना और परस्पर सम्बद्ध करना होगा। उसे उन सब बाह्य और महत्त्वहीन परिस्थितियों को दूर रखना होगा जिनका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से उन पर नहीं पड़ता। इस प्रकार दूर रख कर ही वह प्रस्तुत कार्य-व्यापार पर हमारा ध्यान केन्द्रित रख सकेगा। वह कथा से बाहर के व्यक्तियों और कार्यों की उपेक्षा करने के लिए बाध्य है। इन चुने हुए पात्रों के कार्यों को इस प्रकार निरूपित करना उसका कर्तव्य है कि उनके कार्य उन्हीं के द्वारा निश्चित जान पड़ें और उन पर बाहरी दुनिया का कोई प्रभाव प्रतीत न हो।

यहाँ पर कलाकार को जीवन के तथ्यों से दूर जाना होगा, और मानो एक प्रकार के समझौते द्वारा दर्शक उसे यह करने का अधिकार देते हैं। जीवन में ऐसे मनुष्य नहीं होते जो अपने साथियों से अलग, स्वसीमित और मानवता के प्रभाव से मुक्त हों।

हम यह जान ही जाते हैं कि हर स्त्री-पुरुष अस्तित्व की उलझी हुई जटिलता में आदि काल से फँसा है, और हम सब अन्य पुरुषों के असंख्य कार्यों से निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं। फिर भी जब हम नाटक देखते या उपन्यास पढ़ते हैं तो वास्तविक जीवन से इस प्रकार दूर जाने की अनुमति ही नहीं देते, उसकी माँग करते हैं। हम चाहते हैं कि कलाकार अपनी कला के लिए उपयुक्त रूढ़ियों से लाभ उठाए।

हम कलाकार से वास्तविक तथ्य नहीं चाहते, वरन् आधारभूत सत्य चाहते हैं जिसके साथ कुछ तथ्य स्वयं ही आ जाते हैं। हम चाहते हैं कि वह पात्रों के समूह को चुन ले, उन्हें शेष मानवता से अलग कर ले, जिससे हम उसके द्वारा प्रस्तुत कथा को अधिक सरलता से समझ सकें। हम विलगीकृत पात्रों के विलगीकृत कार्य-व्यापार को ही देखना चाहते हैं, और जो वास्तविक नहीं है, उसे वास्तविक की भाँति प्रस्तुत करने की निपुणता के लिए कलाकार की प्रशंसा करते हैं। जैसा विक्टर ह्यूगो ने क्रॉमवेल की भूमिका में कहा था 'कला का क्षेत्र प्रकृति के क्षेत्र से बिलकुल अलग है, क्योंकि कला का यथार्थ प्रकृति के यथार्थ से भिन्न होता है।'

नाटककार और उपन्यासकार जनता से जो चाहें, उसे चुनने की, उसे जिस प्रकार चाहें प्रस्तुत करने की और जिसकी तात्कालिक उपयोगिता न हो उसे छोड़ देने की अनुमति चाहते हैं; और वे इस प्रकार करते हैं कि एक ही घटनाक्रम में भाग लेने वाले, एक-दूसरे से सम्बन्धित तथा बाहरी दुनिया से किसी भी बाधा के अथवा संयोग के बिना आगे बढ़ते हुए पात्रों के वर्ग की ओर जनता अपना ध्यान केन्द्रित कर सके। जनता इसकी सहर्ष अनुमति देती है; वह चाहे रंगमंच पर हो चाहे पुस्तक में, कथा में अनावश्यक बातों और बाहरी दुर्घटनाओं से— जो वास्तविक जीवन के लिए नितान्त स्वाभाविक हैं—मुक्त एक ही विचार का विकास देखना चाहती है।

बचपन में हम सरलता से असम्भव और असम्भाव्य की कथाओं से प्रसन्न होते हैं, हममें से कुछ तो बचपन की इस आदत को कभी छोड़ नहीं पाते। परन्तु जैसे-जैसे हम उम्र में, बुद्धि में, और दुनिया के ज्ञान में बढ़ते जाते हैं, हममें से अधिकतर वास्तविकता पर अधिक ज़ोर देने लगते हैं, और चाहते हैं कि लेखक सम्भाव्य से बहुत दूर न जाय। परंतु हममें से कोई भी उस लेखक का स्वागत नहीं करेगा जो केवल पूर्ण यथार्थ का निरूपण करे या जो अपने पात्रों के विषय में केवल सत्य ही बताए और उनसे अपने अस्तित्व का सदा पालन करवाए—सदा वही करवाए जो उन्हें करना चाहिए, और उन सब बातों को न रखे जो वास्तव में वे न करते।

हम उन नाटकों और उपन्यासों को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं जिनमें हमें ऐसा लगता है कि कुछ भी अकस्मात् नहीं घटा। लेखक के किसी महत्त्वपूर्ण स्थिति में हस्तक्षेप करने से भी नहीं घटा; और जिसमें प्रत्येक पात्र का प्रत्येक कार्य, दी हुई परिस्थितियों में, इतना स्वाभाविक लगे कि और कुछ हो सकना असम्भव प्रतीत हो। साहित्य के महान् ग्रंथों का यही अन्तिम सत्य, यही स्थायी तथ्यपरता, यही अद्वितीय अनि-

वार्यता—हमें हर्षित करती है—सॉफॉक्लीज़ के **ईडिपस** में, शेक्सपियर के **मैकबेथ** में, मोलियर के **तारत्युफ** में, स्काट के **हार्ट ऑफ़ मिडलोथियेन** में, हॉथॉर्न के **स्कारलेट लेटर** में, तुर्गनेव के **स्मोक** में और टालसटाय के **ऐना कैरेनीना** में।

यद्यपि नाटककार और उपन्यासकार दोनों ही इस नैतिक मानदण्ड के आधार पर परखे जाते हैं और दोनों ही सत्य कथन के लिए बाध्य हैं, फिर भी सौन्दर्य-शास्त्र की दृष्टि से नाटक-लेखक का काम कथा लेखक के काम से अधिक कठिन है। उसकी व्याख्याएँ केवल सार-रूप में दी जा सकती हैं, और उसके पात्रों को अपने कार्यों के द्वारा अपने को स्पष्ट करना होगा। नाटककार के लिए बिना संयोग, या ऐसे किसी कार्य का आश्रय लिए बिना जो पात्र की स्वाभाविक इच्छा का परिणाम हो, अपने कथानक को जितना चाहिए उतना द्रुत और स्पष्ट बनाना कठिन ही नहीं कभी-कभी तो असम्भव हो जाता है। जहाँ हम उपन्यासकार से नियमों को पूर्णरूप से पालन करने की माँग करते हैं, वहाँ नाटककार के लिए हम नियमों को कुछ ढ़ीला भी कर दे सकते हैं; इस बात का प्रमाण यह है कि हम महान् नाटकों में जिस प्रकार संयोग या लेखक द्वारा स्वेच्छा का आश्रय लेने को क्षमा कर देते हैं, उस प्रकार उतने ही उच्च स्तर के उपन्यास में नहीं कर सकते।

उदाहरण के लिए **रोमियो और जूलियट** त्रासदी है, और त्रासदी में संयोग पर कुछ भी निर्भर नहीं होना चाहिए, सभी कुछ पात्रों की सचेत इच्छा के परिणाम-स्वरूप घटित होना चाहिए। फिर भी हम यह देखते हैं कि कथा का मृत्युपरक अन्त, जो दोनों प्रतिद्वन्द्वी वंशों की शत्रुता में निहित प्रतीत होता है, केवल संयोगवश ही घटित होता है। यदि पादरी लारेंस ने दवा वाली युक्ति रोमियों के जूलियट से विलग होने के दो क्षण पहले सोच ली होती अथवा जो पत्र पादरी लारेंस ने रोमियो के पास भेजा था, वह ग़लत स्थान पर न चला गया होता, तो रोमियो को ज्ञात हो जाता कि जूलियट मरी नहीं है वरन् सो रही है, और तब न उसने विष खाया होता और न जूलियट ने उसके मृत शरीर पर प्राण दिए होते। हाल में एक आलोचक ने इसको शेक्सपियर की कला-कुशलता का एक प्रमाण बता कर यह कहा है कि इससे हमारे सामने यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य के सब कार्यों में संयोग का कितना बड़ा हाथ होता है। यद्यपि वह कथन आविष्कारी बुद्धि का परिचय देता है, परन्तु मूल रूप में ठीक नहीं है, क्योंकि यह प्रकृति की वास्तविकता को कला की वास्तविकता से मिला देता है।

शेक्सपियर की इस त्रासदी में संयोग का समावेश हमें बुरा नहीं लगता, इस के दो कारण हैं। पहली बात तो यह है कि हम निश्चयपूर्वक यह जानते हैं कि दोनों अभागे प्रेमियों पर दुर्भाग्य मँडरा रहा है, और चाहे रोमियो को विष के सम्बन्ध में ज्ञात हो भी जाता तो भी किसी न किसी कारण से मृत्यु होती। दूसरे शेक्सपियर बड़ी कुशलता से यह बताने लगते हैं कि पत्र रोमियो तक क्यों नहीं पहुँचा। यह पत्र ऐसी वस्तु है जिसे हम

देखते नहीं हैं, जिसके विषय में सुनते भर हैं। नाटक में उस बात पर हमारा ध्यान जाता है जिसे हम देखते हैं; जिसके विषय में बातचीत की जाती है उसका कोई प्रभाव मन पर नहीं पड़ता; निरे शब्द एक कान में पड़ते हैं दूसरे से निकल जाते हैं और इसे शेक्सपियर से अधिक कोई न जानता था।

रोमियो और जूलियट में कथा का अन्त, इस प्रकार, मनमाने संयोग द्वारा होता है। शेक्सपियर के कुछ अन्य नाटकों में भी कार्य-व्यापार एक विशेष प्रकार का इसलिए होता है कि कोई पात्र लेखक की इच्छा से संचालित होकर ऐसा काम करता है जिससे कथानक आगे बढ़ सके। यदि लेखक की इच्छा से परिचालित ये पात्र नाटक के प्रमुख पात्रों में से हैं, तो उनका कार्य हमारा ध्यान अवश्य आकर्षित करेगा और हम उसे अवश्य देखेंगे। परन्तु यदि ये पात्र महत्त्वपूर्ण नहीं हैं तो हम उन पर ध्यान नहीं देंगे; और हो सकता है कि उनके सत्य से विमुख होने पर भी हमारा ध्यान न जाय। पहली स्थिति में उनके व्यवहार का असत्य इतना स्पष्ट कर दिया जाता है कि नाटक का मूल व्यापार ठीक नहीं चल पाता, परन्तु दूसरी स्थिति में हम प्रमुख पात्रों का भाग्य-विधान देखने में इतने मग्न हो जाते हैं कि हमें पात्रों के उन अनुचित कार्यों का ध्यान भी नहीं रहता जो केवल नाटक की कथा को आगे बढ़ाने के लिए हैं।

उदाहरण के लिए **एज़ यू लाइक इट** में अत्याचारी ड्यूक और ऑलिवर—आरलैंडो के अग्रज—का व्यवहार तर्क-संगत नहीं है; कम से कम उसे इस प्रकार प्रस्तुत नहीं किया गया कि उनकी चारित्रिक विशेषताओं को देखते हुए यह व्यवहार हमें स्वभाविक प्रतीत हो। ड्यूक और ऑलिवर को नाटक में लाने का प्रयोजन तभी पूरा हो जाता है जब उनकी मिथ्या पर आधारित ईर्ष्या के कारण फ़ारेस्ट आफ़ आर्डेन में रोज़लिंड और आरलैंडो का मिलन हो जाता है। और नाटक के अन्त में उसका अकस्मात् पश्चाताप करना, पलक मारते उसका कायाकल्प हो जाना, हमें चिंतित नहीं करता, क्योंकि हमें इसकी कोई परवाह नहीं है कि वे क्या करते हैं, और उनके व्यवहार में कितना अन्तर्विरोध है। इसी प्रकार **मच अडू अबाउट नथिंग** में डॉन जॉन और बोरोशियो के दाँवपेंच प्रयोजनहीन से जान पड़ते हैं, कम से कम उनकी जान-बूझकर की हुई दुष्टता नाटककार और दर्शकों द्वारा स्वीकार कर ली जाती है। नाटक के प्रति उनके षड्यन्त्र का कारण थोड़े में बता दिया जाता है, और उसे सम्भाव्य बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। यदि हम कथानक की रचना को कौतूहल से देखें तो इस कमज़ोरी का हमें पता लग सकता है, परन्तु हम पता करने में कोई रुचि नहीं लेते। हम बेनेडिका और बियेट्रिस की वाक्पटुता के द्वन्द्व में लीन हो जाते हैं कि हमें उन छोटे किन्तु आवश्यक पात्रों को प्रेरणा देने वाले तत्वों को देखने का अवकाश नहीं रहता, जिनके कारण कामदी की आश्चर्यजनक चरमसीमा घटित होती है।

दूसरी ओर लेखक की इच्छा पर संचालित पात्र यदि कथा के लिए अनिवार्य हो, और रंगमंच पर प्रमुख बन जाय तो हमें कार्य को देखना पड़ता है, और उसके

अपर्याप्त प्रयोजन से प्रेरित कार्यों को देखकर चिढ़ होती है। जब लेखक का मनमाना परिचालन स्पष्ट हो जाता है तो नाटक में हमारी रुचि नहीं रहती। उदाहरणार्थ विन्टर्स टेल में लियनटेसकी तीव्र ईर्ष्या और प्रचंड क्रोध हमें अब बीसवीं सदी में ज़बरदस्ती का और अनुचित लगता है। सम्भव है कि एलिज़ाबेथकालीन दर्शकों को अकस्मात् चरित्र परिवर्तन प्रीतिकर लगता हो, जिनके लिए प्रारम्भ में यह नाटक रचा गया था, और जो सब प्रकार के आश्चर्यों के लिए तैयार रहते थे, चाहे वे आश्चर्य चरित्र की तर्क-संगति के विरोधी ही क्यों न हों। परन्तु आज हम प्रत्येक चरित्र का तर्क-संगत विकास देखना चाहते हैं: और यदि उसकी निरन्तरता नष्ट होती है, तो अधिक संभाव्य बनाने के उचित प्रयत्न न करने के लिए हमें लेखक पर रोष होता है।

6

ये उदाहरण शेक्सपियर से लिए गए है, परन्तु ये किसी भी आधुनिक नाटक-लेखक से लिए जा सकते थे। पैट्री सार्दू का सबसे महत्त्वपूर्ण नाटक है। यह एक ऐतिहासिक नाटक है जो नीदरलैंड्स द्वारा स्पेन से निरन्तर मोर्चा लेने की पृष्ठभूमि में लिया गया है। नाटक दुःखपूर्ण स्थितियों और कुशल काल्पनिक प्रसंगों से पूर्ण है, परन्तु नाट्यशाला में सदैव असफल रहा है; क्योंकि नायिका, जिसके सहारे नाटक की कथा आगे बढ़ती है, बहुत बार इस प्रकार का व्यवहार करती है जो उसके चरित्र के लिए स्वाभाविक नहीं, वरन् लेखक के मनमानेपन के कारण घटित जान पड़ता है। भले-ही सामान्य दर्शक नाटक का आनन्द न ले सकने का यह कारण स्पष्ट न कर सके परन्तु उसे मन ही मन यह अनुभव अवश्य होता है कि कहीं कुछ त्रुटि है।

यदि नाटक का केन्द्रीय पात्र दर्शकों के सम्मुख मनमाना आचरण करे जिससे कि दर्शक के सामने उसके चरित्र का आत्मविरोध स्पष्ट हो जाय तो दर्शकों की सहानुभूति निश्चय ही कम हो जाएगी और नाटक की सफलता में बाधा पड़ेगी, जब तक कि केन्द्रीय पात्र इन दोनों प्रकार के चरित्रों में से न हो,एक तो यह कि वह पात्र पहेली-सा जटिल हो, यहाँ तक कि दर्शक उसे समझ ही न पाए और इसलिए उसे स्वीकार कर लें; अथवा वह नाटक का खलनायक हो, तब तो दर्शक सभी प्रकार का विचित्र व्यवहार स्वीकार कर लेंगे।

हैमलेट सब प्रकार के प्रमुख पात्र का सबसे उपयुक्त उदाहरण है, जो लेखक द्वारा परिचालित और पहेली-जैसा है, हेडा गेबलर भी इतनी-ही महत्त्वपूर्ण है। हैमलेट सूक्ष्म भावव्यंजना वाला और परिवर्तनशील चरित्र है और हमें पता नहीं चलता कि वह आगे क्या करेगा। हैडा विचित्र, अपकृत और सनकी-सी स्त्री है, और हम, जैसी भी वह है, उसे स्वीकार कर लेते हैं, उसकी बहुत-सी ऐसी बातों को सहन कर लेते हैं जो दूसरी स्त्री में सहन नहीं करेंगे। जब हम इब्सन के इस नाटक को पुस्तकालय

में बैठकर पढ़ते हैं, तब जान पाते हैं कि नायिका के एक से अधिक कार्य, जो नाट्यशाला में स्वतः उद्भूत प्रतीत होते हैं, लेखक की इस इच्छा के परिणाम हैं कि वह अंत में उसकी मृत्यु दिखाना चाहता है।

इयागो ऐसे महत्त्वपूर्ण पात्र का सर्वोत्तम उदाहरण है जो बिना नाटक में हमारी रुचि को कम किए विषम व्यवहार करता है। ऑथेलो के प्रति इयागो की घृणा इस कथानक का मुख्य स्रोत है, और इसे शेक्सपियर स्वयं-सिद्ध मानते हैं। यह सच है कि वे इसकी व्याख्या करने और उचित सिद्ध करने की आवश्यकता अनुभव करते हैं। वह इसके तीन या चार अलग-अलग कारण बताते हैं परन्तु उनमें से कोई भी ठीक नहीं जँचता। उनमें से एक तो बिलकुल मूर्खतापूर्ण है कि इयागो ऑथेलो और इमीलिया के बीच कोई दुस्सम्बन्ध होने का सन्देह होने के कारण ईर्ष्या करता है। सब साथ मिलकर भी इयागो द्वारा प्रतिशोध में किये गए पाशविक कृत्य का कारण नहीं बन पाते।

परन्तु हम इस पर कोई आपत्ति नहीं करते, क्योंकि हम इयागो को मूर्तिमान बुराई समझते हैं, जो कोई भी क्रूर कार्य कर सकता है, जो बिना किसी हिचक और बिना किसी कारण के विनाशकारी कार्य कर सकता है, केवल अपनी दुष्ट आत्मा के कारण। नैतिक दृष्टि से ऐसे कुरूप पात्र द्वारा किसी भी प्रकार का आचरण हमें आश्चर्यान्वित नहीं करता।

परन्तु केवल खलनायक या पहेली-जैसे पात्र को ही हम ऐसे विषम व्यवहार के लिए क्षमा कर सकते हैं। साधारणतया नाटक के नायक-नायिका को हमारे मानदंडों के अनुसार प्रकृत ही होना होगा। उन्हें वास्तविक जीवन-आचरण के समान-ही आचरण करना चाहिए, नहीं तो हमें उनसे सहानुभूति नहीं होगी। यदि नायक और नायिका हमारे नेत्रों के सम्मुख बराबर इस प्रकार आचरण करते हैं, जो हमें असंगत लगता है तो कथा में हमारी रुचि कम होती-होती बिलकुल समाप्त हो जायगी। यही प्रमुख कारण है जिससे ब्राउनिंग का **ब्लाट इन द स्कचन** इतना सशक्त होते हुए भी नाट्यशाला में सफल नहीं हो सका। ब्राउनिंग अकेला कवि नहीं है जिसने ऐसी भूल की हो। बोमांट और फ़लेचर के नाटकों में असीम करुणा और नाटकीय प्रभाव से युक्त दृश्य हैं, परन्तु उन लेखकों ने संभाव्यता का ध्यान नहीं रखा और असम्बद्ध घटनाओं को असावधानी से नाटकों में रख दिया है, उनके किसी भी नाटक में कोई भी पात्र किसी भी समय कितना ही असम्बद्ध कार्य कर सकता है।

अस्वाभाविक और अनोखे के प्रति आकर्षण त्रासदी नाटककारों में भी मिलता है। शायद उनमें से बहुतों को यह लगता है कि साधारण जीवन इतना सामान्य है कि जब तक विचित्र अनहोनी बातों का चित्रण न किया जाय, नाटकीयता आ ही नहीं सकती। उदाहरण के लिए कार्नाइ नितान्त असंभव घटनाक्रम ढूँढ़ता था और इतिहास से निकालता था, क्योंकि तथ्य तो कल्पित से अधिक विचित्र होते हैं। शिलर

के रॉबस में कार्ल मूर अपने दुष्ट भाई के तनिक से संकेत पर अत्यन्त निकृष्ट बात पर विश्वास कर लेता है, यद्यपि नायक को भलीभाँति पता है कि ऐसे स्रोत से प्राप्त सूचना पर कुछ भी ध्यान न देना चाहिए। फिर भी शिलर की कथा में इतना वेग है कि दर्शकों को यह असंगति देखने का समय नहीं मिल पाता। विक्टर ह्यूगो बराबर असंभाव्यताओं का उपयोग करता था। उनके रूई ब्लास का लगभग प्रत्येक पात्र लेखक द्वारा परिचालित है और बिरली-ही घटना ऐसी है जिसमें किसी-न-किसी रूप में लेखक का हस्तक्षेप न हो, परन्तु जिस लयपूर्ण छंद में ये पूर्व-निश्चित घटनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं, उसमें इतना आकर्षण है कि नाटक अपनी कृत्रिमता में भी प्रीतिकर लगता है।

दूसरी ओर इब्सन सामान्य के आंतरिक महत्त्व को अभिव्यक्ति देना और जीवन की हलचल के पीछे छिपी त्रासदी को उघारना चाहते थे। घटनाओं की जैसी स्वेच्छाचारिता और संयोगिकता ह्यूगो के नाटकों में अंतिम सीमा तक पहुँच जाती है, वह इब्सन के तथ्यपरक सामाजिक नाटकों में न्यूनतम है। फिर भी इब्सन के नाटकों में भी कभी-कभी असंगत घटनाएँ आ जाती हैं, और **डॉल्स हाउस** के अन्तिम अंक में नोरा का अचानक चरित्र-परिवर्तन कुछ आलोचकों को उसके चरित्र में विरोधात्मक नहीं तो ऐसा तो लगता ही है जिसके लिए समुचित तैयारी नहीं की गई। **पिलर्स ऑफ़ सोसायटी** में कॉसंल बर्निक की स्वीकारोक्ति और आत्म पतन उसके जैसे आत्म-तुष्ट और स्वार्थी चरित्र में असंगत लगता है। इब्सन के इन दोनों नाटकों में स्वेच्छाचारिता का यह तत्व अन्तिम अंक में मिलता है; नाटक में हमारी जो रुचि प्रारम्भ की कथा की तथ्यपरकता से जागती है, बनी रहती है।

यदि लेखक स्वेच्छाचारिता का आश्रय लिए बिना अपना कथानक नहीं गढ़ सकता तो यही उचित होगा कि वह अरस्तू की सलाह माने और वह स्वेच्छाचारी घटनाएँ नाटक प्रारम्भ होने के पहले की कथा में रख दे। सर आर्थर पिनरो ने **हिज हाउस इन आर्डर** में यही किया है। इसकी कथा दूसरी पत्नी की इस जानकारी के ऊपर केन्द्रित रहती है कि पहली पत्नी ने कुछ बेवफ़ाई की थी। यहाँ ज़बर्दस्ती समाविष्ट चरित्र पहली पत्नी का है, और वह नाटक के प्रारम्भ के पहले ही मर चुकी है। **ईडिपस द किंग** में सॉफ़ॉक्लीज़ ने दो हज़ार बरस पहले यही किया था। भविष्यवाणी हुई थी कि ईडिपस अपने पिता को मार कर माता से विवाह करेगा, और नाटक के प्रारम्भ होने के पहले यह भविष्यवाणी पूरी हो चुकी है। यदि ईडिपस ने कभी इओकास्टा के पहले पति के मरण के विषय में पूछा होता तो वह इस जघन्य कृत्य से बच जाता। परन्तु उसने पूछा होता तो नाटक ही नहीं हो सकता था। जब हम पूरी कथा को देखते हैं तो हमें यह बात नितान्त असम्भावित लगती है कि उस भविष्य वाणी के बाद भी इओकास्टा ऐसे व्यक्ति से विवाह करे जो उसके पुत्र की आयु का हो। यूनानी नाटककार को इस आचरण की कोई व्याख्या नहीं करनी पड़ी क्योंकि वह ऐसी कथा

को नाटक का रूप दे रहा था जिसे एथेंस की जनता बहुत दिनों से जानती थी। कथा में असंभाव्यता थी तो नाटक में होनी ही थी और चतुर सॉफॉक्लीज़ ने उसकी व्याख्या करने में समय नहीं नष्ट किया। इस स्थान में वह आधुनिक नाटककारों से अधिक चतुर है जिन्होंने यही कथा ली है और उसकी व्याख्या करने में—असंभाव्य को थोड़ा कम असम्भाव्य सिद्ध करने के प्रयत्न में व्यर्थ का श्रम किया है, जिसका परिणाम केवल यही हुआ कि दर्शकों का ध्यान उस बात पर अटक जाता है, जिसे वैसे वह स्वीकार ही कर लेते।

ये दोनों ज़बर्दस्ती लाई गई स्थितियाँ—लायस के हत्यारे का ईडिपस द्वारा न पता लगाया जाना, और इओकास्टा का अपने से इतने छोटे युवक से विवाह करना—इस कथा के आधार हैं। इन दोनों बातों को स्वीकार करना असंभव भले ही हो, परन्तु यदि हम नहीं स्वीकार करते तो उस पर आधारित नाटक भी अस्वीकृत हो जायगा। सार्से की एक महत्त्वपूर्ण खोज यह थी कि दर्शक कभी नाटक के आधार के विषय में बहुत प्रश्न नहीं पूछते। दर्शकवृन्द कथा के उद्‌घाटन में तो नितान्त असम्भव प्रतीत होने वाली स्थिति को भी स्वीकार कर लेंगे; वे तो ऐसे जुड़वाँ भाइयों का अस्तित्व मान लेंगे जिनकी पत्नियाँ भी उन्हें पहचान नहीं पातीं (जैसे **कामेडी आफ़ एरर्स** में); अथवा लेखक के इस कथन को भी अमान्य नहीं करेंगे कि एक घुमक्कड़ अंग्रेज़ की शक्ल-सूरत पूर्ण रूप से सम्राट् से मिलती है (जैसे **प्रिज़नर ऑफ़ ज़ेन्डा** में)। वे शान्ति से बैठकर प्रतीक्षा करेंगे कि आगे क्या होता है, और लेखक को वह जितनी छूट चाहे, दे देंगे; परन्तु वे यह देखेंगे कि नाटक में वह उस छूट का उपयोग किस प्रकार करता है। यदि इस प्रकार की ज़बरदस्ती लाई हुई स्थिति पर आधारित नाटक दर्शकों को रोचक लगता है, और कथा के आगे बढ़ने पर उनको उसमें लीन रखता है तो वे इसके कृत्रिम आधार को भूल जाएँगे और उन्हें शिकायत करने का अवकाश नहीं रहेगा। दूसरी ओर यदि नाटक जी उबाने वाला और थकाने वाला होगा तो उनका ध्यान बँट जायगा, और उन्हें इसके कृत्रिम आधार के विषय में सोचने का समय मिल जायगा। और तब वे क्रोध में उठकर लेखक को धिक्कारेंगे जिसने सोचा था कि ऐसी मिथ्या पर आधारित किसी बात पर उनकी रुचि कभी हो भी सकती थी।

दसवाँ अध्याय

नाटक का विश्लेषण

1

नाटक का प्रदर्शन देखने पर अथवा पुस्तकालय में उसे पढ़कर उसके विषय में काल्पनिक चित्र बनाने पर, हम देखते हैं कि नाटक या तो हमें अच्छा लगा है या बुरा। उसके गुरा-दोषों के सम्बन्ध में हमारे अपने मत होते हैं; परन्तु इस मत को संतोषजनक ढँग से व्यक्त करने अथवा इसके काररणों को बताने में हम अपने को असमर्थ पाते हैं। अपने अनुभूत भावों के विश्लेषरण की इच्छा हो सकती है, अथवा अपने भीतर जो आस्था है उसको उचित ठहराने की भी इच्छा हो सकती है। यदि नाटक हमें अच्छा लगा तो हम जानना चाह सकते हैं कि क्यों अच्छा लगा। आगे चलकर हम यह भी जानना चाह सकते हैं कि हमारा आनन्द उचित था या नहीं। उसका स्रोत क्या था। क्या नाटक उतना ही अच्छा है जितना हमें लगा था ? हमें यह लग सकता है कि इस नाटक को हमें पसंद करना चाहिए था, और इसमें हमारी रुचि नहीं हुई तो दोष नाटक में है या हममें ? दूसरी ओर यह भी हो सकता है कि हमने उसका आनन्द लिया हो परन्तु पूरे समय हमारे मन में यह संदेह रहे कि यह हमारे पसन्द करने योग्य न था। संक्षेप में नाटक की परीक्षा का उचित आधार क्या है ?

बुद्धिमानी का अर्थ है अपने प्रति ईमानदारी। हमारे मतों का आधार हमारे ऊपर पड़े हुए प्रभाव होना चाहिए, नहीं तो निश्चय ही हम सच्चाई से दूर हो जाएँगे, और वास्तविकता की हमारी पकड़ कमज़ोर हो जायगी। पहले तो यह प्रश्न पूछना चाहिए क्या यह नाटक हमें रोचक लगा है ? यदि हाँ, तो क्यों ? रुचि और अरुचि सरलता से जानी जा सकती है। यदि हमने नाटक को प्रदर्शित होते देखा है तो कब हमारा ध्यान कम होने लगा था। यदि इसे हमने केवल पुस्तकालय में पढ़ा है तो कब कार्य-व्यापार को कल्पना में देखना असंभव हो गया था और कब हम उसे शीघ्रता से पढ़कर पन्ने उलटने लगे थे ? इस सम्बन्ध में हम एक ऐसी युक्ति का उपयोग कर सकते हैं, जो पहली दृष्टि में बहुत किताबी-सी प्रतीत होगी परन्तु जो बड़ी व्यावहारिक और उपयोगी है। हम नाटक पढ़ते समय उसके साथ-साथ अपनी रुचि का एक नक़्शा बना सकते हैं। हम एक रेखा खींचें जो नाटक में जैसे-जैसे रुचि बढ़े ऊँची उठे और जब रुचि कम हो तो सीधे चले और जब हम ऊबने लगें तो रेखा नीचे की ओर मुड़

जाय। रुचि का यह रेखाचित्र हमें बता देगा कि नाटक के प्रति हमारी प्रतिक्रिया कैसी रही है।

नाटककार को पहले अंक में कथा का अनावरण करना होता है, विभिन्न पात्रों का परिचय कराना होता है, हमें उनके पिछले जीवन और वर्तमान इच्छाओं के बारे में बताना अथवा संक्षेप में कथा को प्रारम्भ करना होता है। अतः हमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए यदि शुरू के दृश्यों में रुचि की रेखा समतल ही चले। परन्तु प्रथम अंक की समाप्ति के पहले इसे ऊपर उठना चाहिए और अंतिम अंक के पहले इसे फिर नीचे नहीं आना चाहिए। अंत में जब दर्शकों को कथा का पता चल जाता है, तब रुचि-रेखा के फिर कुछ समतल हो जाने की सम्भावना है। तीन अंकों के सुगठित आधुनिक नाटक में तीन भागों में विभाजित रुचि-रेखा इसी प्रकार की रहनी चाहिए—

क

इस रेखा-चित्र से सामान्य दर्शक की रुचि का बढ़ना-घटना ठीक से प्रकट हो जायेगा। यही रेखा यूनानी दर्शकों की त्रासदी की रुचि को स्पष्ट कर सकती है, सिवा इसके कि वह अधिक तेज़ी से उठेगी और अधिक सुनिश्चित रूप से नीचे होगी क्योंकि यूनानी दर्शक अपने कोमल कलात्मक बोध के कारण समाप्ति के क्षण पर एकदम से तनाव कम कर देते थे। सॉफ़ॉक्लीज़ के **इडिपस द किंग** की रुचि-रेखा इस प्रकार होगी—

ख

उपर्युक्त महान् यूनानी नाटक की भाँति गम्भीरता और अनिवार्यता से युक्त एक आधुनिक नाटक भी है—इब्सन का **गोस्ट्स**; परन्तु स्कैंडिनेविया के नाटककार ने अंत में तनाव कम नहीं किया। उसने इसे नाटक की सीमा के बाहर भी जाने दिया, और दर्शकों को यह सोचते हुए छोड़ा कि पर्दा गिरने के बाद क्या होगा ? अतः इसकी रुचि-रेखा इस प्रकार दिखलाई जा सकती है—

ग

हैमलेट में हमारी रुचि प्रारम्भ से ही निरन्तर बढ़ती जाती है। एल्सिनोर की रण भूमि पर अति प्रभावशाली प्रथम दृश्य आसन्न नाश का वातवरण बना देता है; चौथे अंक में रुचि थोड़ा कम होती है और हैमलेट की मृत्यु के पश्चात् यूनानी नाटकों की भाँति समतल हो जाती है। रेखा-चित्र इस प्रकार होगा—

घ
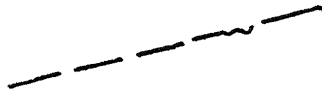
ऑथेलो में कथा का उद्घाटन द्रुत और आकर्षक है और प्रथम अंक में रुचि बराबर बनी रहती है। परन्तु दूसरे अंक में कथा साइप्रस में घटित होती है, कई दृश्यों के बाद नाटककार उस पहली तीव्रता तक दृश्यों को ले जा पाता है। और जब से रुचि फिर से जागृत होती है तब से नाटक के अन्तिम शब्द तक बढ़ती ही जाती है। रेखाचित्र से स्पष्ट होगा—
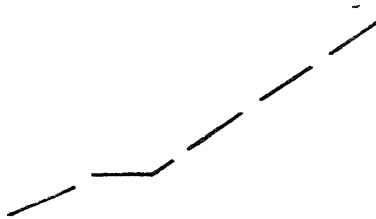
अपने दो नाटकों हरनानी और रुईब्ला में विक्टर ह्यू गो सम्मिलित प्रभाव के प्रति इतने उदासीन थे कि इनके चौथे अंकों में ऐसी कथा सामग्री आ गई है, जो मुख्य विषय से सम्बद्ध न थी—

हरनानी का चित्र—

च

रुईब्ला का चित्र—

छ
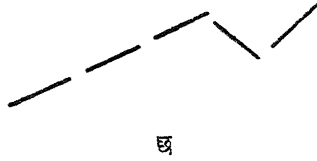
इस चित्र से स्पष्ट हो जाएगा कि क्यों इस नाटक के फ़ोस्टर और एडविन बूथ द्वारा प्रदर्शित अंग्रेज़ी रूपान्तरण में केवल चार ही अंक थे, अरोचक अंक बिलकुल छोड़ दिया गया था।

हाप्टमान के वीवर्स में, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामाजिक नाटक है, प्रभाव की एकाग्रता तो है परन्तु कथा का केंद्रीकरण नहीं है। विभिन्न अंकों में अपनी रोचकता है, परन्तु पूरा कथानक संगत और सम्बद्ध नहीं है। यह चित्र से स्पष्ट हो जाएगा—

ज
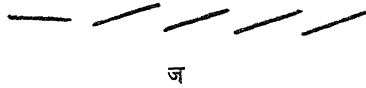
कभी-कभी हमें ऐसा नाटक देखने को मिलता है जो बिलकुल असफल होता है और उसमें हमारी रुचि जागृत नहीं होती। और तब हमें इस प्रकार का चित्र बनाना होगा—

— — — — —

झ

अथवा और भी बुरा :

अ
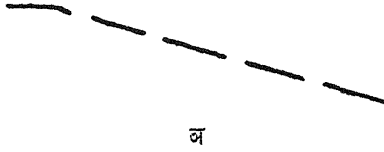
नाटक में हमारी रुचि के ये रेखाचित्र केवल नाटक-रचयिता के कौशल की परीक्षा के साधन हैं। रेखाचित्र नाटक के रूप-बंध का परीक्षण है, उसकी विषय-वस्तु का नहीं। और कला की प्रत्येक कृति के विषय में केवल रूप-बंध नहीं, विषय-वस्तु भी देखकर निर्णय दिया जाना चाहिए। महान् नाटक तभी महान् है, जब उसमें उच्चस्तर की विषय-वस्तु सुन्दर रूप-बंध में उपस्थित की जाती है। नाटककार को दर्शकों की रुचि जागृत करने और बनाए रखने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए, कथानक के उच्च स्तर के होने के कारण ही उसे नाटकीय कला सीखने से मुक्ति नहीं मिल सकती। यदि वह अपने भावों को नाटक का रूप देना चाहता है तो उसे नाट्यशाला के निर्णयों को स्वीकार करना होगा। इससे उसके लिए छुटकारा नहीं है क्योंकि उसने स्वयं ही अपने समकालीन दर्शकों को निर्णायकों के रूप में चुन लिया है। उसके पास कितने ही महत्त्व का सन्देश हो, मानव जीवन के सम्बन्ध में अपनी दृष्टि भी हो, उसके पास अपना दर्शन भी क्यों न हो, परन्तु जब तक वह नाट्य-संरचना की कला सीख नहीं लेता, इन बातों का समावेश नाटक में नहीं कर सकता। उसकी सामग्री का उच्च स्तर शिल्प सम्बन्धी न्यूनताओं की क्षतिपूर्ति नहीं कर सकता। उसे अपने समय के रंगमंच की पद्धतियाँ सीखनी होंगी, अपनी कथा को अभिनेता और नाट्यशाला के साथ समंजित करना होगा और उन दर्शकों के मतों और पूर्वाग्रहों का भी ध्यान रखना होगा जिनके आनन्द के लिए वह काम कर रहा है।

2

नाट्यशाला में एकत्र दर्शकवृन्द की प्रमुख विशेषता यह होती है कि वे तब तक कथा में रुचि नहीं लेते जब तक उनके सम्मुख ऐसी कथा न प्रस्तुत की जाय जिस में संघर्ष हो, मानव ईहा की अभिव्यक्ति हो और विरोधी इच्छाओं के घात-प्रतिघात भी हों। यही संघर्ष—चाहे मोदपूर्ण हो अथवा करुण—नाटक का केन्द्र-बिंदु होता है, और उसे स्पष्ट होना चाहिए, नहीं तो दर्शकों का ध्यान इधर-उधर भटकने लगेगा। यदि हम किसी प्रदर्शन के लिए झ अथवा ञ चित्र बनाते हैं तो हम सम्भवतः यह पाएँगे कि जो नाटक ऐसा लगता है, उसमें संघर्ष नहीं है; पात्र अपने को ही नहीं समझते और घटनाएँ यों ही घटती हैं, पात्रों या परिस्थितियों की संगति से नहीं। यदि हम ज चित्र बनाते हैं तो हमें समझ लेना चाहिए कि नाटक में कोई प्रमुख पात्र

न था, और संघर्ष आंशिक था, संकेन्द्रित और समेकित नहीं। यदि हम सावधानी से उन नाटकों को देखें जिनके लिए ङ, च और छ चित्र बने थे तो हमें सरलता से इसका पता चल जायगा कि समतल या झुकी हुई रेखाएँ मूल संघर्ष से दूर चले जाने के कारण थीं—नाटककार के प्रमुख कथा से अलग हट जाने के कारण, जहाँ से वह फिर लौटकर अपने पहले मार्ग पर आ जाता है।

परन्तु इस प्रकार के चित्र बहुत-से एलिज़ाबेथकालीन नाटककारों के लिए बनाने होंगे, विशेषकर बोमाँट और फ्लेचर के बहुत-से नाटकों के लिए, क्योंकि ये नाटककार अत्यन्त प्रभावशाली स्थितियाँ उत्पन्न करते थे। आजकल हमारे लिए यह बात कुछ आपत्तिजनक हो गई है—चाहे एलिज़ाबेथकालीन दर्शकों के लिए रही हो या नहीं—कि हम एक महत्त्वपूर्ण पात्र को ऐसी बात कहते या करते हुए देखें जो उसके उपयुक्त न हो। हम पात्रों के व्यवहार के लिए सहज बुद्धि और प्रकृत मानवीय व्यवहार का मानक रखते हैं और जब कोई पात्र इस मानक पर पूरा नहीं उतरता, जब हम उसे ऐसा कुछ करते हुए देखते हैं जो स्वाभाविक नहीं है अथवा जो उसके प्रयोजनों के विपरीत है, तभी हमारा ध्यान बँट जाता है। उस क्षण के लिए हम उस कार्य पर विचार करने को बाध्य हो जाते हैं और नाटक से हमारा संपर्क छूट जाता है।

हमारी रुचि एक और कारण से भी कम हो जा सकती है जिसे समझ पाना कठिन होगा। भले ही लेखक ने मनमाना ढँग न अपनाया हो, मुख्य कथा का ध्यान भी रखा हो, परन्तु सम्भव है उसने उन विशेष दृश्यों को नाटक में स्थान न दिया हो, जिनकी आशा हमें रही हो, और जिनको सार्से ने व्यापारमूलक दृश्य कहा है। यदि ऐसा होगा तो हमें ऐसा ही बुरा लगेगा जैसे कि ऐसे आनन्द से वंचित रह जाना जिसका आश्वासन दिया गया हो। हमेशा हमें यह भी मालूम नहीं हो पाता कि हमें किस प्रकार वंचित किया गया है, यद्यपि सोचने पर हम जान जाते हैं कि वह विशेष दृश्य क्या था जिसे हम देखना चाहते थे और देखने को नहीं मिला। यहाँ पर रेखा-चित्र की उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है। उससे पता लग जाता है कि किस स्थल पर हमारी रुचि समाप्त हो गई थी और कहाँ वह स्थल है जिसमें हमें इसका कारण मिलेगा। नाटककार की सहज बुद्धि का सबसे बड़ा परीक्षण कथानक के उन अंशों के चुनने में है जिन्हें कार्य-व्यापार में दिखाना है और जिनका केवल वर्णन करना है। **रोमियो और जूलियट** के रूपान्तरण में गेटे ने मांटेग्यू और कैप्युलेट परिवारों के झगड़े के दृश्य छोड़कर उसका वर्णन मात्र कर दिया है, यह त्रुटि उनकी नाट्य-रचना सम्बन्धी कमज़ोरी को प्रकट करती है।

रुचि कम होने का मुख्य कारण है पुरानी परम्पराओं अथवा ऐसी अस्थायी रूढ़ियों का उपयोग जो एक पीढ़ी पहले भले ही सन्तोषजनक रही हों पर अब हमें स्वीकार्य नहीं रहीं। स्थायी रूढ़ियों को हम सदैव मानते हैं, क्योंकि उन्हें अस्वीकार

करके तो हम स्वयं को वंचित रखेंगे। अस्थायी प्रदर्शन-परिस्थितियों के कारण अस्थायी रूढ़ियाँ भी होती हैं, जो हमें उन परिस्थितियों के समाप्त होते ही व्यर्थ लगने लगती हैं। उदाहरण के लिए छिपकर सुनने की युक्ति अब इतनी पुरानी हो चुकी है कि उसके प्रयोग से हँसी आ जाती है और सहानुभूति नहीं रहती। अब तो यदि हम किसी भद्र पुरुष को दो स्त्रियों की बातें छिपकर सुनते देखें तो हमें तत्काल यह लगेगा कि ऐसा न होना चाहिए था। उस व्यक्ति के प्रति हमारी श्रद्धा नहीं रहेगी और नाटक को उससे हानि पहुँचेगी। नाटककार का कर्त्तव्य है कि वह किसी स्वीकरणीय उपाय से दर्शकों को सूचना दे। दर्शक सदैव अच्छे आचरण और सामान्य ज्ञान के मानकों के आधार पर ही निर्णय करते हैं।

3

ध्यान बँट जाने का एक कारण यह भी है कि दर्शक कभी-कभी यह अनुभव करते हैं कि जो नाटक वे देख रहे हैं वह उस प्रकार का नहीं है जैसी उन्हें आशा थी। एक अच्छा प्रहसन अपने में बिलकुल ठीक है। परन्तु जब हम आचार-कामदी के लिए आमन्त्रित किए जाते हैं, अथवा जब नाटक इस प्रकार प्रारम्भ होता है मानो आचार-कामदी हो, और फिर प्रहसन बन जाता है, और पहले जैसा सूचित किया गया था, उससे कुछ दूसरे ही प्रकार का निकलता है तो हमें आपत्ति होती है। स्वभावतः हम इस प्रहसन पर आचार-कामदी के मानक लागू करते हैं, और परिणाम संतोषजनक नहीं होता। हो सकता है कि आगे-पीछे मानसिक रूप से अपने को अनुकूल बना लें, और प्रहसन को उसके ही रूप में लें न कि उस रूप में जैसा हमने उसे सोचा था, परन्तु बीच में कुछ गड़बड़ी अवश्य लगेगी।

इसी प्रकार जब हम त्रासदी देखने जाते हैं तो त्रासदी के उपयुक्त मानक के अनुसार उस नाटक को देखते हैं और पात्रों के अपने-अपने चरित्रों की दृढ़ तर्क-संगति के अनुसार किये गए कार्यों से आनन्दित होने की हमें आशा होती है। त्रासदी की उदासी उसकी करुणा के कारण और हमारी इस भावना के कारण कि यह आपत्ति भाग्य में लिखी थी—होती है। हमारा आनन्द संयमित भले ही हो, परन्तु उच्च स्तर का होता है और नाटककार की कलात्मक सच्चाई पर निर्भर रहता है। यह उसका कर्तव्य है कि उन भाग्य से लड़ने वाले, अपनी ओर से कुछ न उठा रखने वाले और हारी हुई बाजी पर लड़ते हुए पात्रों के प्रति हमारी सहानुभूति जगा सके। हम लेखक का कथा में ज़बर्दस्ती हस्तक्षेप शीघ्र समझ लेते हैं और उस पर आपत्ति भी करते हैं, क्योंकि इससे उनके त्रासदी पात्र अपने मानवीय तत्त्वों से हीन हो जाते हैं और नाटककार के हाथ की कठपुतली मात्र रह जाते हैं।

यहीं हमें उस संदेह का कारण मिल जाता है जो एक काव्य-नाटक के प्रदर्शन को देखने के पश्चात् हमारे मन को आक्रान्त करता है। हम उसके काव्यतत्व को स्वीकार करते हैं और यह भी अस्वीकार नहीं कर सकते कि लेखन अत्यन्त उच्च स्तर

का है परन्तु यह विस्मय करते रह जाते हैं कि नाटक हममें कोई भाव क्यों नहीं जगा सका। हम अपनी नम्रता में यह भी सोच सकते हैं कि दोष हमीं में है, जो एक उच्च और सूक्ष्म कलाकृति का आनन्द हम नहीं ले पाते। हम जानते हैं कि हमें क्या चाहिए और यह नाटक हमें वह आनन्द नहीं दे सका जो नाट्यशाला में मिलना चाहिए। कभी-कभी दोष हममें हो सकता है; परन्तु कभी-कभी, जैसे ब्राउनिंग के ब्लाट इन द स्कचन में, दोष लेखक का होता है। यदि हम इस नाटक का आनन्द लेने में असमर्थ हुए तो उसका कारण यह है कि ब्राउनिंग अपनी त्रासदी को करुणा के उच्च स्तर पर नहीं रख सके। उच्चाकांक्षी लेखक के नाटक की असफलता का दोष दर्शकों का बहुत कम होता है, यह दोष तो नाटककार का ही होगा क्योंकि वह हमें वह नहीं दे सका जो देना चाहता था।

एक फ्रांसीसी चित्रकार ने अपने साथी से कहा था : "सच्ची कला अभिव्यक्ति का तरीक़ा है, और जिसके पास कुछ कथनीय हो, वह व्यक्ति गद्य या पद्य, मिट्टी अथवा रंग किसी भी रूप में उसे प्रकट करता है।" परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है कि व्यक्ति के पास कहने को कुछ हो, उसे अपने चुने हुए अभिव्यक्ति के माध्यम पर पूरा अधिकार होना चाहिए। उसे जो कहना है वह इस प्रकार कहे कि हम सुनने को बाध्य हो जायँ। उसे अपना कथ्य इतने आकर्षक ढँग से प्रस्तुत करना चाहिए कि हमें उसकी बात सुनने में आनन्द आए, चाहे हम उसे ठीक न भी समझें। उसे सदैव याद रखना होगा कि उसकी विषयवस्तु से तब तक कोई लाभ न होगा जब तक कृति का स्वरूप उसके समकालीनों को संतोषजनक न लगेगा।

4

नाटक का विशालतर सत्य चरित्र-चित्रण की यथार्थता से सम्बन्धित है। क्या सामान्य मानवता का यह चित्र न केवल विभिन्न पात्रों के साथ वरन् हमारे समय के व्यवहारों और तरीक़ों के साथ संगत बैठता है? क्या इसमें जीवन की वह वास्तविकता है जो हम समझते हैं? यदि नाटक में—जिसका उद्देश्य जीवन का चित्र होना है—यथार्थता का अभाव हो तो हमें निराशा होती है। यदि गंभीर नाटक अथवा उच्च कामदी में यथार्थ की कमी होती है, तो ध्यान-लाघव के सिद्धान्त का उलंघन हो जाता है। हम मूक भाव से एक-दूसरे को देखते रह जाते हैं और मंच पर प्रस्तुत कहानी समझ नहीं पाते। हम अपने से पूछते रह जाते हैं कि मंच पर इतने विचित्र ढंग से व्यवहार करने वाले लोग कौन हैं जो सामान्य नियमों के अनुसार नहीं चलते?

हेनरी जेम्स ने एक बार कहा था कि उपन्यास का परीक्षण इस आधार पर हो सकता है कि वह आश्चर्य के भाव जगाता है अथवा परिचय के। यदि वह केवल अपनी कथा की नवीनता अथवा उसकी घटनाओं की आकस्मिकता से ही प्रीतिकर होता है, तो उस उपन्यास से नीचे स्तर का है जो मानव आत्मा की उन तहों में प्रवेश कराता है जिन्हें हम तत्काल सत्य मान लेते हैं, यद्यपि पहले हमने उनको उस रूप में नहीं देखा था। यह

परीक्षरण नाटक के बारे में भी उतना ही सच है। मात्र विस्मय का भाव सूक्ष्मतर परिचय के भाव से सदैव गौरण होता है। हम नाटककार से यह आशा करते हैं कि वह हमारे सम्मुख हमारी व्याख्या प्रस्तुत करे, और अपनी त्रासदी या कामदी दोनों के चरित्रों के छिपे हुए अंशों पर प्रकाश डाले। जब हम एक पात्र को नाटक में कुछ करते अथवा कुछ कहते हुए पायें तो हमें यही लगना चाहिए कि चाहे वह कथन या कार्य असामान्य हो, फिर भी उस विशेष अवसर पर उस पात्र के लिए वही स्वाभाविक था।

निश्चय ही इस परीक्षरण का निम्नस्तर के नाटकों के लिए प्रयोग करना ठीक नहीं है। हमें अतिरंजित नाटक अथवा प्रहसन में परिचय के भाव पाने की आशा न करनी चाहिए, जैसे जासूसी कहानी या भ्रमरण कथा में। कथा और नाटक के इन रूपों में घटनाओं का क्रम और कथानक प्रथम महत्त्व के हैं, और उनसे विशेषकर विस्मय के भाव जागते हैं। इन नाटकों में पात्र कथा के लिए होते हैं, पात्रों के द्वारा कथा का निर्माण नहीं होता। जब हम प्रहसन या अतिरंजित नाटक देखने जायें तो हमें उनमें गम्भीर नाटक अथवा हल्की कामदी की विशेषताओं की आशा नहीं रखनी चाहिए। यदि लेखक ने उनमें प्रहसन और अतिरंजित नाटकों की अनिवार्य विशेषताओं का समावेश कर दिया है तो हमें सन्तुष्ट हो जाना चाहिए।

5

जब मंच पर प्रस्तुत कथा में अवास्तविक और अयथार्थ पात्र भर जाते हैं तो दर्शक को आपत्ति होती है। परन्तु यथार्थ से दूर जाने को वह तैयार रहता है, मात्र तथ्यों पर उसका आग्रह नहीं रहता। यदि उसे गहरे सत्य की उपलब्धि होती है तो उसके लिए वह कल्पना को स्वीकार कर लेता है; उदाहरण के लिए वह अतिलौकिक तत्त्वों को स्वीकार कर लेता है और भूतों, चुड़ैलों तथा परियों के कार्यों को रुचि से देखता है, यद्यपि वह इनके अस्तित्व पर विश्वास नहीं करता। उसकी माँग इतनी ही होती है कि ये प्राणी भी अपने अस्तित्व के नियमों का पालन करें। वह भली-भाँति जानता है कि **मिडसमर नाइट्स ड्रीम** की कथा कभी घटित नहीं हुई और जीवन का यथार्थ नहीं है। परन्तु कलात्मक रूप से उसके सत्य को वह स्वीकार कर लेता है क्योंकि उस सुन्दर कल्पना-नाटक में परियाँ उसी तरह व्यवहार करती हैं जैसा यदि परियाँ होतीं तो करतीं। इसी से दर्शक **मकबेथ** में चुड़ैलों और **हैमलेट** में प्रेत की स्थिति पर आपत्ति नहीं करता, क्योंकि उनके शब्द और कार्य ऐसे हैं जो इस प्रकार के जीवों के हो सकते हैं। दर्शक तब तक उन्हें नाटक में स्वीकार कर लेता है जब तक वे उसी प्रकार व्यवहार करें जैसा उसकी कल्पना में ऐसे अतिलौकिक जीवों को करना चाहिए। वह कल्पना जगत् में विचरण तो करना चाहता है, परन्तु चाहता है कि उस संसार के निवासी भी अपने नियमों से बँधे हों। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मूलभूत सत्य का दैनंदिन जीवन की वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। दर्शक अस्थायी सत्य की कामना रखता है, कुछ सामाजिक तथ्यों की नहीं।

इससे हम कलाकृति के नैतिक प्रभाव के प्रश्न पर आ जाते हैं। कला में नैतिकता का प्रवेश तभी होता है जब उसमें मानव आचरण का निरूपण हो, जब जो कुछ सामने रखा जा रहा हो उसका प्रभाव हमारे कामों पर पड़ता हो। संगीत, वास्तुकला, अलंकरण, प्राकृतिक दृश्य-चित्र, और वह कविता जो केवल संगीत अथवा अलंकरण हो—कला के इन रूपों में कोई नैतिक विशेषता नहीं है। वे नीतिशास्त्र की सीमा से बाहर होती हैं। परन्तु भावनापूर्ण गीत, महाकाव्य, उपन्यास और नाटक ये ऐसे कला-रूप हैं, जो प्रत्यक्षतः मानव आवेगों की अभिव्यक्ति करते हैं, इसलिए वे नैतिक दायित्व से नहीं बच सकते। जब भी कलाकार मनुष्यों का चित्रण करता है, नैतिक नियम के अधीन हो जाता है, और उसका परीक्षण उसके द्वारा प्रस्तुत जीवन-चित्र के आधार पर होना चाहिए। मनुष्य का केवल मनुष्य के साथ ही नैतिकता का सम्बन्ध है। इसी से हम **पंच और जूडी** के प्रचलित कठपुतली नाच का विरोध नहीं करते, और अपने बच्चों को उसका आनन्द लेने देते हैं। मानवीय मूल्यों के अनुसार यह नाटक भयानक रूप से अनैतिक है और हमारे सम्मुख विजयी और आत्मतुष्ट अपराधियों की जीवनी प्रस्तुत करता है। हम पंच को भयानक अनाचार करते हुए पाते हैं; वह अपने बच्चे को मार देता है, पत्नी की हत्या कर देता है, पुलिस वाले को मौत के घाट उतार देता है, बधिक को फाँसी पर लटका देता है, और अन्त में शैतान के भी प्राण ले लेता है। इन दुष्कर्मों के लम्बे क्रम में 'पंच' बराबर मुस्कराता रहता है, और अपने अनाचार से पूरी तरह अनभिज्ञ रहता है। यही कारण है कि यह छोटा-सा नाटक अनैतिक नहीं है। इसका मानवता से कोई सम्बन्ध नहीं है; और हम छिपे हुए सूत्रधार द्वारा संचालित कठपुतली 'पंच' पर मानव आचरण के नियम लागू नहीं करते। वह सामान्य मानवता की परिधि से बाहर है, हम उसे अपना करके स्वीकार नहीं करते, और उसके उदाहरण का कोई महत्त्व नहीं है।

यदि हम यह मानते हैं कि पंच की त्रासदी नैतिक दृष्टि से हानिकर नहीं है तो क्या यही बात दूसरे नाटकों के लिए भी कही जा सकती है? उदाहरण के लिए क्रिसमस के अवसर पर खेले जाने वाले ब्रिटिश मूक नाटकों और अमरीकी संगीत-प्रदर्शनों के लिए, जो काल्पनिक अवास्तविक पात्रों से भरे होते हैं? सम्भवतः इस कथन में कुछ सत्य है। ये मूक नाटक और संगीत-प्रदर्शन जीवन की वास्तविकता से बहुत परे हैं, और उनमें कल्पना का बहुत समावेश रहता है। परन्तु उनका अभिनय स्त्री-पुरुष करते हैं, कठपुतलियाँ नहीं, और उन्हें नैतिक नियमों से छूट नहीं मिल सकती। यही तर्क चार्ल्स लैंब ने पुनर्जागरण-क्रान्ति के समय की अंग्रेज़ी कामदी के लिए दिया था। उन्होंने मान लिया था कि साधारण-मानव आचरणों की दृष्टि से वह अनैतिक थी परन्तु काँग्रीव और वाइचर्ली के पात्र वास्तविकता से इतनी दूर थे, और जीवन की ऐसी विकृत दृष्टि प्रस्तुत करते थे कि वे 'पंच' से अधिक मानवीय न थे। लैंब ने कहा था कि पूरा नाटक एक जलूस में निकलती हुई झाँकियों की भाँति है जिसमें जीवन-मरण

की समस्याओं पर हमें उसी प्रकार उदासीन बैठे रहना चाहिए जैसे मेढक और चूहों की लड़ाई में।" लैंब ने इस कथन को अपने विशिष्ट हास्य के साथ प्रस्तुत किया है, परन्तु फिर भी जैसा मैकॉले ने बिना किसी कठिनता के सिद्ध कर दिया है, इस कथन में अन्तर्विरोध अवश्य है। कदाचित् लैंब कॉंग्रीव के सामन्ती और महिलाओं के असुंदर षड्यन्त्रों की ओर से इतने ही निर्लिप्त बैठे रह सकते हों; परन्तु हममें से और लोगों में इस प्रकार की विचित्र उदासीनता नहीं हो सकती। ये सामन्त और महिलाएँ भी तो अपने कामों में लगे हुए मानव ही हैं—अन्तर केवल उनकी शुष्क आत्मा की मलिनता का है।

'हर ओर से और हर प्रकार से अच्छाई से अपने को पृथक् कर लेने से' ही वे नैतिक नियमों से मुक्त नहीं हो सकते। हम उनको जीते-जागते प्राणी समझते हैं और उनके ऊपर नैतिकता के मानदण्ड लागू करते हैं।

6

यह कहना कि पुनर्जागरण-काल के अंग्रेज़ी कामदी-लेखक अनैतिक हैं, क्योंकि उनके नाटक जीवन का ग़लत चित्र उपस्थित करते हैं, इस बात से बहुत भिन्न है कि वे दोषी हैं क्योंकि उनकी कामदियों में नैतिक उपदेश स्पष्ट नहीं हैं। नाटक लेखक को उपदेशक होने की आवश्यकता नहीं है। नाटक में अथवा उपन्यास में नैतिकता का प्रत्यक्ष उपदेश घटिया कला है। अपनी कथाओं में कोई-न कोई नीति-कथन प्रस्तुत करने वाले लेखकों के विरुद्ध चार्ल्स लैंब की आपत्ति उचित थी। हमने काव्यगत न्याय के उस सिद्धान्त का परित्याग कर दिया है जिसके अनुसार नाटककार को चेष्टा करके यह सिद्ध करना पड़ता था कि बुरे का अन्त बुरा ही होता है। यह सिद्धान्त अठारहवीं सदी में बहुत प्रचलित था और हम 1684 में आबिनयाक के अंग्रेज़ी अनुवाद में इसकी घोषणा देखते हैं :

"नाटकीय कविताओं का प्रमुखतम और सबसे आवश्यक नियम यह है कि भाग्य के आघातों के होते हुए भी अच्छाई को पुरस्कृत या कम-से-कम प्रशंसित अवश्य किया जाय; और इसी प्रकार बुराई को सदा ही दण्ड मिलना चाहिए अथवा उसके प्रति घृणा उत्पन्न की जानी चाहिए, चाहे उतने समय के लिए मंच पर उसे सफलता क्यों न मिल रही हो।"

काव्यगत न्याय के सिद्धान्त की माँग यह थी कि नाटक स्पष्टतः उपदेशात्मक हो, चाहे उसे जीवन के सत्य से परे जाना पड़े। हम सभी जानते हैं कि बुराई का परिणाम इस संसार में तो सदा बुरा नहीं होता, परलोक में चाहे जो कुछ होता हो, हम सभी जानते हैं कि यदि लेखक अपने दुष्ट पात्रों की दुर्दशा दिखाता जाएगा तो उस पीड़ित पात्र के लिए वह हमारी सहानुभूति ही जगाएगा। किसी भी कलाकृति में प्रदर्शित नैतिक प्रयोजन का ख़तरा यही है कि वह आन्तरिक न होकर बाह्य हो, और कथा-विषय में निहित न होकर बाहर से उसमें लाया गया हो। स्टीवेंसन ने उस नैतिकता की बात की थी जो अनेकों अंग्रेज़ी उपन्यासों में उठाई गई है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से उपदेश देने की माँग अब नहीं रही। यद्यपि जब कलाकार मानवीय जीवन को चित्रित करने चलता है, तो नैतिक दायित्व से पूरी तरह बच नहीं सकता, परन्तु मंच पर चढ़कर उपदेश देने की आवश्यकता नहीं रही। कलाकार का काम किसी सिद्धान्त-कथन को सिद्ध करना नहीं है, उसे तो जीवन को इस प्रकार चित्रित करना है जैसा वह देखता, अनुभव करता और जानता है। साँसी के प्राक्कथन में शैली के कथन में कलाकार की मनोवृत्ति का यह निर्देश मिलता है :

"नाटक के उच्चतम रूप का प्रयोजन मानव-हृदय को उसकी सहानुभूति और घृणा के द्वारा अपना ज्ञान कराना होता है; इसी ज्ञान के अनुपात में मनुष्य चतुर, न्यायपूर्ण, सच्चे, उदार और सहृदय होते हैं।"

मानव-हृदय को अपने विषय में ज्ञान कराना—यह बड़ा ऊँचा उद्देश्य है; और आचरण की समस्याओं के विषय में बड़ी ईमानदारी बरतने पर ही उस तक पहुँचा जा सकता है। कलाकार को सदैव अपने प्रति सच्चा होना चाहिए। उसे वही कहना चाहिए जैसा वह सत्य को देखे; और सत्य के सिवा कुछ न कहना चाहिए। यह करने की सुविधा उसे है, यही कलाकार को प्राप्त होने वाली सबसे बड़ी कला है। प्रो० गिल्बर्ट मरे ने कहा है कि, "सचेत नीतिवादी अधिकतर मूर्ख और स्वेच्छाचारी जान पड़ता है; कवि को यही सबसे बड़ी सुविधा है कि उसे ऐसी बात नहीं कहनी है जो दूसरों के लिए ठीक समझता है, न ऐसी ही जो वे अपने लिए ठीक समझते हैं वरन् ऐसी बात कहनी है जो उसे सबसे अधिक प्रिय होती है।"

यद्यपि नाटककार को अपने नाटकों में नैतिकता का स्पष्ट समावेश नहीं करना होता, परन्तु वह उसे बिलकुल छोड़ भी नहीं सकता, क्योंकि जीवन के किसी भी सच्चे चित्रण में नैतिकता का स्थान अवश्य होगा। परन्तु उसे इसके विषय में विशेष चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। जितनी सत्यपरक उसकी जीवन-दृष्टि होगी उसी अनुपात से उसकी कृति में नैतिक यथार्थ का समावेश होगा। यद्यपि नाटक लेखक अपने आप मंच पर नहीं आ सकता, और कभी उपन्यासकार की भाँति अपने पात्रों का विवरण देते हुए उनके व्यक्तित्व का परिचय नहीं दे सकता, फिर भी कोई भी अन्य कला-रूप ऐसा नहीं है जिसमें लेखक अपने को इतनी पूर्णता से अभिव्यक्त कर सकता हो जितना नाटक में। शेक्सपियर उस प्रकार कार्य-व्यापार में बाधा नहीं दे सकते जिस प्रकार अपने उपन्यासों में पाठकों से बातचीत करने के लिए थैकरे करते हैं, परन्तु शेक्सपियर का दर्शन हमारे लिए उतना ही स्पष्ट है जितना थैकरे का। आडम्बर के प्रति उपेक्षा, ढोंग से घृणा और अपने शान्त स्वभाव से युक्त मोलियर एक व्यक्ति के रूप में अपने नाटकों में बिलकुल स्पष्ट हैं; यद्यपि वे कभी एक शब्द भी हमसे प्रत्यक्षत: नहीं कहते, और उनकी ओर से यदि कोई बात हमसे कही भी जाती तो जो चित्र हमने उनके नाटकों को पढ़कर बनाया है उसके अतिरिक्त और कोई चित्र उसके बारे में नहीं बना सकते थे। जैसा जॉर्ज साँ ने फ्लाबेयर को लिखा था, "वास्तविक चित्र

तो उस अन्तरात्मा का होता है जो तूलिका को प्रेरित करती है।" और मानव-जीवन का सच्चा चितेरा, चाहे जितना चाहे, अपना अन्तरंग छिपा नहीं सकता।

नाटक देखते समय रुचि के कम होते जाने का यह एक और कारण है। सम्भव है लेखक ने यथार्थता से प्रारम्भ किया हो परन्तु जल्दी प्रभावशाली बनाने की इच्छा ने उसमें विकृति पैदा कर दी हो। यदि हमें ऐसा लगेगा, तो हमें इससे आपत्ति होगी और जितनी ही यह भावना होगी उतना ही हमारी साहनुभूति और ध्यान कम होगा। मानो हम जीवन का आधार रोटी चाहते थे और हमें पत्थर देकर फुसलाया जा रहा हो। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यथार्थ भी यदि जितनी हमारी रुचि हो उससे अधिक गहराई तक चला गया हो, तो हमें प्रिय नहीं लगता। यदि लेखक के पास अधिक विस्तृत ज्ञान और गहरी दृष्टि हो, तो सम्भव है वह सतह के नीचे से भद्दी और घृणास्पद वस्तुएँ निकाल लाए, यह बात हमें चौंका सकती है; परन्तु जो चौंका सकता है, उसका अनैतिक होना निश्चित नहीं है। बहुत बार तो वह सच्चे अर्थों में नैतिक होता है। नैतिकता विषयवस्तु में निहित नहीं है अन्यथा **ईडिपस, ऑथेलो, स्कारलेट लेटर और ऐनाकेरनीना** अनैतिक हो जाते। नैतिकता या अनैतिकता तो निरूपण में है—बुराई के साथ संघर्ष करने के लिए आत्मा को तत्पर करने वाली दृढ़ता में है, अथवा अपने को उदासीन बना लेने वाली शिथिलता में है। नैतिकता भय उत्पन्न करने वाले विषयों में नहीं, परन्तु उन विषयों के निरूपण करने की प्रवृति में है।

इसी से सच्ची कला-कृति में एक कथन नहीं होता, उतने ही कथन होते हैं जितने दर्शक। प्रत्येक व्यक्ति अपने पर पड़ने वाले प्रभाव से अपना नीति-कथन ढूंढ़ लेता है, और यह उसी पर निर्भर है कि वह किसी कलाकृति से नैतिक दृष्टि से सशक्त हो अथवा निर्बल बन जाय। सार्से ने कहा है—"अपनी अन्तरात्मा को जांचने और परिणाम के प्रति जिज्ञासा का भाव लिए बिना रंगशाला से वापस जाना कठिन है, यही कसौटी है जिस के आधार पर सच्चे अर्थों में नीतिपरक कृति को पहचान सकते हैं।"

ग्यारहवाँ अध्याय

एलिज़ाबेथकालीन नाटककार

1

इतिहास में चार अथवा पाँच ऐसे युग आए हैं जब कि नाटक अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा है। पहला युग यूनान का था, जहाँ क्रमशः एस्किलस, सॉफ़ॉक्लीज, यूरीपिडीज़, ऐरिस्टोफ़ेनेज़ तथा मेनांडर आदि एक-से-एक महान् रचनाकार हुए। नाटक के उत्कर्ष के दूसरे तथा तीसरे युग इंग्लैंड तथा स्पेन में साथ-साथ आए, जब कि मार्लो, शेक्सपियर तथा बेन जॉनसन ने अंग्रेज़ी में उत्कृष्ट रचनाएँ कीं तथा लोप द-वेगा और केलडरॉन ने अपने नाटकों में स्पेनी भाषा के गीतात्मक सौन्दर्य को अभिव्यक्ति दी। चौथा युग फ्रांस में आया जब कि कार्नाइ के बाद और रासीन के पहले मोलियर नाट्य-रचना के क्षेत्र में आए। एक बार फिर फ्राँस में ही नाट्य-उत्कर्ष का पाँचवाँ युग कहा जा सकता है जब कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में विक्टर ह्यूगो और बड़े ड्यूमा तथा ऑज़िए और उनके बाद छोटे ड्यूमा हुए।

श्रेष्ठ नाट्यलेखन के प्रत्येक युग की अपनी विशेषताएँ होती हैं और एक-एक युग की विशेषताओं का ही जीवन भर अध्ययन किया जा सकता है। परन्तु जिनकी मातृभाषा अंग्रेज़ी है उनके लिए उन पाँचों में से कौन-सा युग अधिक रोचक है, इस बात में कोई सन्देह नहीं है। यह युग वही है जबकि अंग्रेज़ जाति की काव्यात्मक शक्ति की भव्य अभिव्यक्ति हुई। यह युग एलिज़ाबेथ के लम्बे शासन-काल से प्रारंभ होकर जेम्स के अल्प शासन काल में समाप्त हुआ। नाटक के किसी भी अध्ययन में शेक्सपियर तथा उसके सामयिक प्रतिभा-सम्पन्न लेखकों के नाटक ही सदैव रुचि के केन्द्र हो सकते हैं।

इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अंग्रेज़ी-भाषी जाति की प्रधान विशेषता कार्य-शक्ति है, और एलिज़ाबेथ के शासन-काल के अन्तिम वर्षों की अपेक्षा किसी भी अन्य युग में यह कार्य-शक्ति इतनी पूर्णता से व्यक्त नहीं हुई। इसी काल में इस बलिष्ठ जाति की शक्ति तथा भावावेग की प्रचुर अभिव्यक्ति हुई तथा कल्पना की वैभवशालिता और ओज का प्रस्फुटन हुआ। इन्हीं वैभव-पूर्ण दिनों की क्रियाशीलता से शेक्सपियर की प्रतिभा का उदय हुआ। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि बहुत-से साहित्यप्रेमी इस प्रतिभा से चौंधिया गए, और उन्होंने इसकी

भव्यता के अतिरिक्त अन्य तथ्यों की ओर से आँखें मूंद लीं; परम पूर्णता के अतिरिक्त वे इसमें और कुछ भी देखने को तैयार ही न थे। हममें से बहुतों को आज भी याद है, जब हमने पहली बार मैथ्यू आर्नल्ड के निबन्धों में पढ़ा था कि शेक्सपियर की कृतियों में कुछ कमज़ोर स्थल भी हैं और उनकी प्रतिभा सदैव उच्चतम स्तर पर ही नहीं रही, तो हमें कितना आश्चर्य हुआ था।

परन्तु आग्रहपूर्ण प्रशंसा की मनोवृति को अपनाना आलोचना के अधिकार तथा कर्त्तव्य को त्यागने के समान होगा, जैसा गॉतिये की इस घोषणा से प्रकट होता है कि यदि उसे ह्यूगो की कविता की एक भी पंक्ति मिले जिसमें कहीं भी कोई त्रुटि हो, तो वह इसे कभी भी स्वीकार नहीं करेगा। हम स्वयं को इस ज्ञान से वंचित रखते हैं कि एलिज़ाबेथकालीन कवि वास्तव में कहाँ महान् हैं, यदि हम उनमें केवल उत्कृष्टता ही देखते हैं और यदि हम यह तथ्य नहीं देख पाते कि उनमें से महानतम भी सर्वोच्च शिखर पर पहुँचने के उपरान्त वैसा ही स्तर नहीं बनाए रख सका। एलिज़ाबेथकालीन महान् लेखकों की कृतियाँ जैसी भी हैं, उन्हें वैसी ही स्वीकार करें; और हममें इतनी ईमानदारी होनी ही चाहिए कि यदि उनमें कुछ गुण नहीं हैं तो हम उनके होने का दावा न करें। इस साहित्य में दृष्टि की विशालता है, अन्तर्दृष्टि की गहराई तथा जीवनी-शक्ति भी है, और अंग्रेज़ जाति की कार्य-शक्ति की समृद्ध अभिव्यक्तियाँ हैं। इन गुणों के बारे में किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं है, और क्योंकि इसमें ये गुण विद्यमान हैं, क्योंकि इसमें व्यापकता, गहराई, निर्भीकता और जीवनी-शक्ति है, इसी कारण तो यह साहित्य कभी आवेगपूर्ण, कभी तुच्छ और कभी अपरूप बन जाता है। अविचारपूर्ण, और प्रतिबन्धहीन होने के कारण इसमें रुचि की न्यूनता और तर्क की कमी होना सम्भव है; इसमें कल्पना का उत्ताप तो है, परन्तु सन्तुलन तथा आनुपातिकता का अभाव है।

2

एलिज़ाबेथकालीन नाटकों के निर्माण-कौशल की त्रुटियों पर विचार करने के लिए दो तथ्य अपने मन में अवश्य रखने चाहिए। इनमें से प्रथम यह है कि किसी भी युग में सर्वप्रिय और इसी कारण लाभदायक साहित्यिक रूप ऐसे लेखकों को भी आकर्षित करता है, जिनमें उस विशेष कला के लिए कोई वास्तविक प्रतिभा नहीं होती। उदाहरणार्थ उन्नीसवीं शताब्दी में उपन्यास की बहुत धूम थी, और कई ऐसे लेखकों ने भी उपन्यास लिखे, जिनके पास वर्णनात्मक शक्ति बहुत ही कम थी। इसी तरह सोलहवीं शताब्दी के अन्त में नाटक ही एकमात्र था जिसमें कोई भी महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति अर्थोपार्जन की आशा कर सकता था, और इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं कि एलिज़ाबेथकालीन नाटककारों के समूह में बहुत कम ऐसे थे जिनमें नाट्यकार की जन्मजात प्रतिभा थी, अथवा जिन्होंने परिश्रम करके कुशलता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। चैपमैन की रंगशाला की ओर स्वाभाविक रुचि नहीं थी तथा वेब्स्टर अपने समस्त प्रयत्नों के उप-

रान्त भी यह सिद्ध नहीं कर सका कि उसमें नाटककार की प्राकृतिक प्रतिभा है। चैपमैन तथा वेब्स्टर निःसन्देह कवि थे, परन्तु वे जन्मजात नाटककार नहीं थे।

दूसरी बात यह है कि नाट्यकला को एलिज़ाबेथ-युग में विशिष्ट सम्मान प्राप्त नहीं था। रंगशाला एक ऐसा साधन था जिसके द्वारा कवि अपनी आजीविका कमा सकते थे ; परन्तु नाटकों को साहित्य नहीं समझा जाता था ; वे केवल रंगशाला में दो घण्टों का समय बिताने के लिए प्रदर्शित किए जाते थे। साहित्यकार उन्हें उसी प्रकार नीची दृष्टि से देखते थे जैसे आज के युग में पत्रकारिता को देखा जाता है। हम आज एलिज़ाबेथकालीन नाटक को उस युग के साहित्य का मुख्य और गौरवशाली अंश मानते हैं ; अतः हमें याद भी नहीं रहता कि उस युग के लोग उसे कठिनता से ही साहित्य मानते थे। इस सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि शेक्सपियर ने अपनी दो वर्णनात्मक कविताओं के प्रूफ ध्यान से देखे, जबकि नाटकों के प्रकाशन की ओर उन्होंने ध्यान भी नहीं दिया, और असावधानी से उनकी पाण्डुलिपियों को अपने रंगमंच के साथियों पर छोड़ दिया। नाटक को इस तरह नीची दृष्टि से देखने का एक परिणाम यह भी था कि नाटककार को भी समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी, और जो कुछ उस विक्षुब्ध काल के अशिष्ट दर्शक-समूह के लिए पर्याप्त था, वही नाटककार के लिए भी ठीक था।

सम्भवतः तीसरी बात को भी ध्यान में रखना उचित होगा, जिससे उस काल की कुछ नाटकीय त्रुटियों को समझने में सहायता मिलेगी; वह यह कि नाटक का रूप निश्चित नहीं हो सका था। दूसरे साहित्यिक रूपों से अलग उसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं बन सकी थी, और वह अपने को अनाटकीय तत्त्वों से मुक्त नहीं कर सका था। जैसे कि एस्किलस के युग में यूनानी नाटक में गीतात्मक तत्त्व था, जिससे नाटक की गति में बाधा पड़ती थी, उसी प्रकार शेक्सपियर के समय में अंग्रेज़ी नाटक ने अपने को उन तत्त्वों से मुक्त नहीं किया था, जिनका रंगमंच पर कथा के परिदेश से कोई सम्बन्ध नहीं था। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि उन दिनों रंगशाला केवल रंगशाला नहीं थी ; वह आंशिक रूप में समाचार-पत्र, व्याख्यान-भवन तथा प्रवचन-मंच भी थी। इसलिए हम नाटककार को कई बार अपनी कथा को रोककर भाषण अथवा उपदेश देते हुए पाते हैं, जिसे उस समय के दर्शक बहुत प्रसन्नता से सुनते थे, परन्तु हमें इससे कार्य-व्यापार की गति अवरुद्ध होती प्रतीत होती है। आधुनिक काल में इसे कथानक की कलात्मक संरचना के लिए बाधक माना जाता है।

इसी बात में एलिजाबेथ काल के तथा हेनरी अष्टम और उसके पूर्वजों के काल के नाटकों में समानता है। एलिज़ाबेथकालीन नाट्यगृह खुला हुआ था, उसको आकाश से प्रकाश मिलता था, उसका मंच दर्शकों से घिर जाता था तथा वहाँ न कोई यवनिका थी, न दृश्य-सज्जा। उसकी पद्धतियाँ वही थीं, जो 'मिस्टरी' नाटकों की, जो बाज़ार तथा गिरजों के आँगनों में अभिनीत किए जाते थे। उत्तर-मध्यकालीन 'मिरेकल' नाटकों तथा

एलिज़ाबेथ काल के आरम्भ के वृत-नाटकों की रचना में बहुत कम अन्तर है। पहले की पद्धति मध्ययुगीन है, तो परवर्ती की अर्द्ध-मध्ययुगीन; कुछ और हो भी नहीं सकता था जब तक कि ऐसी रंगशालाएँ न बन जातीं जिनमें छत और कृत्रिम प्रकाश की व्यवस्था तथा यवनिका और यथार्थवादी दृश्य-सज्जा हो। पुनर्जागरण के अन्त तक लंदन में कोई आधुनिक नाट्यगृह नहीं था, और इसलिए एलिज़ाबेथकालीन नाटक आधुनिक नहीं हो सके। इसमें से सर्वोत्तम नाटक भी अर्ध-मध्ययुगीन ही बन सके। इसमें एलिज़ाबेथ कालीन नाटक का अपना कोई दोष नहीं था कि उसमें प्राचीनों की संयमित सरलता अथवा आधुनिकों की सी दक्षता न थी, और न हो सकती थी।

जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि ग्लोब रंगशाला में नाटकों के अभिनय की वास्तविक परिस्थितियाँ क्या थीं तो हमें इस बात पर आश्चर्य नहीं होता कि शेक्सपियर के कुछ नाटकों की गठन प्राय: उलझी हुई और अस्पष्ट है, परन्तु इस बात पर आश्चर्य होता है कि यह महान् नाटककार अपने कथानकों को आगे के नाटकों जैसे ऑथेलो और मैकबेथ में व्यवस्थित और संयोजित कैसे कर सका। सम्भवत: शेक्सपियर की प्रतिभा का इससे उपयुक्त कोई और उदाहरण नहीं हो सकता कि कभी-कभी वह उन स्थितियों पर भी अधिकार प्राप्त कर लेते थे जो कि अजेय प्रतीत होती थीं, और तभी वे ऐसे नाटक लिख सके जिनमें शाश्वत तत्त्व हैं, यद्यपि मूलत: वे अर्द्ध-मध्ययुगीन मंच पर प्रदर्शन करने के लिए लिखे गए थे। इसके अतिरिक्त एलिज़ाबेथ-कालीन नाटककार ने न केवल अपने नाटकों को उस समय की प्रचलित नाट्य-पद्धति के अनुसार ढाला अपितु उन्होंने उन दर्शकों को भी सदैव ध्यान में रखा जिनके सामने उन्हें अपने नाटक प्रस्तुत करने थे। उन्होंने अपने समय के दर्शकों का ध्यान रखा, न कि भविष्य के पाठकों का। समालोचना के मानकों के अभाव और अभिनीत नाटक के प्रति उपेक्षाभाव के कारण उस युग के नाटकों में बहुत-सी त्रुटियाँ रह गई हैं; परन्तु इसका कारण हमें इस तथ्य में खोजना चाहिए कि एक विशेष प्रकार की जनता को प्रसन्न करने की आवश्यकता थी—वह दर्शक-समुदाय जो सम्भवत: अपनी इच्छाओं में किसी भी ऐसे जन-समूह की अपेक्षा अधिक पाशविक था जिसे कभी किसी भी महान् नाटककार को प्रभावित करना पड़ा है। एथेंस-निवासी जिनके लिए सॉफ़ॉक्लीज़ ने अपनी विशाल और संयमित त्रासदियाँ लिखीं, तथा पेरिस-निवासी जिनके लिए मोलियर ने अपने सहनागरिकों के हास्यात्मक चित्र चित्रित किए—उस जनसमूह से सर्वथा भिन्न थे, जिनके समक्ष शेक्सपियर ने जीवन के चित्र प्रस्तुत किए; वह एक ऐसा जनसमूह था जो कि भयंकर से भयंकर दृश्य देखने को प्रस्तुत रहता था और किसी भी भीषणता को देखकर संकुचित नहीं होता था। एलिज़ाबेथकालीन जनता ही मुख्यत: इस तथ्य के लिए उत्तरदायी है कि तत्कालीन नाटक यद्यपि अपनी गरिमायुक्त कथाओं के कारण कीर्तिवान् है, फिर भी यदि अलग-अलग देखा जाय तो उसमें कुछ ही उत्कृष्ट कृतियाँ हैं; केवल कुछ ही नाटक ऐसे निकलेंगे कि जिनकी रचना-पद्धति उदार पाठक को भी

निराश नहीं करती। जैसा कि एम० जूसराँ ने कहा है कि इस समय के नाटकों में कई ज्वलन्त अंश, आनन्दपूर्ण तथा दुखात्मक दृश्य, प्रभावशाली संवाद अथवा सजीव चरित्र चुन लेना कठिन नहीं है, परन्तु विरले ही ऐसे नाटक हैं जो पूर्णतया कला के उच्चतम शिखर पर स्थापित और निर्दोष हैं तथा सुनियोजित, सुसंगठित और एक निश्चित अन्त तक पहुँचने वाले हैं।"

3

नाटक जिस जनता को आनन्द प्रदान करने का हेतु है, यदि वही उसकी कलात्मक सफलता की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं करती तो कथा को सुगठित करने और उसको अनिवार्य निष्कर्ष तक पहुँचाने का कष्ट क्यों उठाया जाय? उन दिनों के दर्शक न केवल कथा-निरूपण में संभाव्यता की कमी, चित्रण में आकस्मिक तथा असम्भव परिवर्तन, सांयोगिक घटनाओं तथा स्वेच्छाचारी कृत्रिमताओं को कोई दोष नहीं मानते थे, बल्कि यही वे गुण थे जिनका वे सबसे अधिक आनन्द लेते थे। वे असाधारण, अप्रत्याशित तथा तर्कहीन घटनाओं को अधिक पसन्द करते थे, और आश्चर्यजनक भाग्य-परिवर्तनों से अधिकाधिक चमत्कृत होने के लिए नाटक देखने जाते थे। अधुनिक काल में हम दो-तीन असंबद्ध कहानियों को एक नाटक में रखने, आनन्दप्रद और भयंकर को साथ-साथ रखने, और ठीक-ठीक संयोजित न कर पाने से झल्ला उठते हैं, परन्तु यही उस युग के दर्शकों के लिए पूर्णतया संतोषप्रद था, क्योंकि इसमें विविधता थी, और विविधता ही उनका अभीष्ट थी।

निःसंदेह मंच पर अनेक प्रभावशाली व्यक्तित्व के लोग बैठे होते थे, उनमें संस्कृति की आभा होती थी, और गैलरी में भी कई सुशिक्षित लोग रहते होंगे। परन्तु जो नीचे प्रांगण में खड़े होते थे उनमें से अधिकांश अशिक्षित थे। इनमें युद्ध से वापिस घर लौटे हुए सेवामुक्त सैनिक, फ्रॉबिशर तथा ड्रेक के जहाज़ों के नाविक तथा एक बंदरगाह के, जो कि एक बढ़ते हुए राष्ट्र की राजधानी भी था, नीचे वर्ग के और आवारा लोग भी होते थे। उनकी इच्छा अत्यन्त आवेगपूर्ण थी, वे घुड़सवारी और अश्लीलता के सदैव इच्छुक थे, तथा कामवासना और रक्तपातपूर्ण दृश्यों के लिए लालायित रहते थे। वे मुर्गों, रीछों और बैलों की मुठभेड़ उन्हीं रंगशालाओं में देखा करते थे जहाँ अन्य अवसरों पर इन रक्त-त्रासदियों के प्रदर्शन होते थे। वे तूफानी लोग न केवल मंच पर बल्कि दैनिक जीवन में भी लड़ाई, हत्या और आकस्मिक मृत्यु के अभ्यस्त थे, इससे नाटक में इन दृश्यों में उन्हें कुछ भी अटपटा नहीं लगता था।

अधिकतर दर्शकों का प्रभाव नाटककारों पर उन दिनों, उसी प्रकार बुरा नहीं पड़ा था, जैसा कि आज भी नहीं पड़ता; क्योंकि इसके कारण नाटककार को मिथ्या आडम्बर और बनावटी शैली के प्रयोग से बचना पड़ता था। एक सीमा तक दर्शक-वृंद ने ही उन्हें जीवन का सहज निरूपण करने तथा मनोवेगों का साहसपूर्ण और पर्याप्त चित्रण करने के लिए विवश किया। परन्तु उन दर्शकों में कुछ निम्न रुचियाँ भी थीं।

वे निरन्तर उत्तेजनापूर्ण दृश्य चाहते थे और उन्हें प्रसन्न करना आवश्यक समझने वाले नाटककार उन्हें यह सब कुछ पर्याप्त मात्रा में प्रदान करते थे। इसी से वे जलूस, राज-तिलक, अन्त्येष्टि, युद्ध-शिवरों, मुठभेड़ों और युद्धों के दृश्य प्रस्तुत करते थे। वे शोक-पूर्ण अथवा अश्लील गीत नाटकों में रखते और जिन ध्वनियों का समावेश सम्भव होता अवश्य करते थे—ढोल का धमाका, दुन्दुभि का घोष, घंटियों की ऊँची घनन-घनन, अस्त्रों की खट-खट तथा गड़गड़ाहट। श्वेत वस्त्रों में आवृत प्रेतों तथा भयंकर भूतों को उन दर्शकों से स्वागत प्राप्त होता था। इसी से नाटककार उनको ज़रा-सा बहाना मिलते ही अपने नाटकों में रख देते थे। वे यह जानते थे कि इन अनभिज्ञ दर्शकों को अनगढ़ हास्य प्रिय था तथा वे खुले दिल से हँसना पसन्द करते थे, और इसीलिए वे अपनी रचनाओं में चातुर्यपूर्ण संवाद रखते और इसके लिए भद्दे हास्य का प्रयोग करने में भी संकोच नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त वह यह जानता था कि यद्यपि प्रांगण में खड़े दर्शकों की रुचि स्थूल थी, फिर भी वे सुन्दर भावनाओं के चित्रण से आनन्दित हो सकते थे जो कभी साधारण सत्य में प्रकट की गई हो और कभी अत्यधिक गीतात्मक अतिशयोक्ति से युक्त हो।

जब हम इस तथ्य पर विचार करते हैं कि उन दिनों ग्लोब नाट्यगृह के प्रांगण में खड़े होने वाले दर्शक कितनी निम्न श्रेणी के थे, उनकी शिक्षा कितनी कम, उनके जीवन का अनुभव कितना कटु और उनकी रुचि कितनी अपरिष्कृत थी, तो हमें इस बात पर आश्चर्य नहीं होता कि उनके आनन्द के लिए तैयार किया हुआ नाटक प्रायः आवेगपूर्ण और मनमाने तथ्यों से युक्त तथा अशिष्ट होता था, वरन् इस बात पर होता है कि उनके आनन्द के लिए रचित कोई भी नाटक तर्कसंगत और उदात्त तथा सुगठित और सुरुचिपूर्ण भी हो सकता था। यदि शेक्सपियर की रचना का सर्वोत्तम अंश शाश्वत तत्त्वों से युक्त है तो उसका सबसे घटिया अंश स्पष्टतः उन दर्शकों के लिए था जो कि उनके समकालीन थे, और जिनकी रुचि का उन्हें ध्यान रखना होता था। इसी कारण वे उन पुराने कथानकों को ले लिया करते थे जिनमें पहले से ही दर्शकों को आकर्षित करने की क्षमता सिद्ध हो चुकी होती। अपने नाटकों को अर्धमध्ययुगीन दर्शकों के पूर्ण रूप से अनुकूल बनाने में वे नाटकों में ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक यथार्थता का कुछ भी ध्यान नहीं रखते थे; वे रोमनिवासियों को घड़ियों और तोपों का प्रयोग करते दिखाते हैं; ज्वार के अनुकूल होने पर इटली वालों के बेरोना से मिलान तक जहाज़ पर जाने का उल्लेख करते हैं, क्योंकि लंदन निवासियों के लिए यात्रा का यही सबसे परिचित ढँग था। वे तत्कालीन जनता को भलीभाँति समझते थे; इसका सर्वोत्तम प्रमाण यही है कि उनके खलनायक अपनी बुराई की घोषणा स्वयं ही करते हैं, जिससे कि दर्शकों में उनके उद्देश्य के सम्बन्ध में कोई संदेह न रहे।

अपने समकालीन लेखकों से शेक्सपियर की श्रेष्टता और किसी बात से इतनी स्पष्ट नहीं होती जितनी कि इस बात से कि वे अपने दर्शकों के पूर्वाग्रहों का उपयोग करते

और उनसे लाभ उठाते थे। जो कुछ उनके समय के दर्शक चाहते, वे उन्हें वही देने का प्रयास करते थे; फिर भी जब-कब, सम्भवत: उनके नाट्य-लेखन के बीस वर्षों में कोई एक दर्जन बार अपनी, प्रतिभा और नाट्यरचना-कौशल के प्रति अपनी रुचि के कारण ऊँचे उठकर उन्होंने जीवन को दर्शकों के परे और उनसे ऊँचे धरातल से देखा और ऐसी रचना दी जिसकी तत्कालीन दर्शकों की दृष्टि से कोई आवश्यकता नहीं थी। इसीलिए एक ओर सुसम्बद्ध और तर्क संगत **ऑथेलो** की रचना हुई और दूसरी ओर शिथिल तथा असंगठित नाटक **सिंबलीन** की।

शेक्सपियर के अधिकाँश समकालीन लेखक प्रवीण तथा मेधावी होते हुए भी ऐसा न कर सके, और उनके उन नाटकों के उदाहरण से भी लाभ उठाने में भी असमर्थ रहे जिनमें उन्होंने अपनी पूरी प्रतिभा और शक्ति लगा दी थी। क्योंकि शेक्सपियर कुछ अवसरों पर ही अपनी प्रतिभा के सर्वोच्च शिखर पर दिखाई देते हैं; इसीसे उनसे किसी शैली-विशेष का प्रवर्तन नहीं हुआ। वे ऐसे आदर्श नहीं थे जिसका बिना किसी झिझक के अनुसरण किया जाय, कुछ तो इसलिए कि जो उनका लक्ष्य था, वह दूसरों के लिए सदा सर्वोत्कृष्ट था, क्योंकि वे प्राय: अपने कवि-गुण से अपने नाट्यकार की शिल्पगत असावधानी छिपा देते थे, और कुछ इस कारण भी कि उन्होंने जो किया वह करने की क्षमता औरों में न थी। उनके विशिष्ट गुण का अनुकरण नहीं हो सकता; उनके पास अपने पात्रों को स्वतन्त्र जीवन प्रदान करने की क्षमता थी। यह शक्ति ही उनकी रचना की कसौटी है, और यह उनमें सदा मिलती है; नितान्त अस्वाभाविक कथानकों में भी, और उन कथाओं में जो बचकानी कल्पना पर आधारित हैं। ब्रैंड्स जैसे आलोचकों ने शेक्सपियर के नाटकों की असंगतियों पर प्राय: पर्दा डालना चाहा, यह ठीक न था, क्योंकि शेक्सपियर स्वयं अपने दर्शकों के लिए ऐसी सभी बचकानी युक्तियों का प्रयोग करने के लिए तत्पर रहते थे; उसमें उन्हें आनन्द मिलता था, जैसे **मर्चेण्ट ऑफ वेनिस** में शरीर से आध सेर माँस के काटने तथा विभिन्न पेटियों द्वारा व्यक्तियों के परीक्षण का प्रकरण। यदि आलोचक कथा की असंगतियों को नहीं देखता, यदि वह **सिंबलीन** की अस्वाभाविक और उलझी हुई कथावस्तु, तथा **मच अडू अबाउट नथिंग** के अन्तिम दृश्य की जड़ संवेदन-हीनता की ओर से आँखें मूंद लेता है, तो हमें इस बात पर सन्देह होने लगता है कि वह वास्तव में **ऑथेलो** के शिल्प-कौशल तथा **रोमियो और जूलियट** की संयत भाव-समृद्धि को अच्छी तरह समझ सका है।

4

महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि शेक्सपियर भी अन्तत: एलिजाबेथकालीन थे और दूसरों की भाँति उन्हें भी एक अर्धमध्ययुगीन मंच की परिस्थितियों को मानना तथा एक जोशीले जन-समूह को प्रसन्न करना था। अन्य लेखक भले ही उनके धरातल तक न पहुँच पाएँ, परन्तु शेक्सपियर बहुत बार उनके स्तर तक उतर जाते हैं। यदि वे लेखक तत्कालीन दर्शकों को सन्तुष्ट कर पाते थे तो सन्तोष का अनुभव करते थे और वे दर्शक-

समूह पर तात्कालिक प्रभाव डालने के लिए चरित्र की तर्क-संगति का बलिदान करने में नहीं झिझकते थे; लगभग यही उसी समय और उन्हीं कारणों से स्पेन में उनके साथी नाटककार कर रहे थे। प्रतिष्ठा की असम्भव ऊँचाइयों पर उठना अथवा अपमान की असम्भव गहराइयों में गिरना, भाग्य के अतिभावनात्मक विपर्ययों, चरित्र के अकारण परिवर्तन, यथार्थ तथा संभाव्य सत्य की अवहेलना तथा कला की सूक्ष्मता और प्रकृति के यथार्थ की उपेक्षा उनकी विशेषताएँ थीं। वे अनेकानेक चित्ताकर्षक उपाख्यानों की कल्पना करने में समर्थ थे। परन्तु कथा के विविध अंशों को समग्रता प्रदान करने, उसका स्तर बराबर बनाए रखने और उसे निरन्तर सशक्त बनाए रखने में प्राय: असफल रहे; यद्यपि कई स्थलों में उनमें सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलते हैं, फिर भी अधिकतर चरित्र-चित्रण वे नितान्त भोंड़े ढँग से करते थे। दूसरे शब्दों में सच्ची कवि-प्रतिभा तो उनमें दिखलाई देती है, परन्तु सच्चे नाटककार की प्रतिभा कम ही स्पष्ट हो पाती है।

यही कारण है कि स्विनबर्न की आडम्बरपूर्ण तथा अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा आज उनके लिए लाभकर नहीं सिद्ध हो रही है जबकि लैंब के कुशल चयन से उन्हें पर्याप्त लाभ पहुँचा है। लैंब ने सर्वोत्तम अंशों को इस सम्मोहक ढँग से प्रस्तुत किया है कि जिन पाठकों ने इन उद्धरणों के बाद उन नाटककारों की पूर्ण रचनायें पढ़ी होंगी, उन्हें निराशा हुई होगी। हैजलिट तथा लोवल ने भी इन कवियों की इस प्रकार प्रशंसा की मानो उनकी रचनाएँ पुस्तकालय में ही पठनीय हैं; इन आलोचकों ने नाटकों पर इस दृष्टि से विचार ही नहीं किया कि ये रंगशालाओं में दर्शकों के सम्मुख प्रदर्शित करने के उद्देश्य से लिखे गए हैं। हैजलिट और लोवल को ये नाटककार मुख्यत: कवि ही लगे; ये कवि नाटककार भी थे, इस बात ने इन आलोचकों में से शायद ही कभी किसी का ध्यान आकर्षित किया हो।

कुछ पाठक हैजलिट और लोवल के कथन को मानकर एलिजाबेथकालीन नाटककारों की रचनाओं के शुद्ध काव्य को स्वीकार करना चाहेंगे और इस बात पर विचार नहीं करेंगे कि कविता से युक्त ये नाटक वास्तव में नाटक हैं भी या नहीं। उनमें से कुछ सुन्दर उद्धरणों से पूर्ण ऐसे नाटकों के शिल्प सम्बन्धी दोषों की ओर ध्यान दिलाने के प्रयत्न भी उन्हें अप्रिय लगते हैं जिनमें कविता मनोविज्ञान से मिलकर अत्यधिक आनन्ददायक हो गई है। ऐसे भी हैं जो त्रुटियों के अस्तित्व को तो मानने को प्रस्तुत हैं, परन्तु समालोचना के इस न्याय को स्वीकार नहीं करते जिसके आधार पर अर्ध-मध्ययुगीन नाटककारों का ऐसे मानदण्ड से मूल्यांकन किया जाय जो आधुनिक नाटक के लिए ही उपयुक्त हैं। कुछ समय हुआ जब प्राचीन नाटककारों के एक प्रशंसक द्वारा अत्यन्त आग्रहपूर्वक यह प्रतिवाद उद्घोषित किया गया था। वे मैसिंजर तथा ग्रीन को उन स्तरों से मापना अनुचित ठहराते थे जो स्क्रीब तथा इब्सन के परीक्षण के लिए उपयुक्त थे।

यह कथन वैसे तो ठीक लगता है, परन्तु ध्यान से देखने से ज्ञात हो जाता है कि यह प्रामाणिक नहीं है। बहुत सम्भव है कि अर्द्धमध्ययुगीन ग्रीन तथा मैसिंजर को स्क्रीब तथा इब्सन के स्तर पर जाँचना अनुचित हो, परन्तु उन्हें प्राचीन तथा आधुनिक महान् नाटककारों की तुलना से प्राप्त हुए स्तरों से मापना अनुचित नहीं होगा। यदि हम एस्किलस, सॉफ़ॉक्लीज़, शेक्सपियर, मोलियर, कैल्डरॉन, रासीन, बोमार्शे, स्क्रीब, इब्सन, ज़ूडेरमान और पिनेरो जैसे महान् नाटककारों के नाटकों के आधार पर नाट्य-रचना की कला के कुछ नियम निर्धारित कर सकें तो उन नियमों को नाट्य-कला के शाश्वत सत्य के रूप में स्वीकार करना अनुचित न होगा, और न यह कहना कि मैसिंजर तथा ग्रीन इस स्तर तक पहुँचने में असफल होते हैं, जबकि नाटक के लम्बे इतिहास में ऐसे उदाहरण मिलते हैं—कुछ स्क्रीब तथा इब्सन के जन्म के बीसों शताब्दी पूर्व—जबकि नाटककार ऐसे ऊँचे स्तर तक पहुँचे हैं।

अपने उच्चतम रूप में नाटककार की कला वास्तुकार की कला के निकट प्रतीत होती है। अच्छे भवन के समान ही एक अच्छे नाटक में ठोस ढाँचा तथा सरल और दृढ़ रूप-योजना होनी चाहिए, और नींव इतनी चौड़ी होनी चाहिए कि वह अत्यन्त विशाल ढाँचे को सँभाल सके। इसमें वस्तु-बीज की एकता, समस्त बाहरी प्रसंगों से मुक्ति, प्रेरकतत्वों की यथार्थता, चरित्र की विविधता, कथा के उद्घाटन में स्पष्टता, घटनाओं की सम्भाव्यता, तर्कसंगत संबद्धता, तीव्र गति तथा रुचि की निरन्तर वृद्धि होनी ही चाहिए। ये गुण ईडिपस, ऑथेलो, तारत्युफ और गोस्टस आदि नाटकों में विद्यमान हैं। परन्तु डाक्टर फॉस्ट्स अथवा रोमन ऐक्टर में नहीं मिलते और एलिज़ाबेथकालीन नाटककारों के नाटकों में, विशेषकर शेक्सपियर में, तो प्राय: नहीं हैं।

यदि इन त्रुटियों का अस्तित्व है, तो निश्चय ही तथ्य से आँखें मूँदना अदूरदर्शिता है; और व्यर्थ में यह बताना अनुचित है कि एलिजाबेथकालीन नाटकों में वह है जो वास्तव में उनमें नहीं है। निश्चय ही यह स्वीकार कर लेना अधिक उचित और यथार्थ होगा कि एलिजाबेथकालीन नाटककारों ने नाटकों को सुसंबद्ध तथा संघटित रूप देने की कला नहीं सीखी थी और उस काल के समालोचकों ने भी इस ओर बहुत कम ध्यान दिया था। निश्चय ही, जिस रूप में वस्तुएँ हैं उन्हें पुन: उसी रूप में देखना, उनके विषय में सत्य और केवल सत्य, पूर्ण सत्य बताना ही बुद्धिमानी होगी। समालोचना के लिए भी ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है। एलिजाबेथकालीन नाटककार वास्तव में इतने महान् हैं कि हम निश्चिन्त होकर यह देख सकते हैं कि उनकी सच्ची महत्ता किस बात में निहित है। वे कवि के रूप में तो अत्यन्त महान् हैं, परन्तु यह स्पष्ट है कि—शेक्सपियर के समान—वे कभी ही, और प्राय: संयोग से ही, नाटककार के रूप में महान् हो सके हैं।

बारहवाँ अध्याय

पद्य-नाटक और नाट्य-कविता

1

उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेज़ी साहित्य में काव्य और नाटक के बीच जो सम्बन्ध-विच्छेद दिखाई देता है, वह दोनों ही के लिए अहितकर है। कोई भी व्यक्ति, जिसके हृदय में दोनों के प्रति कुछ भी सद्भावना है, यही चाहेगा कि किसी भी प्रकार दोनों पक्षों के मतभेद को दूर कर उनमें पुनः समझौता करा दिया जाय। रंगमंच आज पहले से अधिक समृद्ध और लोकप्रिय है, और आधुनिक जीवन पर आधारित तथा जीवन की वर्तमान समस्याओं को लेकर चलने वाला गद्य-नाटक धरती पर अपनी जड़ें मज़बूत कर चुका है। इसके आधार पर यह अनुमान लगाना कि आगामी अर्द्ध-शताब्दी में अंग्रेज़ी या अन्य भाषाओं में नाटक कितना समृद्ध और सम्पन्न हो जायगा, कठिन नहीं है। पूर्व युगों के नाट्य-साहित्य में जितनी भी श्रेष्ठ कृतियाँ हुई हैं, वे सब विषय और निरूपण दोनों दृष्टियों से काव्यात्मक हैं। तो क्या ऐसा अनुमान लगाना उचित होगा कि भावी नाटक विषय-वस्तु तथा उसके निरूपण दोनों की दृष्टियों से काव्यात्मक होंगे?

यदि माँग और पूर्ति का नियम कलाओं में भी उतना ही घटित होता जितना व्यापार में, तो हम पद्य-नाटकों के पुनरागमन की आशा कर सकते थे, क्योंकि यह प्रत्येक कलाप्रेमी व्यक्ति की माँग है। लेकिन आवश्यक यह है कि जब हम काव्यात्मक नाटकों की माँग करें तो यह जानें भी कि हम वास्तव में कौन-सी चीज़ चाहते हैं? यह निश्चित है कि हमारी माँग उस वर्ण-संकर पाठ्य-नाटक के लिये नहीं है, जिसे रंगमंच पर खेला ही नहीं जा सकता; वह तो केवल कथोपकथन में पिरोयी गई कविता है, जो अभिनेताओं द्वारा दर्शकों के सम्मुख रंगमंच पर प्रस्तुत ही नहीं हो सकती; और थोड़े-से ऐसे लोगों को ही प्रिय हो सकती है, जो अपने मन से इस पसन्द के लिए समझौता कर सकते हों। लेकिन बाक़ी लोग तो यह नहीं चाहते। अपने वैभव-काल में पद्य-नाटक ने हमेशा अपने समय के रंगमंच की आवश्यकताओं के अनुसार अपने को ढाला है। एक तो यह नाटक हमेशा घटना-प्रधान रहा है, और इसमें पद्य हमेशा घटनाओं के सामने गौण रहा है। हम नाटक को पुस्तकालय में पढ़ना नहीं चाहते, बल्कि पूर्ण साज-सज्जा के साथ रंगमंच पर देखना चाहते हैं। ब्रूनेत्यार का कहना है

कि "जब तक कोई नाट्य कृति जनता के सहयोग से रंगमंच पर नहीं निखर जाती, तब तक उसकी अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं; इनके अभाव में, मेरा निश्चित विश्वास है, कि नाटक मात्र पद्य-रचना से ऊपर न कुछ हो सकता है, और न कभी हुआ है।" दूसरे शब्दों में, हमें पद्य नाटक और नाट्य कविता दोनों के अन्तर को भलीभाँति स्पष्ट करना है—अर्थात् कथोपकथन में गुँथी ऐसी काव्यात्मक रचना जो रंगमंच पर बोलने के लिए लिखी गई हो, और दूसरी ऐसी रचना जो केवल कमरे में बैठकर पढ़ने के लिए लिखी गई हो। जब तक दूसरे प्रकार का नाटक पद्य-नाटक होने का दावा नहीं करता, तब तक उस पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती, लेकिन हमें आपत्ति तब होती है जब नाट्य कविता पद्य-नाटक का स्थान लेने और उसी के समान सम्मान प्राप्त करने की कोशिश करती है। वास्तव में रंगमंच के दृष्टिकोण से लिखे गए पद्य-नाटक और केवल पठन-पाठन के लिए लिखी गई नाट्य कविताओं में अनिवार्य अन्तर है, इस विषय में कोई भ्रम नहीं रहना चाहिए। नाट्य कविता तभी अस्वीकृत होती है, जब वह पद्य-नाटक के रूप में स्वीकृत होना चाहती है, क्योंकि तब वह दूसरे के पद की अधिकारिणी होने का झूठा दावा करती है।

फिर भी इस प्रकार की नाट्य कविताओं के प्रशंसकों की संख्या कम नहीं है। एक का तो दावा है कि "पाठ्य-नाटक साहित्य को एक सच्ची देन है, क्योंकि नाट्य कविताओं पर केवल रंगमंच का ही एकाधिकार नहीं है।" इस कथन से नाटक के सिद्धान्त के सम्बन्ध में एक मिथ्या धारणा प्रकट होती है, यह नाटक के इतिहास का कोई भी विद्यार्थी समझ सकता है, नाटक पर हमेशा से रंगमंच का ही एकाधिकार रहा है और हमेशा रहेगा। इसलिए यह स्पष्ट है कि पाठ्य-नाटक के लिखे जाने का कारण कुछ कवियों की रंगमंच सम्बन्धी कला को सीखने की असमर्थता या अनिच्छा है, परन्तु इस विशेष कौशल के द्वारा ही नाटककार अपना नाम चरितार्थ कर सकता है।

पाठ्य-नाटक एक ऐसा नाटक है जो रंगशाला में खेले जाने के लिए नहीं लिखा गया होता; इस बात को इस नाटक के प्रशंसक भी अस्वीकार नहीं करेंगे। कथोपकथन के रूप में लिखी गई यह एक ऐसी कविता है जो न रंगमंच के दृष्टिकोण से लिखी जाती है और न अभिनेता तथा दर्शकों को ही ध्यान में रखकर। यह केवल पुस्तकालय के पाठक के लिए लिखी जाती है और इसमें नाटक के सम्भाव्य दर्शक की मांगों को ध्यान में नहीं रखा जाता। यदि हम इस परिभाषा को मान लें तो पाठ्य-नाटकों की किसी भी सूची को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—एक पद्यात्मक नाटक, दूसरा नाट्य कविता। पद्यात्मक नाटक के अन्तर्गत हम टैनीसन के बेकेट को प्रतिनिधि के रूप में ले सकते हैं। यदि हम पाठ्य-नाटक को ऐसी नाट्य कविता मानते हैं जो रंगमंच पर खेले जाने के विचार से नहीं लिखी जाती है तो बेकेट को पाठ्य-नाटक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि टेनीसन ने इसे रंगमंच पर खेले जाने के

विचार से ही लिखा था। इस आधार पर उन्हें किसी भी पाठ्य-नाटक का लेखक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे चाहते थे कि उनके सभी नाटक रंगमंच पर खेले जाएँ और इसके लिए वे मैनेजर की इच्छानुसार उनमें संशोधन या परिवर्तन करने के लिए भी तैयार रहते थे। इन नाटकों को रंगमंच पर सफलता न मिलने के दो ही कारण हो सकते हैं—या तो राजकवि टेनीसन में नाटककार की विशिष्ट प्रतिभा का अभाव था, या उन्होंने नाट्य-रचना के शिल्प को सीखने का कष्ट नहीं उठाया। ब्राउनिंग के दो नाटक **स्ट्रैफोर्ड** और **ब्लॉट इन द स्कचन** न केवल रंगमंच पर खेले जाने के लिए बल्कि एक विशेष अभिनेता के लिए लिखे गए थे। इसी प्रकार शैली ने **सेन्सी** की रचना कुमारी ओ नील के लिए की थी। कालरिज ने **रिमोर्स** की और जॉनसन ने **आइरीन** की रचना रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाने के लिए की थी और उन्हें मंच पर प्रस्तुत किया भी गया था।

यदि इन नाटकों को रंगमंच पर सफलता नहीं मिली तो इसका एक कारण यह था कि इनके लेखकों ने अपना ध्यान केवल रंगमंच की ही ओर केन्द्रित नहीं रखा। हो सकता है कि उनके मन में दर्शकों का चित्र रहा हो, परन्तु उसके साथ पाठक भी थे जिनके पास पर्याप्त समय होता है। इसी दुविधा के कारण उनके नाटक इन दोनों में से किसी को भी संतुष्ट न कर सके और उसी आलोचक के लक्ष्य बने जो स्टेंडाल ने मान्ज़ोनी की नाटकीय कविताओं के सम्बन्ध में की थी। उन्होंने लिखा था—"पात्र ऐसे लगते हैं जैसे सुन्दर, लालित्यपूर्ण शब्दों की खोज में रुक से गए हों।" गेटे ने 1826 में एकरमान को जो चेतावनी दी थी, उस पर भी इन लेखकों ने ध्यान नहीं दिया। उन्होंने कहा था—"यदि पढ़ने पर कोई नाटक हम पर अभीष्ट प्रभाव डालता है तो हम समझते हैं कि रंगमंच पर भी वह इसी प्रकार प्रभावपूर्ण होगा और बिना अधिक प्रयास के हम इसमें सफलता प्राप्त कर सकेंगे। लेकिन जब तक कवि अपनी सच्ची इच्छा और अपनी विशिष्ट प्रतिभा से नाटक को विशेष रूप से रंगमंच के ही लिए नहीं लिखता तब तक सफलता उसके हाथ नहीं लगती। चाहे ऐसे नाटक के साथ जो कुछ किया जाय, वह सदा दुःसाध्य रहता है।" फिर अपना अनुभव बताते हुए वे लिखते हैं—"**गौड्स** को लिखने के लिए मैंने क्या कष्ट नहीं उठाया, लेकिन फिर भी रंगमंच पर वह कभी सफल नहीं हो सका।"

दूसरे वर्ग की नाट्य कविताओं को पाठ्य-नाटक की संज्ञा तभी दी जा सकती है जबकि इसकी परिभाषा को और विस्तृत किया जाय, क्योंकि वे स्पष्ट रूप से नाट्य कविताएँ हैं, जिनमें आधुनिक नाटक के बाह्य स्वरूप की नकल करने की कोशिश नहीं की गई है। । इस वर्ग के अन्तर्गत हम आरनोल्ड के **एंपिडाक्लीज़ ऑन एटना** और स्विनबर्न के **अटलांटा इन कैलोडॉन** तथा यूनानी त्रासदी की नक़ल में लिखे गए अन्य सभी नाटकों को शामिल करते हैं। एक लुप्त नाटक शैली को पुनर्जीवित करने के लिए लिखे गए इन नाटकों की मुख्य विशेषता यह है कि ये सभी अनुकरण

के प्रयास हैं। ये वैसे ही हैं जैसे चित्रकार के अभ्यास का लिए प्राचीन चित्रों की अनुकृतियाँ करना। कवि ने इनमें उस रस की फिर से सृष्टि करने की कोशिश की है जो अब सदैव के लिए लुप्त हो चुका है। यह सम्भव है कि इनमें हमें कवियों की छन्द-कला और निपुणता का परिचय मिल जाय और उनकी उस प्रतिभा का भी दिग्-दर्शन हो जाय, जिससे उन्होंने प्राचीन कला को पुनर्जीवित करने के इस कठिन कार्य को निभाया। लेकिन यह प्रयास कभी सफल नहीं हो सकता, क्योंकि आधुनिक कवि के लिए यह सर्वथा असम्भव है कि वह शताब्दियों से अर्जित विचारों और मानवों के प्रभाव को अपने से दूर करके प्राचीन यूनान के मनोभावों को ग्रहण कर सके। कहा जाता है कि **अटलांटा इन कैलीडॉन** यूनानी त्रासदी के सभी अनुकरणों में सबसे अधिक यथार्थ और सफल है, फिर भी उसमें गहरी आधुनिकता और गहरा अंग्रेज़ीपन है। अनुकरण चाहे कितने ही कुशल और निपुण क्यों न हों, उनमें कभी कोई कवि ख्याति नहीं प्राप्त कर सकता, भले ही कहीं हम अनुकरणों के कारण उसके शिल्प की प्रशंसा में थोड़ी वृद्धि हो जाय। स्विनबर्न के इस नाटक को ध्यान में रखकर सी लॉवेल ने लिखा है—"बाह्य अनुकृति द्वारा या विश्लेषणात्मक समालोचना के निर्धारित नियमों के आधार पर किसी पुरातन प्रतिष्ठत कृति का अनुकरण करने से केवल कृत्रिम की सृष्टि हो सकी, कलात्मक की नहीं।" इसी सम्बन्ध में एक अन्य स्थान का उदाहरण भी यहाँ उपयुक्त होगा। "जीवन-रस से सिक्त, स्थायी और उच्च-कोटि का साहित्य विद्वत्ता, समालोचना, अध्ययन या सही अनुकरण से निर्मित नहीं होता। वह तत्कालीन युग की और तत्कालीन व्यक्तियों की विशेषताओं और विशिष्ट स्वभावों की उपज होता है।"

2

पाठ्य नाटक हमको प्रभावित करने में असफल रहता है, क्योंकि इसकी रचना अत्यन्त सरल और सुगम है। कलाकार को सबसे अधिक स्फूर्ति तब मिलती है जब उसे किसी कठिनाई का सामना करने की आवश्यकता पड़ती है। तभी वह अपनी सारी शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग करता है। उसके प्रयास को सरल बनाना, और प्रति-बन्धों और नियमों को ढ़ीला कर देना कलाकार को उसके कार्य में सहायता देना नहीं है, उसकी उच्च उपलब्धियों में बाधा डालना है। हक्सले का कहना है कि मनुष्य को कष्ट तभी होते हैं जब वह अपनी मनमानी कर सकता है। दृढ़ प्रकृति का व्यक्ति हमेशा विरोधी तत्वों से जूझने को आतुर रहता है। और उसे भलीभांति ज्ञात है कि इससे उसमें नई तत्परता आती है। पाठ्य-नाटक के प्रशंसक अक्सर इस तथ्य को भूल जाते हैं। एक का तो यहाँ तक दावा है कि—

> "पाठ्य-नाटक के लेखक को अपने कार्य में रंगमंच के नाटककार की अपेक्षा अधिक स्वतन्ता होती है, क्योंकि वह रंगमंच की व्यावहारिक माँगों और मैनेजर या दर्शकों की इच्छाओं और शर्तों से नहीं बँधा होता; न उसे कम्पनी

की आमदनी बढ़ाने की चिन्ता होती है और न किसी विशेष अभिनेता या अभिनेत्री के लिए पात्र की सृष्टि करने की। रंगमंच के अनुकूल उत्तेजनापूर्ण परिस्थितियों और घटनाओं का समावेश करने के लिए उसे पात्र की यथार्थता और कथावस्तु की सम्भाव्यता का परित्याग करने की भी आवश्यकता नहीं। कथन अधिक लम्बा न हो जाय, अत्यधिक अलंकृत न हो जाय, इतना दार्शनिक और विचारपूर्ण न हो जाय कि पात्र उसे रंगमंच पर निभा न सके—उसकी क़लम पर इन सब बातों का प्रतिबन्ध नहीं। यदि किसी स्थल पर घटनाओं में शिथिलता आ जाय तो भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। संक्षेप में, कह सकते हैं कि रंगमंच के नाटककार और पाठ्य-नाटककार के उद्देश्यों में वैषम्य होने के कारण पाठ्य-नाटककार की पद्धति बिलकुल भिन्न और स्वतन्त्र होगी।"

इसमें पाठ्य नाटक के लेखक की जो विशेषताएँ निर्दिष्ट की गई हैं, वही उसकी सबसे बड़ी कमज़ोरियाँ हैं। जितना ही जान-बूझकर कोई कवि इन छूटों का उपयोग करता है, उतनी ही अधिक उसकी रचना सच्चे नाटक से दूर होती जाती है, जिसकी संकल्पना शेक्सपियर और मोलियर के मन में थी; उसमें वे अपने पात्रों को अपनी कम्पनी के अभिनेताओं के अनुकूल बनाते थे और धन-अर्जन की ओर उनमें गहरी रुचि होती थी। इस बन्धन को तोड़कर जो कवि दूर भागना चाहता है वह अशक्त और डरपोक कहलाएगा। यदि पाठ्य नाटककार का उद्देश्य रंगमंच के नाटककार के उद्देश्य से भिन्न और उसकी पद्धति सर्वथा स्वतन्त्र है तो यही एक निष्कर्ष निकलता है कि जो यह लिखेगा वह नाटक नहीं होगा। उसमें अवास्तविकता का पुट होगा।

अपने कविता संग्रह के समर्पण में स्विनबर्न लिखते हैं—"जब कभी मैंने कोई नाटक लिखा, वह केवल इस दृष्टि को सामने रखकर कि वह ग्लोब, रेड बुल, या ब्लेक फायर्स जैसी अर्द्ध-मध्ययुगीन रंगशालाओं में खेला जा सके।" एलिज़ाबेथ के काल में ये ही तीन मुख्य रंगशालाएँ थीं, जिनके लिए तत्कालीन नाटककार अपना नाटक लिखा करते थे, और जिनकी ज़रूरतों और अवस्थाओं के अनुसार ही अपने नाटकों को ढाला करते थे। अपने नाटक **मारीनो फेलीरी** के विषय में चर्चा करते हुए वे लिखते हैं—"मेरी यह नाट्य कविता जो घटना-रहित और विचार-प्रधान होने के कारण आज के रंगमंच-शिल्प की दृष्टि से अनाटकीय है, मध्ययुगीन रंगमंच पर इतनी अनाटकीय न मानी जाती। जब चेपमेन के दो नाटकों को (यदि उन्हें नाटक की संज्ञा दी जा सकती है तो) जिनमें चरित्र के अध्ययन और घटनाओं की रोचकता के स्थान पर अलंकृत और ओजपूर्ण कथोपकथन को महत्त्व दिया गया है, एलिज़ाबेथ युग के विवेक-शील और उदार दर्शकों के बीच सफलता मिल सकती है, तो कोई कारण नहीं कि मेरा यह नाटक उस रंगमंच पर सफल न होता।"

स्विनबर्न के इस उद्‌गार के बारे में सबसे पहली आपत्ति यह है कि हमें

वस्तुतः इस बात की कोई निश्चित जानकारी नहीं है कि चेपमेन के इन नाटकों को एलिजाबेथ युग के दर्शकों के बीच सफलता मिली भी या नहीं। दूसरी बात यह कि हो सकता है कि घटनाओं से भरपूर कथावस्तुओं के कारण दर्शक इन नाटकों की अलंकृत भाषा और लम्बे-लम्बे कथोपकथन को सह गए हों। तीसरे, हमें इस पर भी आपत्ति है कि उस युग के दर्शक बौद्धिक रूप से अत्यधिक जागृत थे। चौथे, धारा-प्रवाह और जोशीले शब्द भाषण के अंग हैं न कि नाटक के, और इसलिए उनका उपयुक्त क्षेत्र भाषण-मंच है न कि रंगमंच, क्योंकि रंगमंच में तो केवल घटनाओं की रोचकता और चरित्र के अध्ययन को ही स्थान दिया जा सकता है।

लेकिन स्विनबर्न का कथन विरोध के योग्य भी नहीं है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि उनमें नाटक को समझने की शक्ति नहीं है। सॉफॉक्लीज़ से लेकर इब्सन तक जितने भी महान् नाटककार, और अरस्तू से लेकर लेसिंग तक जितने भी महान् नाटक समालोचक हुए हैं, सभी ने नाटक की आत्मा को समझा है। यह सच है कि सिडनी, जो इटली के साहित्यिक पुनर्जागरण की चौथी सैद्धान्तिक समालोचना से अत्यधिक प्रभावित थे, इस बात पर विश्वास रखते थे कि अंग्रेज़ी नाटककारों को अपनी रचनाएँ यूनानी नाटकों के अनुरूप ढालने की कोशिश करनी चाहिए ; लेकिन स्विनबर्न ने शेक्सपियर के नाटकों में जो इन सिद्धान्तों के विपरीत केवल तत्कालीन रंगमंच के अनुरूप ही ढाले गए हैं, कोई दोष नहीं पाया। ह्यूगो और शेक्सपियर दोनों के समान रूप से प्रशंसक और भक्त होते हुए भी स्विनबर्न ने स्वयं उनके दृष्टान्तों का अनुकरण नहीं किया, यह आश्चर्य की बात है। शेक्सपियर ने जिस रूप में रंगमंच को पाया, उससे वह संतुष्ट थे ; यद्यपि हमें लगता है कि रंगमंच उस समय कुछ अर्द्ध-मध्ययुगीन था और उनकी प्रतिभा के अनुपयुक्त था। ह्यूगो में स्विनबर्न की अपेक्षा नाटक की प्रतिभा कुछ अधिक थी, और अपनी कला को परिष्कृत करने के लिए उन्होंने रंगमंच के उन पेशेवर नाटककारों की प्रक्रियाओं को सीखा जिनके घटना-प्रधान नाटक उनकी युवावस्था में लोकप्रियता प्राप्त कर चुके थे।

3

यह आश्चर्य की बात है कि फ्रांसीसी साहित्य का सर्वेक्षण करते समय स्विनबर्न का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ कि फ्रांस के प्रारम्भिक आलोचकों ने पाठ्य नाटकों के प्रति एक भी प्रशंसात्मक शब्द नहीं कहा है। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि फ्रांस के कवि कभी भी पाठ्य-नाटकों की ओर आकृष्ट नहीं हुए ; जब उन्होंने नाटक के क्षेत्र में प्रवेश किया तो वे अपने समय के रंगमंच से संतुष्ट थे। रास्ताँ ने अपने नाटक तत्कालीन रंगमंच की स्थिति को ध्यान में रखते हुए ही लिखे। मूसे ने भी, जो थोड़े समय के लिए इस ओर से विमुख हो गए थे, अपने नाटकों की रचना समकालीन रंग-मंच के इतने अनुकूल की है कि बहुत-ही थोड़े परिवर्तन के साथ वे नाटक आसानी से रंगमंच पर प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में इंगलैंड और अमरीका में जब ये पाठ्य-नाटक प्रकाशित हो रहे थे उस समय महान् पात्रों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए वहाँ पर अभिनेताओं की कमी नहीं थी। कई अभिनेता अपनी नाटकीय और अभिनय प्रतिभा के अनुकूल नये पात्रों का अभिनय करने के लिए इच्छुक भी थे। शेक्सपियर के नाटक आज तक रंग-मंच पर जिस प्रकार लोकप्रिय हो रहे हैं, उससे सिद्ध होता है कि पद्य नाटकों में रुचि रखने वाले दर्शकों की संख्या अब भी कम नहीं, यदि वे पद्य-नाटक नाटकीय और काव्यात्मक गुणों में शेक्सपियर के नाटकों के समान हों। यदि अंग्रेज़ी कवि भी ह्यूगो और रास्ताँ के आदर्शों पर चलते और तत्कालीन रंगमंच के शिल्प का अध्ययन करने की कोशिश करते तो कोई कारण नहीं था कि ये रंगमंच पर असफल होते। लेकिन इस परिश्रम से वे हमेशा बचते रहे और फलस्वरूप आज उन्हें सम्मान का वह स्थान नहीं दिया जा सकता जो किसी भी कलालार को केवल तभी मिल सकता है जब वह अपनी कला की बाधाओं को दूर कर देता है। उन्होंने दूसरे सरल मार्ग को अपनाया और संवाद के रूप में पद्य लिखे, जिनमें आवश्यक काव्यात्मक गुण भले ही विद्यमान हों पर नाटकीय गुणों से वे सर्वथा वंचित थे।

साहित्य के इतिहास का यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि पाठ्य-नाटकों का उद्भव केवल तभी हुआ है जब साहित्य और रंगमंच के बीच सम्बन्ध-विच्छेद रहा है। सर्वप्रथम उसका प्रादुर्भाव नीरो के समय मे रोम में हुआ जब रंगमंच भद्दी और हिंसात्मक घटनाओं और दृश्यों का अखाड़ा बन गया था। सेनेका ने अपने परिमार्जित नाटक केवल पाठ के लिए प्रस्तुत किये। इसी इतिहास की पुनरावृत्ति इटली में हुई, जब यूनानी त्रासदी और लेटिन कामदी के रूढ़ कलात्मक नियमों से प्रभावित विद्वानों ने तत्कालीन मुखौटा और मिरेकल नाटकों को घृणा की दृष्टि से देखना शुरू किया, और प्राचीन नाट्य-पद्धतियों के खोखले अनुकरण प्रस्तुत किये जिनमें तत्कालीन रंगमंच का कुछ भी ध्यान नहीं रखा गया। 19वीं शताब्दी के आरम्भ में यही स्थिति एक बार फिर इंगलैंड में उत्पन्न हुई, काटज़ेबू और स्क्रीब के नाटकों के रूपान्तरण प्रचलित हो गए।

उपन्यासों ने लेखकों का ध्यान नाटकों से दूर खींचना शुरू किया, क्योंकि उपन्यास लिखना सरल था, और उपन्यास लिखकर जनता तक पहुँचना अधिक आसान था, और इनके द्वारा समुचित धन की प्राप्ति भी होती थी। कहने का अर्थ यह कि पाठ्य नाटकों का उद्भव उन्हीं परिस्थितियों में सम्भव हुआ जब रंगमंच की अवहेलना की जाने लगी, और रंगमंच के शिल्प से अनभिज्ञ नाटककार रंगमंच-सम्बन्धी समस्याओं का समाधान किये बिना पाठ्य नाटकों की रचना कर उच्च नाटककारों की सूची में अपना नाम जोड़ने की कोशिश करने लगे। यही कारण है कि नाटक इतिहास के स्वर्ण-काल में हमें कहीं भी पाठ्य नाटकों के दर्शन नहीं होते, क्योंकि ऐसे युग में नाटककार रंगमंच के शिल्प के रहस्य को जानने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

नीरो के अधीन रोम में और साहित्यिक पुनर्जागरण के समय इटली में पाठ्य-नाटकों के सजन के कुछ विशेष कारण माने भी जा सकते हैं पर इंगलैंड में 19वीं

शताब्दी में इसके पुनर्जन्म का कोई विशेष कारण नहीं था, क्योंकि वहाँ अभिनेता और दर्शक दोनों समान रूप से नये नाटककार को मान्यता देने के इच्छुक थे। बीसवीं शताब्दी में इसकी रचना का तो और भी कोई कारण नहीं, क्योंकि इब्सन ने यह स्पष्ट कर दिया कि किस प्रकार शुष्क से शुष्क विषय को भी सफलतापूर्वक आधुनिक रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। जिस रंगमंच पर शेक्सपियर और इब्सन के नाटक सफल हो चुके हैं, उसको तिरस्कृत करने का और उसके शिल्प की पूर्ण अवहेलना करने का आज के कवियों को कोई अधिकार नहीं। नाटक पुस्तकालय के लिए नहीं, बल्कि रंगमंच के लिए लिखे जाते हैं। वे केवल चन्द कला-प्रेमियों की तुष्टि के लिए नहीं, बल्कि समूची जनता के मनोरंज के लिए होते हैं। ब्वालो ने सच ही कहा था, "यदि किसी नाटक में सामान्य जनता पर प्रभाव डालने वाला कोई तत्त्व नहीं है, तो भले ही चन्द कला-पारखी उसे अपनी स्वीकृति प्रदान कर दें, वह सफल नहीं हो सकता ; और अन्त में वे प्रशंसक स्वयं अनुभव करेंगे कि उनकी प्रशंसा उचित न थी।"

4

पाठ्य-नाटक ग़रीबी के समान है, जो हमेशा किसी न किसी रूप में हमारे बीच बनी ही रहती है। परन्तु अपनी भाषा में जिस प्रकार के पद्य- नाटक के पुनरुज्जीवन की हम इच्छा करते हैं, वह इससे भिन्न है। तब प्रश्न उठता है कि हम जो पद्य-नाटक चाहते हैं उसका यथार्थ स्वरूप क्या है ? परन्तु इतना निश्चित है कि उसको नाट्य-रूपांतरित ऐतिहासिक उपन्यास तो नहीं ही होना चाहिए, जो महान् कार्य और ललित शब्दों से पूर्ण तथा कवित्व की वास्तविक प्रेरणा से रहित अतुकांत छंद का वेष-प्रधान नाटक मात्र होता है।

सम्भवत: कुछ दर्शकों के मन में यह भाव उत्पन्न हो गया है कि वेष-प्रधान नाटक, जो पचास साल से पहले के किसी भी समय की पृष्ठभूमि पर लिखे गए हों, और जिनकी शैली तत्कालीन नाटकों से भिन्न हो, अवश्य ही आज के गद्य-नाटक की अपेक्षा साहित्यिक दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ और उच्च बौद्धिक स्तर के होंगे। यह भाव काफी दर्शकों का हो गया है कि अतुकांत पद्य-नाटकों को देखने के लिए पैसा खर्च करने पर वे समझते हैं कि इससे उच्च साहित्य को परखने की उनकी क्षमता प्रकट होती है, परन्तु आँखों को चकाचौंध कर देने वाली वेषभूषा और लम्बे-चौड़े संवादों के समावेश से उन नाटकों में उच्च साहित्य की कोटि में सम्मिलित किये जाने की क्षमता नहीं आ जाती। ऐसा हो सकता है कि जिस नाटक का सृजन इस प्रकार हो वह वास्तविकता से दूर हो और कृत्रिम जीवन-शैली पर आधारित होने के कारण उसमें साहित्यिकता का पूर्ण अभाव हो। सच बात तो यह है कि भड़कीली पोशाकों से भरपूर और सर्वगुण-सम्पन्न ऐतिहासिक नायक-नायिकाओं से आच्छादित, उत्तेजनापूर्ण और घटना-प्रधान नाटकों की अपेक्षा वे आडंबर-रहित प्रहसन कहीं अच्छे हैं, जो युग की कुछ विशेषताओं और दुर्बलताओं को पकड़ सके हैं। ऐसे ही नाटकों से नाटक के भविष्य की अधिक

सूचना मिल सकती है, क्योंकि इनकी जड़ वास्तविकता में होती है, और इन्हीं में सच्चे साहित्यिक गुण होने की अधिक आशा की जा सकती है, न कि अतुकांत छंदों के भव्य वेष-प्रधान नाटकों में जिनमें सच्चे कवित्व की दीप्ति कहीं नहीं मिलती।

केवल छन्द रचना ही कविता नहीं है। पद्य में लिखे होने पर भी कई नाटक गद्यात्मक होते हैं। इसके विपरीत साधारण गद्य में लिखे गए नाटक काव्य के रस और मार्मिकता से पूर्ण होते हैं। मेटरलिंक के लघु नाटक **इंट्रूडर** और **पेलीस एण्ड मेलीसांद** गद्यमें लिखे होने पर भी 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के सबसे अधिक काव्यात्मक नाटक कहे जा सकते हैं। उन्नीसवीं सदी के मध्य में अल्फ्रेड मुसे के कल्पना-नाटक कवित्व से पूर्ण है, परन्तु वे छन्द में नहीं लिखे गए। आल्ड्रिक के नाटक **जूडिथ** में, जो पद्य में लिखा गया है, न केवल नाटकीय गुणों का आभाव है बल्कि उसमें काव्यमयता का भी अभाव है; और इन्हीं का गद्य में लिखा हुआ नाटक **मर्सिडीज** कहीं अधिक काव्यात्मक और नाटकीय है। शेक्सपियर का सबसे अधिक काव्यात्मक नाटक **एज़ यू लाइक इट** अधिकांशतः गद्य में ही है। इसी प्रकार गद्य में लिखा हुआ लेडी मैकवेथ का निद्रा में चलने वाला दृश्य अत्यन्त भावपूर्ण है और काव्यात्मक गुणों से ओत-प्रोत है।

यह कहना अनुचित न होगा कि शेक्सपियर को अपने कर्त्तव्य के विषय में पूर्ण ज्ञान था और वे सहज ही जान लेते थे कि किस स्थिति में कौन-सा माध्यम ठीक रहेगा। जिस चातुर्य से शेक्सपियर ने **जूलियस सीजर** में अतुकान्त कविता, लययुक्त गद्य और बोलचाल की भाषा का सम्मिश्रण किया है, उससे उनकी असाधारण कुशलता का परिचय मिलता है—ब्रूटस, कैसियस और एन्टोनी जैसे मुख्य पात्र पद्य का प्रयोग करते हैं, गौण पात्र सन्तुलित लयात्मक भाषा में बोलते हैं और आम नागरिक साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं। कदाचित् आधुनिक नाटककार इन सभी नाटकों को पूरा-पूरा पद्य में ही लिख देता। शेक्सपियर के समकालीन नाटककारों में भी यह सहज ज्ञान नहीं दिखाई पड़ता।

आधुनिक भाषाओं के अन्य नाटककारों ने भी कहीं-कहीं यही ग़लती की है। ऑजिए ने **पॉल फारेस्टियर** में आधुनिक जीवन की एक अत्यन्त धार्मिक और भावपूर्ण परिस्थिति का चित्रण किया है; लेकिन पद्य के प्रयोग से इसका प्रभाव कम हो गया है। **लव्स कामेडी** लिखने के बाद, जो इब्सन की साधारणतम रचना है, उन्होंने पद्य में लिखना छोड़ दिया। उनका कहना है कि आधुनिक पात्रों के लिए गद्य ही सबसे उपयुक्त माध्यम है, परन्तु अत्यधिक कठिन भी।

यद्यपि सभी आधुनिक भाषाओं के नाटककारों में यह दोष मिलता है, लेकिन अंग्रेज़ी के नाटककार इसके सबसे अधिक दोषी रहे हैं, जिन्होंने ऐसे स्थान पर, जहाँ गद्य अधिक उपयुक्त रहता, पद्य का प्रयोग किया है। यह प्रभाव एलिजाबेथ युग के नाटकों का है, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन उस युग के लेखकों ने जो स्वतः प्रेरणा और

सहज इच्छा से लिखा, वही बाद के लेखक आयास से करने लगे। एलिज़ाबेथ युग के अधिकांश नाटककारों ने बिना समझे अतुकान्त पद्य का प्रयोग किया—चाहे, विषय पद्य के उपयुक्त हो या न हो। यहाँ तक कि शेक्सपियर ने भी **ऑल्स वेल दैट एण्डस वेल** और **मेज़र फ़ॉर मेज़र** जैसे अकाव्यात्मक नाटकों के लिए अतुकांत पद्य का प्रयोग किया है। यह प्रश्न उठता है कि एलिज़ाबेथ युग की यह प्रवृत्ति कहाँ तक बाद के नाटक के वास्तविक विकास में बाधक सिद्ध हुई। एलिज़ाबेथ युग के नाटककारों ने अपने समय में एक आदर्श स्थापित किया, और उसके प्रभाव से अभिभूत बाद के कवियों ने गुणों के साथ-साथ उनके दोषों का भी अन्धानुकरण किया—वास्तव में दोषों का अनुकरण गुणों के अनुकरण से कहीं सरल सिद्ध हुआ।

आज के नाटककार के सामने आधुनिक रंगमंच की जो परिस्थितियाँ और माँगे हैं,वे अर्द्ध-मध्ययुगीन रंगमच की परिस्थितियों और माँगों से बिलकुल भिन्न हैं। यह स्थिति चाहे हितकर हो चाहे अहितकर, परन्तु है। जिस प्रकार एलिजाबेथ युग के नाटककारों के लिए एथेन्स के नाटककारों के आदर्शों का अनुकरण अनुपयुक्त था, उसी प्रकार आधुनिक कवियों और नाटककारों के लिए एलिज़ाबेथ युग के नाटककारों के आदर्शों का अनुकरण अनुचित और अनुपयुक्त है। इसका कारण केवल यह नहीं कि उस समय के नाटक तत्कालीन अंग्रेज़ी रंगमंच की जरूरतों के अनुसार ढले थे, बल्कि यह भी कि मध्ययुगीन परम्पराओं के कुछ अवशेष तब भी विद्यमान थे, जिनके परिणामस्वरूप बहुत-कुछ ऐसी चीज़ें, जो वास्तव में नाटक के उपयुक्त न होतीं, दर्शकों की माँगों को पूरा करने के लिए समाविष्ट कर दी जाती थीं; रंगमंच में दृश्य-सज्जा के अभाव में नाटककार संवादों में ही ऐसे वर्णन रखता था, जो दृश्य का चित्र दर्शकों के सामने प्रस्तुत कर दें, या इसी प्रकार गाने वाले अभिनेता के लिए नाटक में एक स्वतन्त्र गीत की व्यवस्था करना वह कभी नहीं भूलता था। आज नाटक में इन सब बाह्य उपक्रमों का त्याग कर दिया गया है। आधुनिक रंगमंच के पात्रों के लिए यह आवश्यक नहीं कि वे गा सकें; और रंगमंच पर दृश्य-सज्जा की व्यवस्था होने के कारण नाटककार के लिए, व्यर्थ शाब्दिक चित्रण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं रही।

5

आज नाटक के प्रत्येक अनाटकीय तत्व का बहिष्कार कर दिया गया है। घटनाओं और पात्रों के अतिरिक्त उसमें अन्य किसी वस्तु के लिए स्थान नहीं है। आज नाटक सुसम्बद्ध है। उसमें न दृश्य-वर्णन के लिए स्थान है और न ही लम्बे-लम्बे विवरणों के लिए, भले ही वे कितने ही ओजपूर्ण और सुन्दर क्यों न हों। उसका एकमात्र उद्देश्य कार्य-व्यापार चित्रण करना और उसके प्रभाव को दिखाना है। सुन्दर, लालित्यपूर्ण दृश्य-वर्णन के लोभ का संवरण न कर सकने के कारण ही स्टीफेन फिलिप्स के नाटक नाटकीय और गीतात्मक अधिक हो गए हैं। उनके दृश्यों के वर्णन अक्सर अत्यन्त प्रभावशाली और सुन्दर बन पड़े हैं, लेकिन स्थान और समय की अनुपयुक्तता के

कारण वे ऊपर से थोपे से लगते हैं, स्वतः प्रेरित और सहज नहीं प्रतीत होते। उनमें उस स्वभाविक सहजता और प्रवाह का अभाव स्पष्ट लक्षित होता है जो अक्सर शेक्सपियर के नाटकों की विशिष्ट स्थितियों में हमारे मन और मस्तिष्क को बाँध लेता है।

काव्य-नाटक न पाठ्य-नाटक है, न अतुकांत पद्य में बद्ध वेष-प्रधान नाटक, और न एलिज़ाबेथयुगीन नाटकों का अन्ध अनुकरण ही। सच्चा काव्य-नाटक हमेशा अपने काल की रंगमंच की ज़रूरतों को ध्यान में रखकर लिखा जाता है, भले ही वह गद्य में हो या पद्य में। लेकिन विषय और प्रतिपादन की दृष्टि से उसका काव्यात्मक और नाटकीय होना आवश्यक है। अकाव्यात्मक और साधारण विषय-वस्तु इसके लिए अनुपयुक्त है। कहानी में सौष्ठव द्वारा ही इसे काव्य के उच्च स्तर तक पहुँचाया जा सकता है, क्योंकि केवल भावात्मक और अलंकृत गीतों से इसमें काव्यात्मकता सम्भव नहीं। इसके लिए यह ज़रूरी नहीं कि कहानी अलौकिक, अद्भुत या असाधारण हो। कोई भी सामान्य, परिचित घटना या पुरानी परिचित कथा जो साधारण होने पर भी हमेशा नयापन और ताज़गी लिए होती है, इस नाटक की कथा-वस्तु बन सकती है।

सफल काव्य-नाटक को काव्यमय और नाटकीय दोनों ही होना आवश्यक है; लेकिन काव्य के नाम पर केवल थोथी कल्पनाओं का संकलन न हो, और न ही ऐसे विचित्र पात्रों की ही सृष्टि की जाय जो किन्हीं विशेष परिस्थितियों में भिन्न व्यवहार करते हों। प्रोफेसर लाउन्सबरी ने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया है : "कथानक चाहे जैसा रखें, कहानी कितनी ही असम्भव और वास्तविकता से दूर हो सकती है; आपत्तिजनक होते हुए भी यह सब क्षम्य है। जो चीज़ क्षम्य नहीं है, वह है पात्रों का असामान्य व्यवहार अर्थात् सामान्य बुद्धि से बहक कर विचित्र तरीकों से व्यवहार करना।" प्रोफेसर लाउन्सबरी का कहना है कि शेक्सपियर की अन्तर्दृष्टि ने इस विषय में कभी चूक नहीं की। शेक्सपियर की कथावस्तु हो सकता है बिलकुल अविश्वसनीय कहानी पर आधारित हो, जैसे **मर्चेंट ऑफ वेनिस** में। उनका केवल एक आग्रह है कि यह मान लिया जाय कि उनकी कहानी कहीं घटित हो सकती है। इसके अतिरिक्त हमारे विश्वास को और कहीं आघात नहीं पहुँचता, स्वाभाविकता को और कहीं ठेस नहीं लगती। प्रत्येक परिस्थिति में हम अनुभव करते हैं कि जिस प्रकार शेक्सपियर के पात्र बोलते या कार्य करते हैं, वही स्वाभाविक है। प्रेरक तत्व पर्याप्त है, व्यवहार, जैसी हम अपेक्षा कर सकते हैं, वैसा ही है।

जब ब्राउनिंग के नाटकों को हम एक कसौटी पर कसते हैं तो लगता है कि उनके पात्र वह नहीं करते, जिसकी हम उनसे आशा करते हैं और वह सब करते हैं, जिसके लिए हम सोचते हैं कि वे यह नहीं करेंगे। फलस्वरूप नाटक की घटनाएँ मनुष्य के सामान्य व्यवहार के प्रतिकूल चलती हैं, और मानव व्यवहार की स्वाभाविकता से दूर और दूर हटती जाती हैं। ब्राउनिंग के **ब्लॉट इन द स्कचन** की कहानी पर्याप्त रूप से स्वभाविक है, लेकिन पात्रों का व्यवहार सर्वथा अस्वाभाविक है। इसके विपरीत शेक्सपियर के **मर्चेंट ऑफ वेनिस**

की कहानी अस्वाभाविक-सी है, लेकिन पात्रों का व्यवहार सर्वथा स्वाभाविक है। ब्राउ-निंग के नाटक में ऐसा लगता है जैसे हम सुन्दर ढंग से चित्रित लेकिन काल्पनिक लोगों के बीच विचरण कर रहे हों; परिस्थितियाँ अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण और भावात्मक हैं और मर्म को छू जाती हैं, लेकिन घटनाएँ यथार्थ से बहुत दूर हैं, और इसलिए उच्च साहित्य की भूमि से भी दूर पड़ जाती हैं, जबकि कथानक कुछ अस्वाभाविक होने पर भी शेक्सपियर के नाटक उस उच्च साहित्यिक भूमि पर सहज ही प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

काव्यमयता, ओज या करुणा, पात्रों के स्वाभाविक व्यवहार के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकते। यदि नाटक को पुस्तकालय में पढ़ें तो शायद यह दोष हमारी नज़रों से बच जाए; लेकिन उसे रंगमंच पर प्रस्तुत कर देने पर उसका यह दोष स्पष्ट उभर आएगा और यह किसी भी दृष्टि से क्षम्य नहीं। दर्शकों की दृष्टि इस मामले में काफ़ी तीक्ष्ण होती है, और वे यह कदाचित् नहीं सह सकते कि उनसे किसी ऐसे नाटक की सराहना की अपेक्षा की जाए जो उनके दिन प्रतिदिन के मानव स्वभाव के अनुभवों से अलग हो।

6

कभी-कभी कुछ विद्वान् दर्शकों को नाटक विशेष को देखने और सराहने के लिए मजबूर कर देते हैं, जबकि वास्तव में उन्हें उसमें कोई रस नहीं मिलता—यह स्थिति काव्य-नाटक के लिए अत्यंत घातक है। जिस नाटक की अस्वाभाविकता, कृत्रिमता और नीरसता उबा दे, ऐसे नाटक की यदि दर्शक सराहना न करें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। **पिपा पासेज़** और **संकेन बेल** जब रंगमंच पर खेले गए तो साहित्यिक अलोचकों ने इनकी अत्यधिक प्रशंसा की, जिसका परिणाम बिलकुल उलटा हुआ। ये नाटक दर्शकों के बीच लोकप्रिय न हो सके; और आलोचक यदि दर्शकों की नापसंदगी पर नाराज़ होकर उन्हें बुरा-भला कहें, तो निश्चित है कि दूसरी बार से जिस किसी भी नाटक की वे आलोचक प्रशंसा करेंगे, दर्शक उन्हें देखना ही बन्द कर देंगे। हमें यह याद रखना चाहिए कि दर्शक यह जानने के साथ-साथ कि वह कैसा नाटक पसंद करता है, यह भी जानता है कि उसे कैसा नाटक पसन्द नहीं है। जब वह रंगशाला में जाता है तो वह रंगमंच पर ऐसे पात्रों को देखना चाहता है जो उसके दिन-प्रतिदिन के मनुष्यों से मिलते-जुलते हों। यदि नाटक में काव्य का अंश है तो उसे कोई आपत्ति नहीं होगी, लेकिन यदि नाटक के स्थान पर केवल काव्य ही दिया जाय तो वह उसे नहीं ग्रहण करेगा। दर्शक आज भी लगभग वैसा ही है, जैसा कि वह अतीत में था। उसे **ऐज़ यू लाइक इट** और **हैमलेट** देखने के लिए मनाना नहीं पड़ता था, वह स्वयं खुशी-खुशी उन्हें देखने जाता था, क्योंकि वह जानता था कि इनमें उसके पैसे वसूल हो जाएंगे। बेरी के समकालीन दर्शक **पीटर पैन** को देखने के लिए

टूट पड़ते थे, जो एक ऐसा सफल काव्य-नाटक था जिसमें कल्पना और यथार्थ दोनों का उचित सामंजस्य था।

बेरी का दृष्टान्त विशेष महत्त्वपूर्ण है। वह रंगमंच पर पूर्ण सफल सिद्ध हुए, क्योंकि उन्होंने रंगमंच की बारीकियों और उसके रहस्य को पूरी तरह समझ लिया था। हम तब तक सफल काव्य-नाटक के पुनर्जन्म की आशा नहीं कर सकते जब तक कि हमारे कवि सच्चे अर्थों में नाटककार न बन जाएँ या नाटककार कवि न बन जाएँ। कवि को रंगमंच की बारीकियों को समझने के लिए स्कूल में जाकर व्यावहारिक प्रशिक्षण लेना चाहिए, जैसा बेरी और विक्टर ह्यूगो ने किया। कवि का यह समझना कि पद्य में कुछ संवाद लिख चुकने के पश्चात् वह उसे रंगमंच के मैनेजर के पास रख देगा कि वह जैसा चाहे उसे रंगमंच के अनुकूल ढाल ले, वैसा ही निरर्थक है जैसा कि किसी बच्चे के पैदा हो जाने के बाद नर्स से यह कहना कि वह उसमें रीढ़ की हड्डी डाल दे। काव्य-नाटक को अपनी रूप-कल्पना में ही नाटकीय होना आवश्यक है, अन्यथा वह नाटक नहीं बन सकता। नाट्य-शास्त्र के मूल सिद्धान्त को समझना वास्तव में उतना कठिन नहीं, और यदि कोई कवि सफल नाटककार होने की क्षमता रखता है, तो यह थोड़े समय के प्रशिक्षण और अनुभव से ही सीख जाएगा। लेकिन पहले ही यह समझ लेना आवश्यक है कि यह एक नयी और विशेष कला है, जिसका रंगमंच के साथ अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। यदि इसके प्रति उसका दृष्टिकोण असहिष्णु और अहंकारी रहा तो वह इस कला को कभी नहीं सीख पाएगा।

कुछ कवि नाट्य-कला में प्रयास से दक्षता प्राप्त कर लेते हैं, हम महान् नाटककारों को सर्वप्रथम कवि के रूप में देखने के आदी हो गए हैं, और अक्सर उनके जीवन के पृष्ठों में झाँक कर देखने का कष्ट नहीं करते कि उनमें से कुछ ने अपना साहित्यिक जीवन वास्तव में पेशेवर नाटककार के रूप में प्रारम्भ किया। उदाहरण के लिए, शेक्सपियर और मोलियर ने अपने साहित्यिक जीवन-काल की प्रारम्भिक अवस्था में तत्कालीन जनता के मनोरंजन के लिए नाटक लिखे, और फलस्वरूप उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में उस काव्यमयता का अभाव है, जो उनकी बाद की रचनाओं में देखने को मिलती है। असंभव नहीं कि आज के प्रतिभावान् कुछ महत्त्वाकांक्षी पेशेवर नाटककार एक दिन नाट्य-साहित्य में शेक्शपियर और मोलियर के समान उच्च स्थान प्राप्त कर लें। एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब किसी काव्यात्मक प्रेरणा से अभिभूत होकर वे उच्च कोटि के काव्य-नाटक लिखना आरम्भ कर दें—और यह सत्य है कि ऐसे प्रतिभाशील व्यक्तियों को यह बताने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी कि काव्य-नाटक का सबसे पहला गुण उसकी नाटकीयता है और काव्यमयता का स्थान दूसरा है।

तेरहवाँ अध्याय

तीन नाटकीय अन्वितियाँ

1

जिन रोचक पृष्ठों में डिकेंस ने क्रमलस के निर्देशन में घुमक्कड़ अभिनेताओं की मंडली के साथ निकोलस निकलबी के सम्बन्ध के दिनों में उनके सम्पर्क में आने वाले विचित्र पात्रों का चित्रण किया है, वहाँ हमारा परिचय एक ग्रामीण महाशय कर्डल से होता है जो अपने को नाटक का संरक्षक बतलाते हैं। जब मिस्टर कर्डल को बताया जाता है कि निकोलस निकलबी उस नाटक के लेखक हैं तो वह आशा करते हैं कि उस युवक नाटककार ने नाटकीय अन्विति के तीनों सिद्धान्तों का पालन किया है। वह आगे कहता है कि घटना, संवाद और पात्र तीनों नाटकीय अन्विति के अभाव में प्रभावहीन हो जाते हैं। आगे पूछे जाने पर कि अन्विति से उनका तात्पर्य क्या है, कर्डल कहते हैं कि "अन्विति संपूर्णता है, समय और स्थान का एकत्व है।" अपने एक हास्य पात्र के मुँह से डिकेंस ने नाटकीय अन्विति की जो व्याख्या की है, उससे आभास मिलता है कि सम्भवतः डिकेंस को स्वयं इसका स्पष्ट ज्ञान नहीं था। उन्हें इसे जानने की विशेष आवश्यकता भी नहीं थी। इस विषय में अधिकतर दर्शकों और पाठकों का ज्ञान भी डिकेंस से अधिक नहीं होगा। इसका सही-सही अर्थ, जिसका अपेक्षाकृत हाल ही में स्पष्टीकरण किया गया है, केवल उन्हीं कुछ लोगों को पता होगा जिन्होंने इस विषय में अध्ययन और मनन किया है।

अरस्तू के नाटकीय अन्विति के तीन सिद्धान्तों के विषय में अक्सर चर्चा की जाती है, लेकिन उन्हें स्वयं इसका विशेष ज्ञान नहीं था और उन्होंने कहीं इसकी व्याख्या भी नहीं की है। हाल ही में इन सिद्धान्तों को स्केलीजर की नाटकीय अन्वितियों के नाम से पुकारा जाने लगा है, लेकिन स्वयं स्केलीजर ने भी इनकी पूरी तरह व्याख्या नहीं की है। ब्वालो ने अपने ग्रंथ काव्य-कला में इसके मुख्य सिद्धान्तों की रूपरेखा निर्धारित की थी; लेकिन इससे भी पहले सिडनी की डिफेंस ऑफ पोयेसी में हमें इनका उल्लेख मिलता है। बेन जानसन ने अन्विति के इन सिद्धान्तों का पालन करने की कोशिश की; लेकिन शेक्सपियर ने इन बंधनों में बँधने से इन्कार कर दिया। लोप द वेगा ने इसकी महत्ता को स्वीकार तो किया, लेकिन स्वयं इसका पालन नहीं किया। जब कार्नाइ ने अपने सर्वाधिक रौद्ररसपूर्ण नाटक की रचना की तो उसे इसका ज्ञान

तक नहीं था, लेकिन फिर भी उसमें नाटकीय अन्विति का पूरी तरह से निर्वाह किया गया है। 18वीं शताब्दी में लेंसिंग ने इसके दोषों को स्पष्ट करते हुए इसका विश्लेषण किया। 19वीं शताब्दी में विक्टर ह्यूगो ने क्रामबेल की भूमिका में इसकी कड़ी आलो-की लेकिन फिर भी ह्यूगो के आरम्भिक प्रतिद्वन्द्वी के पुत्र ड्यूमा के नाटक फ्रांसिलान में इन तीनों प्रकार की नाटकीय अन्वितियों की रक्षा की गई है; और नार्वे के यथार्थवादी नाटककार इब्सन के नाटक गोस्ट्स में भी इसका सर्वथा पालन हुआ है—लेकिन सम्भवतः इनमें से किसी ने भी कभी इस बात की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया था कि नाटकीय अन्विति को अनिवार्य रूप से निभाया जाना चाहिए।

प्रश्न उठता है कि आखिर यह नाटकीय अन्विति है क्या, जिसको कुछ लोग मान्यता देते हुए भी निभा नहीं पाते, और कुछ बिना इससे परिचित हुए इसके नियम निभा लेते हैं? इसका स्रोत क्या है? इसमें दक्षता कैसे प्राप्त की जा सकती है? किस प्रकार बिना अधिक प्रयास के इसे पूरी तरह निभाया जा सकता है? ये कुछ प्रश्न हैं, जिनका उत्तर देने के लिए हमें अंग्रेज़ी साहित्य के अलावा फ्रांस, इटली और यूनान के साहित्यों के इतिहास के पृष्ठ उलटना आवश्यक है; और अरस्तू, शेक्सपियर, बेन जानसन तथा इटली और फ्रांस के नाटककारों और नाटक समालोचकों की रचनाओं पर दृष्टिपात करना ज़रूरी है।

नाटकीय अन्विति के नियमों की स्पष्ट और सूक्ष्म व्याख्या ब्वालो ने इस प्रकार की है: "त्रासदी में एक दिन में और एक ही स्थान में एक ही घटना का चित्रण किया जाना चाहिए। केवल एक ही कहानी का समावेश होना चाहिए, इसे व्यापार-अन्विति कहा जाता है। इसमें दृश्य परिवर्तन नहीं होना चाहिए, अर्थात् सारी घटनाएँ एक ही स्थान पर घटित होनी चाहिएँ, इसे स्थान अन्विति कहा जाता है। इसके अलावा कहानी की समस्त घटनाओं की अवधि चौबीस घण्टे से अधिक नहीं होनी चाहिए, अर्थात् एक दिन से अधिक नहीं—इसे काल-अन्विति कहा जाता है।" ब्वालो के अनुसार, त्रासदी में इन तीनों अन्वितियों की रक्षा तभी हो सकती है जब उसकी कहानी, बिना स्थान या दृश्य परिवर्तन के, अबाध रूप से चलती रहे और उसका काल-विस्तार चौबीस घण्टे से अधिक न हो। ब्वालो ने जब इन नियमों की इस प्रकार व्याख्या की तो उसका विचार था कि वह केवल अरस्तू और यूनानी नाटककारों द्वारा प्रतिपादित नियमों की ही पुनरावृत्ति कर रहा है। लेकिन इन नियमों के पीछे विशेष प्रयोजन और तर्क भी है। दो-तीन शताब्दी पूर्व विद्वानों का विश्वास था कि यदि अरस्तू तथा यूनानी नाटककार आधुनिक नाटककारों के सामने यह आदर्श प्रस्तुत भी न करते तो भी नाटक को अधिक से अधिक सम्पूर्ण और निर्दोष बनाने के लिए वे इन्हीं नियमों को किसी न किसी प्रकार ढूंढ़ निकालते।

यह बात इस सिद्धान्त के हक में रही कि इसके समर्थकों ने इसके औचित्य पर ज़ोर देना शुरू किया, क्योंकि अरस्तू के आधार पर इसे प्रमाणित नहीं किया जा

सकता था। इन्हें 'अरस्तू के नियम' के नाम से पुकारा जाता है, परन्तु वास्तव में देखा जाय तो पहले नियम को छोड़कर अरस्तू ने किसी अन्य नियम को औपचारिक रूप से प्रस्तुत नहीं किया। दूसरे नियम का उनके कथन से केवल आभास मात्र मिलता है। ब्वालो तथा उनके समकालीनों ने अरस्तू को सिद्धान्त-प्रवर्तक के रूप में स्वीकार करने की ग़लती की। चाहे एथेंस के संविधान पर विचार कर रहे हों, चाहे यूनानी नाटक की संरचना पर, अरस्तू बड़े ही व्यावहारिक व्यक्ति थे। उन्होंने केवल उसी प्रकार विषयों पर विचार और मनन किया जैसे उनके सामने आते गए। व्यावहारिक और मूर्त्त विषयों को उन्होंने स्वीकार किया, अमूर्त और दुरूह विषयों पर वे मौन रहे।

18वीं शताब्दी में लैसिंग का और 19वीं शताब्दी में सार्से का जो दृष्टिकोण था वही दृष्टिकोण अरस्तू का था। उसने केवल काल्पनिक सिद्धान्तों की रचना नहीं की और न ही वह पाठ्य-नाटकों का सैद्धान्तिक आलोचक था। वह स्वयं रंगशाला में जाकर बैठता था, और वहाँ नाटकों को अभिनेताओं द्वारा दर्शकों के सम्मुख अभीनीत देखकर, दर्शकों पर उसकी प्रतिक्रियाओं और प्रभावों के आधार पर अपने नियम और सिद्धान्त बनाता था। रंगमंच की वास्तविकताओं से वह अच्छी तरह परिचित था। अपने जीवन-काल में उसका सम्पर्क केवल यूनानी नाटकों से ही रहा और यूनानी नाटकों का अच्छा ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर लेने पर उसने उन सिद्धान्तों का अनुसन्धान किया जिनका प्रभाव उस समय के नाटककारों पर पड़ा था। यदि अरस्तू को यूनान के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के नाटकों को देखने का अवसर मिलता, तो उसे विभिन्न भाषाओं के नाटकों का तुलनात्मक मूल्यांकन करने का अवसर प्राप्त होता और तब निश्चय ही वे किसी भिन्न निष्कर्ष पर पहुँचते। लेकिन नाटक के केवल एक ही रूप—त्रासदी से परिचित होते हुए भी जिस अद्भुत सूक्ष्म दृष्टि से उन्होंने नाटक चर्चा की उससे कई ऐसे निष्कर्ष निकलते हैं जो आधुनिक और प्राचीन दोनों कालों के नाटकों के लिए समान रूप से लागू होते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इनके अलावा उसके कुछ ऐसे भी नियम हैं जो केवल यूनानी नाटकों पर ही घटित होते हैं।

2

नाटकीय अन्विति के इन तीन सिद्धान्तों में से केवल व्यापार-अन्विति के एक सिद्धान्त का उल्लेख हमें अरस्तू के प्रबन्धों में मिलता है, जो आज के नाटकों पर भी उतना ही घटित होता है जितना प्राचीन नाटकों पर। अरस्तू के अनुसार, त्रासदी में केवल एक विषय का समावेश होना चाहिए, जो स्वयं में पूर्ण हो और जिसमें आरम्भ, मध्य और अन्त तीनों का उचित संतुलन हो। यह नियम किसी भी साहित्य-कृति के विषय में, चाहे वह त्रासदी हो या महाकाव्य, ठीक सिद्ध हो सकता है। प्रत्येक सफल साहित्यिक कृति के लिए आवश्यक है कि वह पाठकों या दर्शकों पर अनायास और सीधे असर करे। इसके लिए विषय-वस्तु पर ज़ोर देना और अनावश्यक अंशों का बहिष्कार

करना ज़रूरी है। यह सच है कि कुछ साहित्यिक कृतियों में हमें दो कथाएँ एक साथ गुँथी हुई मिलती हैं, और दोनों समान रूप से महत्त्वपूर्ण होती हैं; उदाहरणार्थ **मर्चेण्ट आफ वेनिस, वैनिटी फेयर** और **ऐना कैरेनिना** हमारे ध्यान को दो ओर खींचती हैं। इस पर भी ये उच्च साहित्यिक कृतियाँ हैं। परन्तु ऐसी कृतियों की संख्या अधिक नहीं। अधिकतर उच्च साहित्यिक कृतियों में हमें केवल एक ही मुख्य विषय या कथा का समावेश मिलता है, जैसे सॉफ़ॉक्लीज़ का **ईडिपस**, मोलियर का **तारत्युफ़**, हाथोर्न का **स्कारलेट लेटर** और तुर्गनेव का **स्मोक**।

शेक्सपियर ने अपनी रोमांस-कामदियों और नाटकीय रोमांसों में कथावस्तु के गठन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है, जैसे **मच अडू अबाउट नथिंग** और **विंटर्स टेल** में। लेकिन त्रासदियों की कथावस्तु के गठन में, जिन्हें लिखने में उन्होंने अपनी पूरी शक्ति और प्रतिभा का प्रयोग किया है, नाटकीय अन्विति के आवश्यक सिद्धान्तों को पूरी तरह निभाया है, जैसे **ऑथेलो, हैमलेट** और **मैकबेथ** में। इन महान् नाटकों की रचना में शेक्सपियर को केवल नाटकीय अन्विति की रक्षा करने में ही सफलता नहीं मिली, बल्कि इन नाटकों में भाव-भंगिमा और परिवेश की एकरूपता लाने में भी वे सफल हुए।

कार्य-अन्विति की महत्ता पर ज़ोर देते समय अरस्तू का तात्पर्य उसी 'सम्पूर्णता' से था जिसे डिकेंस के पात्र मिस्टर कर्डल ने सफल नाटक के लिए आवश्यक बताया है। कार्य-अन्विति नाटकीय अन्विति के तीनों सिद्धान्तों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। नाटकों का काफी गहन अध्ययन होने पर भी मिस्टर कर्डल ने कार्य-अन्विति पर ही ज़ोर दिया, और सभी महान् यूनानी, अंग्रेज़ी फ्रांसीसी तथा स्केण्डिनेवियाई नाटककारों ने इसी नाटकीय अन्विति का पालन किया है। यही एक नाटकीय अन्विति है, जिसे सभी नाटककारों ने निर्विरोध स्वीकार किया है।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि ब्वालो ने त्रासदी लेखकों के लिए जो यह नियम निर्धारित किया था कि नाटक में केवल एक ही कथावस्तु का समावेश होना चाहिए, काफी हद तक संगत था। लेकिन प्रश्न यह है कि काल-अन्विति और स्थान-अन्विति के नियम निर्धारित करना कहाँ तक न्याय-संगत था? इसके लिए उसने दो आधारों का सहारा लिया था—एक तर्क का, दूसरा अरस्तू द्वारा प्रतिपादित नियमों का। यद्यपि अरस्तू के प्रबन्धों में इनका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी उसकी रचनाओं में स्थान-अन्विति और काल-अन्विति का सम्भवतः कुछ आभास मिलता है। यूनानी नाटक खुली रंगशाला के वाद्य-स्थल पर खेले जाते थे, और नाटक की एक मात्र कथा, आधुनिक पद्धति के विपरीत, बिना मध्यान्तर के रंगमंच पर अबाध रूप से प्रस्तुत की जाती थी। इसलिए अरस्तू चाहता था कि नाटक की घटनाएँ एक के बाद एक बिना किसी अवरोध के अनवरत चलती रहें, जिससे कि विराम के कारण दर्शकों का ध्यान भंग न हो। उसने समय के विषय में कोई जिक्र करने की आवश्यकता न समझी और

इस बात पर ज़ोर दिया कि घटनाएँ एक के बाद एक अविराम चलती रहें।

अरस्तू के अनुसार त्रासदी की अवधि सूर्य के एक चक्र या इससे कुछ अधिक समय होती है। इस कथन द्वारा अरस्तू ऐसे किसी नियम का प्रतिपादन नहीं कर रहा था, जिसकी बारीकियों का वह अध्ययन कर चुका था, न वह इस नियम का पालन करने का आग्रह कर रहा था। वह केवल यह बता रहा था कि तत्कालीन नाटकों में यथासम्भव इस नियम का पालन करने की कोशिश की जाती थी। वह यह भी जानता था कि जहाँ इस नियम का पालन करना सम्भव न हो वहाँ यूनानी नाटककार कथा-वस्तु की अवधि का आवश्यकतानुसार विस्तार कर लेते थे, जैसे एस्किलस के नाटक **अगामेमनान** में।

इसमें सन्देह नहीं कि यूनानी नाटकों में **अगामेमनान** ही एक ऐसा नाटक है जिसमें कथा की अवधि चौबीस घण्टे से अधिक है, परन्तु इसी से ऐसा स्पष्ट है कि यह नियम सर्वमान्य और अनुल्लंघनीय नहीं था। लेकिन अब प्रश्न उठता है कि जब यूनान के नाटककार स्वयं इस नियम से बँधे नहीं थे और अरस्तू ने इसको प्रतिपादित भी नहीं किया तो काल-अन्विति के इस नियम की उत्पत्ति कैसे हुई ? प्रोफेसर स्पिनगार्न ने साहित्यिक पुनर्जागरण काल में इटली के समालोचना-साहित्य पर किये गए अनु-संधान द्वारा इसका उत्तर ढूँढ़ निकाला है। ज़ेराल्डी सिन्थियो ने (जिनकी एक कथा के आधार पर शेक्सपियर ने **ऑथेलो** की रचना की) अपनी पुस्तक **डिस्कोर्स आन कामेडी एंड ट्रैजेडो (कामदी और त्रासदी की विवेचना)** में नाटक की अवधि एक दिन निश्चित की और इस प्रकार उन्होंने अरस्तू द्वारा उल्लिखित ऐतिहासिक तथ्य को नाटकीय नियम में परिवर्तित कर दिया। कुछ समय पश्चात् दूसरे इतालवी समालोचक रोबार्टेलो ने इस अवधि को बारह घंटे तक सीमित कर दिया, क्योंकि त्रासदी में केवल एक अविराम घटना का ही समावेश होता है और चूँकि रात्रि में दर्शकों के सोने का समय होता है, इसलिए नाटक की कथा एक दिवस से अधिक लम्बी नहीं हो सकती।" फिर कुछ समय पश्चात् इटली के एक अन्य आलोचक ट्रिसि-नियो ने घोषणा की कि "प्रत्येक नाटककार के लिए काल अन्विति का पालन करना आवश्यक है, यद्यपि अब भी कुछ अनजान नाटककार इसका उल्लंघन करते हैं।"

यह अन्तिम उक्ति विशेष महत्त्वपूर्ण है। इटली के साहित्यिक पुनर्जागरण में साहित्यक, विशेषकर समालोचक का, स्वरूप अभिजातधर्मी था। उसने आम जनता की अपेक्षा केवल कुछ ऐसे गिने-चुने लोगों को ही अधिक आकर्षित किया क्योंकि समझा जाता था कि वही सुसंस्कृत थे, और कलाकार की कला को अच्छी तरह समझने की क्षमता रखते थे। आज भी अमरीका में यह मनोवृत्ति विद्यमान है और चार शताब्दी पहले इटली में यही साहित्यक प्रवृत्ति थी। शिक्षित वर्गों का सम्पर्क पुरानी रचनाओं से हो रहा था और इस बात का उन्हें गर्व भी था। लेखक-गण सामान्य और अशि-

क्षित जनता को अपने से दूर रखने की कोशिश करते थे और वे अपने वर्ग के लोगों में मान्यता और सराहना पाने के लिए प्रयत्नशील थे। यह प्रवृत्ति कवि के लिए हमेशा हानिकर होती है और नाटककार के लिए और भी अधिक घातक। साहित्य के विविध रूपों में नाटक सबसे अधिक लोकतंत्रीय है, क्योंकि इसका उद्देश्य शिक्षित और अशिक्षित सभी प्रकार के दर्शकों का समान रूप से मनोरंजन करना है। लेकिन तत्कालीन इटली के समालोचकों की धारणा इसके बिलकुल विपरीत थी, और वे जन-समुदाय के लिए लिखे और प्रस्तुत किये गए नाटक को साहित्यिक मान्यता देने के योग्य ही नहीं समझते थे। व्यक्तिगत रूप से भले ही वे मिरैकल नाटक या मुखौटा नाटक को देखकर प्रफुल्लित होते हों, पर सामूहिक रूप से वे कभी इस प्रकार के लोकप्रिय नाटकों को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। सिडनी ने, जो इटली के साहित्य से प्रभावित था, इस प्रकार के लोकप्रिय नाटकों का विरोध किया।

अरस्तू और इटली के विचारकों के बीच यही एक अन्तर था। अरस्तू नियमित रूप से रंगमंच पर नाटक देखा करता था और इसलिए उसने जो कुछ भी सिद्धान्त प्रस्तुत किए, वे रंगमंच पर खेले जाने वाले नाटकों के अध्ययन पर ही आधारित थे। इसके विपरीत इटली के नाट्य-समालोचकों को रंगमंच पर किसी अच्छे नाटक के अभिनय को देखने का अनुभव ही नहीं था। जो कुछ भी उन्होंने रंगमंच पर देखा वह उनके अनुसार संतोषजनक नहीं था। और जिसे वह आदर्श नाटक समझते थे, उसे रंगमंच पर देखने का उन्हें अवसर नहीं मिला। इससे उनकी कोरी सिद्धान्तवादिता, पाण्डित्य का अभिमान और मनमाने नियमों के निर्माण की प्रवृत्ति के कारण का पता आसानी से लगाया जा सकता है। अरस्तू में यूनान की विशिष्ट व्यावहारिक बुद्धि कूट-कूटकर भरी थी और इसलिए उसकी दृष्टि हमेशा ठोस धरातल पर ही रहती थी; इसके विपरीत भावनाओं में विचरने वाले इटली के विचारकों की दृष्टि धरातल से ऊपर, केवल गूढ़ और अमूर्त तत्वों पर ही रहती थी। आदर्श नाटक साहित्य का सृजन करने के लिए उन्होंने यह तो कभी सोचा ही नहीं कि अशिक्षित दर्शकों में लोकप्रिय लोक-नाटकों को आदर्श नाटक बनाने के लिए केवल उनमें कुछ सुधार और परिष्कार की ही आवश्यकता है। इटली के प्रतिष्ठित व्यक्ति ऐसे लोक-नाटकों को घृणा की दृष्टि से देखते थे और इसीलिए इटली में अंग्रेज़ी, स्पेनी और फ्राँसीसी साहित्य की भाँति लोक नाटकों का विकास सम्मानित और राष्ट्रीय नाटकों के रूप में न हो सका। मध्ययुग के धार्मिक नाटकों में उच्च त्रासदी के बीज मौजूद थे और मुखौटा नाटकों में कुछ परिष्कार कर उन्हें साहित्यिक नाटक का स्वरूप प्रदान किया जा सकता था। (मोलियर ने वास्तव में एक शताब्दी बाद यही किया)। चूंकि वे समकालीन नाटक को घृणा की दृष्टि से देखते थे, इसलिए इटली के साहित्य में सजीव नाटक साहित्य का अभाव हमेशा ही बना रहा। इसके स्थान पर उनके पास

केवल कुछ नियम थे, जिनमें मनमाने ढँग से यह बताया गया था कि नाटक-साहित्य कैसा होना चाहिए।

कार्य-अन्विति का सिद्धान्त अरस्तू ने स्वयं प्रतिपादित किया था; स्थान-अन्विति के सिद्धान्त का निष्कर्ष अरस्तू के एक कथन से निकाला गया है, और काल-अन्विति का सिद्धान्त इतालवी समालोचकों ने स्थान-अन्विति से ही निकाला है। यद्यपि स्केलिजर में इन सिद्धान्तों का अभाव मिल जाता है, परन्तु वास्तव में सर्वप्रथम इन सिद्धान्तों का निर्माण कास्टलवेट्रो ने किया। लेकिन कास्टलवेट्रो के विचार अपने समकालीन लेखकों के विचारों से भिन्न थे। यह सच है कि उसका स्वयं का ज्ञान तत्कालीन रंगमंच के बारे में बहुत थोड़ा था, लेकिन फिर भी उसने इस बात पर ज़ोर दिया कि नाटककार का कर्त्तव्य हर प्रकार के दर्शकों का, चाहे वे शिक्षित हों या अशिक्षित, मनोरंजन करना और उनकी इच्छाओं का आदर करना है। उसका विश्वास था कि दर्शक अक्सर सुशिक्षित और कलापारखी नहीं होते और इसलिए वे समय बीतने और दृश्यान्तर की कल्पना नहीं कर सकते। उसका कहना था कि यदि नाटक की अवधि एक दिन तक और स्थान एक ही स्थल पर सीमित न रहे तो दर्शक इससे स्वयं ही उद्विग्न होंगे और असंतुष्ट रहेंगे।

कास्टलवेट्रो के इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमज़ोरी यह है कि वह यह मानकर चलता है कि दर्शक अपनी जगह पर बैठा ऐसी कल्पना करता रहता है, जैसे कि वह रंगमंच पर सचमुच वास्तविकता का दर्शन कर रहा हो। वह यह भूल जाता है कि दर्शक काफी हद तक कल्पना भी कर सकता है। वह कहता है कि दर्शक नाटककार को दो घण्टे की अवधि में चौबीस घण्टे की ही नहीं, बल्कि बारह महीने तक की विस्तृत घटनाओं का समावेश करने की अनुमति नहीं दे सकता। यह बात स्वयं उसके अपने तर्क के विपरीत है। यहाँ पर वह श्रेष्ठ कला की रूढ़ियों को भूल जाता है। कला का यह सिद्धान्त है कि प्रत्येक कलाकार को इतनी छूट होनी चाहिए कि वह दर्शक या पाठक को संतुष्ट करने के लिए जीवन के प्रति अपने विशिष्ट दृष्टिकोणों को सामने रख सके। भले ही इसके लिए उसे मात्र तथ्यों से कुछ अलग भी होना पड़े।

यदि यूनानी नाटककारों में स्थान-अन्विति के सिद्धान्त का पालन करने की परम्परा न होती तो संभवतः काल और कार्य-अन्विति के साथ इसका नाम न आ पाता। जो कुछ भी यूनानी नाटक आज हमारे पास बचे हैं, उनमें मुश्किल से ही एक-आध ऐसे नाटक होंगे, जिनमें घटनास्थल एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलता हो। अक्सर इन नाटकों का प्रारम्भ और अन्त एक ही स्थान से होता है। इसका कारण स्पष्ट है। यूनानी नाटकों का विकास कोरस से हुआ था और 'एथेनी काल' के अन्त तक कोरस त्रासदियों का एक मुख्य अंग रहा। एक बार कोरस को वाद्य-यंत्रों में शुरू कर लिए जाने पर वह अवसर नाटक के अंत तक चलता था। दर्शकों के सामने जब तक

कोरस रहता था, तब तक नाटककार चाहने पर भी घटनास्थल में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता था। वह दर्शकों के सामने दूसरा दृश्य तभी प्रस्तुत कर सकता जब कोरस-स्थल खाली हो, लेकिन ऐसा बहुत कम होता था। इसके अलावा हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि एथेंस के रंगमंच पर उस समय दृश्य-सज्जा की प्रथा नहीं थी, और इसलिए दृश्य-परिवर्तन सूचित करने के लिए कोई उपयुक्त साधन भी उपलब्ध न था।

3

नाटकीय अन्विति के यही तीन सिद्धान्त हैं, जिनका पूरा श्रेय काफ़ी समय तक अरस्तू को दिया जाता रहा। बाद में पुनर्जागरण समय के इटली के मर्मज्ञ समालोचक इनके सबसे बड़े प्रवर्तक बने। उन्होंने अपनी अन्तःप्रेरणा द्वारा इन सिद्धान्तों का विकास किया, इसमें अत्युक्ति नहीं। सिन्थिओ और स्केलिजर तथा कास्टलवेट्रो और मिटर्नो से होते हुए ये सिद्धान्त इंग्लैंड में सिडनी और बेन जॉनसन, स्पेन में जुआ दाला क्वेवा और लोप द वेगा, और फ्रांस में आबिनयाक और ब्वालो तक पहुँचे। दो शताब्दी से भी अधिक समय तक यूरोप में नाट्य-समालोचना क्षेत्रों में इनका चोर रहा। फ्रांस में 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक इनका अत्यधिक प्रभाव रहा और कार्नाइ द्वारा इनका विरोध किए जाने पर भी वाल्टेयर अन्त तक इनका समर्थक रहा। लेकिन स्पेन के लोकप्रिय नाटककारों ने, यहां तक कि लोप द वेगा ने भी, इस बंधन में बँधना स्वीकार न किया। एलिजाबेथ युग में इंगलैण्ड में भी बेन जानसन को छोड़कर किसी भी नाटककार ने इन सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं किया।

अब हमारे सामने दो प्रमुख प्रश्न उठते हैं; जब सभी नाट्यशास्त्री नाटकीय-अन्विति के इन तीन सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं तो इंग्लैण्ड और स्पेन के नाटक-कारों ने क्यों इन आदेशों का उल्लंघन किया? और फ्रांस के नाटककार क्यों इन आदेशों को मानते रहे तथा इन बन्धनों में जकड़े रहे? इसका एक ही उत्तर है—फ्रांस में नाटक-साहित्यि का उत्कर्ष इंग्लैण्ड या स्पेन के पचास वर्ष बाद हुआ। स्पेन और इंग्लैण्ड में पचास वर्ष पूर्व ही मध्ययुगीन लोक नाटकों का विकास उच्च कोटि के साहित्य और काव्यात्मक नाटकों के रूप में हो चुका था और एक बार इस प्रयास में सफल हो जाने पर वहाँ के नाटककार पुनः बन्धनों में बद्ध होने और अपनी स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करने में कोई बुद्धिमानी नहीं समझते थे। भले ही ऐसा करके वे कुछ शिक्षित लोगों को प्रसन्न करने में सफल हो जाते, लेकिन वे उस सामान्य दर्शक-समुदाय को तुष्ट नहीं कर सकते थे जो रंगमंच पर विविध प्रकार के मनोरंजन के अपेक्षा करते थे। **न्यू आर्ट ऑफ मेकिंग प्लेज (नाट्य-रचना की नई कला)** में लोप द वेगा ने अपने इस सिद्धान्त के उल्लंघन के लिए यही कारण चलाया है।

स्पेन के नाटककारों द्वारा इन सिद्धान्तों को अस्वीकार करने का यह मुख्य कारण हो सकता है, तो इंग्लैड के नाटककारों द्वारा इन सिद्धान्तों को अस्वीकार करने

के और भी प्रबल कारण हो सकते हैं। जहाँ तक नाटक का प्रश्न है शेक्सपियर का दृष्टिकोण अत्यधिक व्यावहारिक था। इन बन्धनों में जकड़कर वह उस स्वतन्त्रता को गँवा नहीं देना चाहता था जिसके कारण उसने दर्शकों के बीच इतनी लोकप्रियता अर्जित की थी। वह जानता था कि यदि उसने अपने नाटकों में काल-अन्विति के सिद्धान्त का अनुकरण किया तो उससे नाटकों की प्रभावशीलता को अवश्य क्षति पहुँचेगी। नाटककार के रूप में शेक्सपियर की शक्ति इस बात में है कि वे उन शक्तियों को समझते हैं, जिनके कारण पात्रों का चरित्र बनता है—परिस्थितियों के दबाव से अथवा प्रलोभनों द्वारा विघटित होकर। मनोभावों और चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन चौबीस घण्टों की कथा के भीतर संभव नहीं है। यदि शेक्सपियर अपने नाटकों में काल-अन्विति को निभाने की कोशिश करते, तो उन्हें बाध्य होकर **जूलियस सीज़र** में प्रारम्भिक घटनाओं और दृश्यों को काटना पड़ता, जो वास्तव में नाटक की जान हैं, क्योंकि बाद में जब हम ब्रूटस और कैसियस की लड़ाई देखते हैं तो उनके पूर्व व्यवहार और कार्य से इसकी तुलना करते हैं। इसी प्रकार उन्हें **मैकबेथ** की कथा भी केवल मैकबेथ के जीवन के अन्तिमकाल के नैतिक पतन तक ही सीमित रखनी पड़ती और इस प्रकार पूर्व के उसके सच्चरित्र को वे नाटक में दर्शकों के सामने प्रस्तुत न कर पाते।

यूनानी नाटकों में कहानी के उत्कर्ष के क्षणों में घटनाएँ केन्द्रीभूत हो जाती हैं, लेकिन इसमें नाटककारों को कोई असुविधा नहीं होती थी। यूनानी नाटककार एक ही दिन में उन्हीं दर्शकों के सामने तीन नाटक साथ-साथ प्रस्तुत करते थे, इससे वे नायक को उसके जीवनकाल की तीन विभिन्न अवस्थाओं में प्रस्तुत करते थे। लेकिन काल-अन्विति का यह सिद्धान्त फ्रांस के नाटककारों के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ, क्योंकि वे एक साथ तीन नाटक नहीं प्रस्तुत कर सकते थे; इससे उन्हें अपने पात्रों के परिवर्तित मनोभावों और व्यवहारों को प्रदर्शन करने की सुविधा नहीं मिल पाती थी। फलस्वरूप उन्हें स्थिर प्रकृति के और अपरिवर्तनशील पात्रों की सृष्टि करनी पड़ती थी।

बेन जॉनसन की भाँति शेक्सपियर ने कभी अपनी कला के सिद्धान्तों पर चर्चा करने की कोशिश नहीं की। उन्होंने **हैमलेट** में एक स्थान पर अभिनय कला पर तो विचार प्रकट किए भी हैं, परन्तु नाट्य-कला पर अपने व्यक्तिगत विचार कभी नहीं प्रकट किए। वे न तो रंगमंच के सुधारक थे, न किसी नाटकीय सिद्धान्त के प्रवर्तक। उन्होंने रंगमंच को जिस स्थिति में पाया, वे उसी से संतुष्ट थे; और जहाँ तक हो सका उन्होंने प्रचलित परम्पराओं और पद्धतियों का ही अच्छे से अच्छा उपयोग करने की कोशिश की। यदि उन्होंने नाट्य-समालोचकों के प्रतिबन्धों और नाटकीय अन्विति के सिद्धान्तों का उल्लंघन किया तो उसके लिए पर्याप्त कारण थे। लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि उन्हें इन सिद्धान्तों का ज्ञान ही नहीं था। यह सम्भव है कि जीवन के आरम्भिक काल में उन्होंने सिडनी के **डिफेंस ऑफ़ पोयसी** का अध्ययन न किया हो जिसमें पहली बार

अंग्रेज़ी भाषा में इन सिद्धान्तों का वर्णन किया गया था। लेकिन यह नहीं माना जा सकता है कि अपनी प्रौढ़ अवस्था में जब वे बेन जॉनसन के साथ इस विषय पर चर्चा और वाद-विवाद करते थे, तब उन्हें अपने विद्वान मित्र द्वारा नाट्य सिद्धान्तों के विषय में बार-बार सुनने को नहीं मिला होगा।

ऊपर एक इतावली समालोचक का उल्लेख हो चुका है, जिन्होंने नाटकीय अन्विति के इन सिद्धान्तों का उल्लंघन करने वाले नाटककारों को 'नासमझ कवियों' की संज्ञा दी है। शेक्सपियर पर यह उक्ति घटित नहीं हो सकती, क्योंकि उन्होंने लोगों के इस भ्रम को दूर करने के लिए कि वे अपने नाटकों में इन सिद्धान्तों की रक्षा नहीं कर सकते, अपनी अन्तिम रचना **टेम्पेस्ट** में इन बातों का पूरा ध्यान रखा है। इंग्लैण्ड में उस समय इन सिद्धान्तों की जो व्याख्या प्रचलित थी, उसका स्वरूप थोड़ा-सा भिन्न था। स्थान-अन्विति के अनुसार व्यापार किसी विशेष स्थान तक ही सीमित होना चाहिए; इस स्थान की व्याख्या विस्तृत रूप से की गई। एक स्थान का अर्थ था एक महल या शहर; महल में एक कमरा या शहर में कोई एक मकान नहीं। इसका अर्थ एक बस्ती या एक जगह नहीं। घटनास्थल पूरा लंदन शहर है। कोई एक कमरा या शहर का कोई एक घर नहीं।

प्रोफेसर लाउन्सबरी का कहना है कि **टेम्पेस्ट** में केवल एक ही कहानी को कथावस्तु बनाया गया है, जो निर्बाध रूप से चलती रहती है; इसलिए इसमें कार्य-अन्विति के सिद्धान्त का पालन किया गया है। कहानी की अवधि केवल एक पूरे दिन अर्थात् चौबीस घण्टे से कम है, इसलिए इसमें काल-अन्विति के सिद्धान्त का पालन किया गया है। वास्तव में इसकी कथा तीन घण्टे तक ही, जब तक खेल रहता है, सीमित है। घटनास्थल पानी से घिरा केवल एक द्वीप है, इसलिए इसमें हमें स्थान-अन्विति के सिद्धान्त का भी पालन मिलता है। **टेम्पेस्ट** को पढ़ने के पश्चात् ऐसा लगता है जैसे नाटककार हमें यह बता रहा हो कि यदि वह चाहे तो वह किसी भी प्रकार का नाटक लिख सकता है, और यदि अब तक उसने ऐसा नाटक नहीं लिखा तो यह इसलिए कि उसने ऐसा करना उपयुक्त नहीं समझा।

4

शेक्सपियर ने **टेम्पेस्ट** की रचना की, यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उन को भी नाटक के नियमों का उतना ही ज्ञान था जितना लोप द वेगा को। यह स्पष्ट है कि अंग्रेज़ी और स्पेनी दोनों नाटककारों ने इन नियमों को मानने से इन्कार किया। अब प्रश्न उठता है कि इंग्लैंड और स्पेन के पेशेवर नाटककारों द्वारा इन सिद्धान्तों को अस्वीकार कर दिये जाने पर भी, फ्रांस के पेशेवर नाटककारों ने इनको स्वीकार करना क्यों पसन्द किया। इस प्रश्न का उत्तर पहले ही दिया जा चुका है कि फ्रांस में नाटक का चरमोत्कर्ष स्पेन और इंग्लैंड के पचास वर्ष पश्चात् हुआ, तब तक नाटकीय अन्वितियों का सिद्धान्त रूढ़ हो चुका था। इसका दूसरा कारण यह हो सकता है कि

फ्रांस के लोग लैटिन परम्परा के उत्तराधिकारी हैं। वे प्रत्येक चीज को नियमित और व्यवस्थित रूप में करना पसन्द करते हैं, और इंग्लैंड या स्पेन के लोगों की अपेक्षा वे अनुशासन पर अधिक विश्वास रखते हैं। इसी को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि फ्रांस के लोग इंग्लैंड या स्पेन के लोगों की अपेक्षा अधिक कलात्मक प्रवृत्ति के हैं और कलाकार को स्वयं आरोपित नियमों और बन्धनों के अधीन कार्य करने में अधिक खुशी होती है। लेकिन इसका एक कारण और भी है, जो इन सभी कारणों से अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

आधुनिक साहित्य का प्रत्येक नाटक मध्ययुगीन नाटकों, धार्मिक नाटकों (पैशन प्ले) और प्रहसनों की उपज है; लेकिन असाहित्यिक लोक-नाटक से लेकर उच्च कोटि की त्रासदियों और कामदियों तक नाटक की विकास-अवस्थाएँ हर देश में अलग-अलग रही हैं। फ्रांस में नाटक साहित्य के विकास पर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि इंग्लैंड और स्पेन में स्थान-अन्विति के सिद्धान्त को मान्यता प्राप्त न होने पर भी फ्रांस में इसलिए इसे अपनाया गया, क्योंकि दोनों की विकास- प्रक्रियाएँ एक-दूसरे से कुछ भिन्न हैं।

बाइबिल में दी हुई छोटी-छोटी घटनाओं को नाटकबद्ध कर पूर्ण विकसित धार्मिक नाटकों (पेशन प्ले) का सृजन किया गया, जो विशेषकर क्रिसमस और ईस्टर के अवसरों पर चर्च में प्रदर्शित किये जाते थे और जिनका उद्देश्य धार्मिक होता था। वे विभिन्न स्थल जिन पर इस कला के विभिन्न अंशों या उपकथाओं को प्रस्तुत किया जाता था, 'स्टेशन' के नाम से पुकारे जाते थे, और अन्त में जब गिरजाघरों में इन नाटकों का प्रदर्शन निषिद्ध कर दिया गया तो बाहर के नये लोगों ने यह काम अपने हाथ में ले लिया। फ्रांस में इन धार्मिक नाटकों को लम्बे और नीचे मंच पर प्रस्तुत किया जाता था, अन्य स्थल भी साथ ही पीछे की ओर एक क्रम से रहते थे जिनको 'मैंशन' (प्रासाद) कहते थे। नाटक के सभी मुख्य घटनास्थलों के दृश्य एक साथ रंगमंच पर प्रस्तुत कर दिये जाते थे, और आवश्यकतानुसार क्रम से उनका प्रदर्शन में प्रयोग किया जाता था। अधिकांश अभिनय मंच के पार्श्व की भूमि पर किया जाता था।

कुछ समय बाद ईसा के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के स्थान पर सन्तों के जीवन-चरित्र पर नाटक लिखे जाने लगे। उसके पश्चात् ऐतिहासिक और आख्यान कथाओं के नायकों के जीवन पर आधारित नाटकों का उद्भव हुआ। इस प्रकार धार्मिक नाटकों से धार्मिकेतर नाटकों का विकास हुआ। सामान्य नाटककारों ने यद्यपि कथावस्तु के लिए सामग्री आधुनिक कथाओं से ली, लेकिन उन्होंने मध्ययुगीन युक्तियों और पद्धतियों को अपनाया। इससे वे नायक के जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित अनेक घटना-स्थलों को रंगमंच पर प्रदर्शित कर सके। रंगमंच-कला की नयी युक्तियों से परिचित होने के कारण हमें भले ही ये पद्धतियाँ विचित्र और हास्यप्रद लगें, फ्रांस के 17वीं शताब्दी के दर्शक इन्हीं से परिचित और संतुष्ट थे। लेकिन कुछ समय बाद

इनके भी दोष दिखलाई पड़ने लगे। बढ़इयों और दृश्य-सज्जाकारों द्वारा दिये गए सुझावों के आधार पर तैयार किये गए 'मैंशनों' में जब हार्डी ने अपनी अपरिचित कहानियों को नाटकबद्ध करना शुरू किया तो दर्शक, जो अभी तक बाइबिल की कथाओं पर आधारित नाटकों और जेरूसलम के घटनास्थल से ही अवगत थे, इन नाटकों को आसानी से समझ न सके। हार्डी ने अपने नाटकों में विचित्र और अपरिचित स्थानों को घटनास्थल के लिए चुना और एक ही नाटक में जहाज़, महल, शयनकक्ष और पहाड़ी कन्दरा आदि का समावेश किया, जिनको समझने में दर्शकों को कठिनाई होती थी।

कार्नाइ ने सिड की रचना वास्तव में एक ऐसे रंगमंच के लिए की, जिसमें इन सबकी व्यवस्था थी। इसमें घटनाएँ एक ऐसे भूमि-खण्ड पर दिखाई जाती हैं, जिसकी पृष्ठभूमि में मुख्य पात्रों के निवास-स्थान हैं। उन्होंने इस नाटक की रचना की तो नाटकीय अन्विति के इन सिद्धान्तों के बारे में उन्होंने सुना तक नहीं था। इन सिद्धान्तों से अवगत न होने के कारण उनकी कड़ी आलोचना हुई। और यद्यपि उनके नाटकों को आशातीत सफलता मिली थी फिर भी उन्होंने अपने अज्ञान को स्वीकार किया। इसके बाद के सभी नाटकों में उन्होंने स्थान-अन्विति के सिद्धान्त को निभाने की कोशिश की, और इसमें कोई सन्देह नहीं कि दर्शकों ने इन नाटकों का सहर्ष स्वागत किया, क्योंकि घटनास्थल तथा दृश्यों के सरलीकरण के कारण उन्हें पहले की तरह दृश्यों की भीड़-भाड़ से मस्तिष्क पर ज़ोर नहीं डालना पड़ा। कार्नाइ की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई कि अन्य नाटककारों ने भी उनके क़दमों पर चलना शुरू कर दिया और वे अपने नाटकों में एक दिन में एक स्थान पर केवल एक ही घटना का समावेश करने लगे।

कार्नाइ स्वयं इन सिद्धान्तों के अनुसार चलने में काफी कठिनाई का अनुभव करते थे; और स्पेनी नाटक डान जुआँ के रूपान्तर में मोलियर ने स्वयं एक-दो स्थानों पर इनका उल्लंघन किया है। लेकिन रासीन को इन सिद्धान्तों को निभाने में कोई कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि वे दुखान्त कथा की तीव्र परिणति का ही चित्रण करना पसन्द करते थे। बालटेयर ने भी कार्नाइ और रासीन का ही अनुकरण किया। तीन शताब्दियों तक इस प्रकार फ्रांसीसी नाटक नाटकीय अन्विति के इन बन्धनों में जकड़ा रहा और जब तक विक्टर ह्यूगो ने हरनानी की रचना नहीं की तब तक नाटक को इन बन्धनों से मुक्ति न मिल सकी; यद्यपि अन्य देशों में नाटककारों ने बहुत पहले अपने को अन्वितियों से मुक्त कर लिया था।

हरनानी के प्रकाशन के साथ ही नाटकीय अन्विति के सिद्धान्तों की नींव हिल गई। फ्रांस के नाटक पर इन कुप्रभावों को अक्सर बढ़ा-चढ़ाकर बताया जाता है; हम कम से कम यह तो मान नहीं सकते कि इन सिद्धान्तों का पालन करने के कारण मोलियर, रासीन तथा फ्रांस के अन्य नाटककारों की उपलब्धि में वास्तव में कुछ कमी आयी। परन्तु इसके साथ ही इंग्लैंड और स्पेन ने इन सिद्धान्तों को अस्वीकार कर

ठीक ही किया। आज के युग में कोई नाटककार इन सिद्धान्तों की परवाह नहीं करता। लेकिन फिर भी यदि कोई नाटककार घटनाओं की एक लम्बी कड़ी को लेकर नाटक लिखने का प्रयास करता है और साथ ही उसे सरल और प्रभावपूर्ण रूप से प्रस्तुत करना चाहता है, तो आज भी उसे किसी न किसी सीमा तक इन सिद्धान्तों का पालन करना ही पड़ता है ; उदाहरण के लिए ड्यूमा के **फ्रांसिलान** में और इब्सन के **गोस्ट्स** में।

19वीं शताब्दी के दो बड़े नाटककारों को जब हम अनजाने ही 17वीं और 18वीं शताब्दी के समालोचकों द्वारा प्रतिपादित पुराने सिद्धान्तों का पालन करते हुए पाते हैं, तो लगता है कि इन सिद्धान्तों में अन्ततः कुछ न कुछ तथ्य अवश्य हैं। ये सिद्धान्त कथानक को सरल और विन्यास को सुदृढ़ बनाने में सहायक होते हैं—और थे बातें अर्ध-मध्ययुगीन नाटकों के लिए अत्यन्त आवश्यक थीं। इस प्रयास का परिणाम दुर्भाग्य-वश अवांछनीय रहा, इससे इनकार नहीं किया जा सकता; लेकिन फिर भी इसका उद्देश्य बुरा न था।

परिशिष्ट—1

कुछ ऐसे प्रश्नों की एक तालिका सुझा देना उपयुक्त होगा जिन्हें प्राचीन अथवा आधुनिक किसी भी नाटक का अध्ययन करते समय विद्यार्थी अपने सम्मुख रख सकता है।

(क) क्या इस नाटक का कथानक एक ही है ? अथवा नाटक की कहानी दुहरी या तेहरी है ? यदि कहानियाँ दो या तीन हैं तो उनमें-से कौन-सी कहानी कथानक का मूल आधार है ? उप कथा नाटक की संगठना से सम्बद्ध है अथवा स्वतन्त्र है, अथवा बाहर से जोड़ दी गई ? एक से अधिक कथाओं के होने से पाठक का ध्यान बँट जाता है अथवा उप कथा अपने विरोधी स्वरूप के द्वारा मूल कथा को और भी बल देती है ? क्या नाटक में अनाटकीय तत्त्व नहीं हैं, जैसे महाकाव्य या गीति-काव्य या भाषण या वर्णन आदि के तत्त्व ? यदि ऐसा है तो ये बाह्य तत्त्व नाटकीय रोचकता में कितना हस्तक्षेप करते हैं।

(ख) क्या नाटक में प्रारम्भ से अन्त तक कोई मौलिक द्वन्द्व है जो पाठक को आकर्षित रखे ? यदि है तो यह द्वन्द्व क्या है ? यह द्वन्द्व किन चरित्रों द्वारा आगे बढ़ता है अर्थात् उसके उभयपक्षीय चरित्र कौन हैं ? क्या दोनों ही पक्ष अपने आप को अपनी बुद्धि से सही और न्यायसंगत मानते हैं ? अथवा उनमें से एक पक्ष नितान्त न्याययुक्त और दूसरा एकदम ग़लत है ? किस चरित्र के साथ आपकी सहानुभूति है ? और क्यों ? द्वन्द्व के परिणाम से आप सन्तुष्ट हैं ? यदि नहीं तो क्यों नहीं ? क्या नाटककार ने अपने चरित्रों के साथ पूर्ण न्याय किया है ? अथवा क्या उसने अपने चरित्रों से बलात् वह करवाया है जिसे अन्यथा वे न करते ? और यदि ऐसा है तो क्या इससे नाटक में आपकी रुचि पर आघात पहुँचा है ?

(ग) नाटक प्रारम्भ होने से पहले क्या हुआ ? कहानी के किस स्थल से नाटककार कहानी प्रारम्भ करता है और किस स्थल पर उसे समाप्त करता है ? प्रारम्भ और अन्त के इन स्थलों के बीच का कथानक नाटककार ने क्यों चुना ? क्या नाटककार का यह निर्णय उचित था ? नाटक को प्रारम्भ से ही आप समझ सकें इसके लिए कथानक के पूर्व अंश की सूचना क्या नाटककार ने आपको दी ? कथानक के विकास की कौन-सी पद्धति नाटककार ने अपनायी है ? क्या सभी आवश्यक सूचनाएँ और विश्लेषण उसने प्रारम्भिक दृश्यों में ही दिये हैं ? अथवा क्या उनसे आकर्षक रहस्य बाद के अंकों के लिए सुरक्षित रख छोड़े हैं ? यदि उसने ऐसा किया है तो क्या

ठीक किया है ? क्या ऐसी किसी बात को बताने में नाटककार असफल रहा है जिसे जानकर ही आप रंगमंच पर नाटक को अच्छी तरह से समझ सकते ? क्या नाटककार ने कहीं ध्यान-लाघव के सिद्धान्त का उल्लंघन किया है ?

(घ) नाटक का मूल विषय क्या है ? क्या नाटक इस विषय पर आदि से अन्त तक सुस्थिर रहता है ? अथवा क्या कहानी अवान्तर विषयों की ओर भटक जाती है ? क्या नाटक में कोई ऐसा भी दृश्य है जो हटाया जा सकता हो ? यदि ऐसा है तो उसे नाटक में क्यों रखा गया ? क्या नाटककार किसी ऐसे दृश्य को रखने में भी असफल हुआ है जिसे नाटक के अभिनय में दिखाया जाना चाहिए ? यदि ऐसा है तो इस भूल का कोई उपयुक्त और सही कारण भी क्या आप खोज सकते हैं ? क्या नाटककार ने कोई ऐसा दृश्य नाटक में नहीं रखा, जिसकी आशा वह आपके मन में उत्पन्न कर देता है ?

(ङ) क्या नाटक में आपकी रुचि आदि से अन्त तक निरन्तर बढ़ती रहती है ? यदि नहीं तो उसमें व्यवधान कहाँ पड़ता है ? और ऐसे प्रत्येक स्थल पर व्यवधान का कारण क्या है ? अपनी रुचि का एक रेखाचित्र बनाइये जिससे कि आप ठीक विश्लेषण कर सकें।

(च) नाटककार ने नाट्य-रूढ़ियों का उपयोग किया है ? इनमें से कौन-कौन-सी रूढ़ियाँ स्थायी और आवश्यक हैं ? कौन-सी अस्थायी हैं और उस नाटक के लिए विशिष्ट हैं ? क्या नाटक में कोरस है ? यदि है तो उसके क्या नाटकीय प्रयोजन हैं ? क्या नाटककार ने स्वगत-कथन का उपयोग किया है ? यदि हाँ तो क्या यह उपयोग आपको नाटक सम्बन्धी तथ्य बताने के लिए किया गया है ? अथवा क्या स्वगत-कथन का उपयोग केवल चरित्र के विचारों और भावों को रंगमंच पर अभिव्यक्ति देने के लिए किया गया है ? क्या ऐसे स्वगत-कथनों का भी उपयोग किया गया है जो सीधे दर्शकों को सम्बोधित हैं ? क्या नाटककार ने चरित्रों द्वारा कान लगने की चतुराई का भी उपयोग किया है ? और इन सब बातों में क्या लेखक अपने पूर्ववर्ती नाटककार की परम्पराओं का ही उपयोग कर रहा है ? दूसरे शब्दों में वस्तु-संगठन पद्धति में नाटककार समय के रंगमंच की परिस्थितियों से कहाँ तक प्रभावित है ?

(छ) क्या आपको इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि नाटक लिखते समय नाटककार की दृष्टि में कुछ विशेष अभिनेता भी थे ? क्या नाटक के किसी भी चरित्र द्वारा कोई भी ऐसी बात कही या की जाती है जो उस मूल अभिनेता के लिए उस चरित्र को उपयुक्त बनाने की दृष्टि से रखी गई हो ? और यदि ऐसा है तो क्या इससे लेखक के उद्देश्य को समझने में आपको अधिक सुविधा मिलती है ?

(ज) इस बात के क्या प्रमाण आपको मिलते हैं कि नाटककार के मन में अपने समकालीन लोगों की और दर्शकों की रुचि-अरुचि और उनकी सम्मतियों का भी प्रभाव पड़ा है ? क्या तत्कालीन दर्शकों के प्रति नाटककार ने कोई सीधा-साधा आवेदन

भी किया था ? क्या ऐसी युक्तियों का प्रयोग किया गया है कि दर्शक प्रशंसा में तालियाँ बजाएँ ? जिन लोगों के लिए मूलत: नाटक की रचना की गई है, उनके आचार-व्य-वहार, उनके विश्वासों और परम्पराओं पर भी क्या नाटक कोई प्रकाश डालता है ? नाटक की प्रभावशीलता क्या स्थानीय और तत्कालीन मात्र है, अथवा सार्वभौम और सर्वकालीन है ?

(झ) क्या नाटक सचमुच जीवन का यथार्थ चित्र है ? क्या चरित्र यथार्थ है ? क्या वे सचमुच जीवन में पाये जा सकते हैं ? और यदि हाँ तो क्या उन्होंने जीवन में वैसा ही व्यवहार किया होता जैसा वे नाटक में करते हैं ? क्या कथानक सुसम्बद्ध और युक्तिसंगत है ? नाटक का परिणाम क्या स्वाभाविक और अवश्यम्भावी है, अथवा वह हठात ऐसा रखा गया है ? क्या नाटक की कथा नाटककार के स्पष्ट प्रयासों से विकृत हो गई है ? क्या आकस्मिक घटनाओं का प्रभाव नाटक के कथानक पर पड़ता है ? यदि हाँ तो क्या इन से बचा भी जा सकता था और क्या इनसे बचा भी जाना चाहिए था ? क्या नाटक में कहीं कोई ऐसा चरित्र है जिसकी कोई संगति नाटक के कथानकों के साथ न हो ? यदि ऐसा है तो क्या इससे नाटक में आपकी अभिव्यक्ति पर आघात पहुँचता है ? और यदि नहीं तो क्यों ? क्या आकस्मिक घटनाएँ सतर्कता के साथ आयोजित की गई हैं ? और यदि ऐसा है तो क्या उनकी संगठना इस प्रकार की गई है कि वे स्वभाविक मालूम हों ? और ऐसा कैसे किया गया है ?

(ञ) नाटक के लिखने में नाटककार का क्या उद्देश्य है ? क्या नाटककार ने किसी एक चरित्र को ही विविध रूपों में चित्रित करने के लिए नाटक लिखा है, और क्या दूसरे चरित्र उसके सहायक मात्र बनकर आते हैं। क्या नाटककार का उद्देश्य जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना था अथवा वह जीवन के आदर्श रूप को चित्रित करना चाहता था ? क्या नाटककार का उद्देश्य किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन था ? क्या नाटक से किसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है ? और यदि हाँ तो क्या ऐसा करना ही नाटककार का सप्रयास उद्देश्य था ? अथवा जीवन का जो चित्र उपस्थित किया गया है, उसका यह आकस्मिक परिणाममात्र है ? क्या नाटक का कोई नैतिक महत्त्व भी है ? आपके ऊपर नाटक का क्या प्रभाव पड़ा ? नाटक ने आपकी चेतना को ऊपर उठाया है अथवा उसे दबा दिया है ?

(ट) क्या यह नाटक व्यापार-अन्विति के सिद्धान्त का पालन करता है ? क्या इसमें स्थान-अन्विति और काल-अन्विति के सिद्धान्तों का पालन किया गया है ? यदि इनमें से किसी का पालन किया गया है तो क्यों ? और क्या ऐसा करना आव-श्यक था। ऐसा करने से नाटक को लाभ पहुँचा है या हानि ? काव्यगत न्याय के सिद्धान्त का भी पालन नाटक में किया गया है ? यदि नहीं तो क्या उसका पालन किया जाना चाहिए था ? क्या नाटककार किसी एक चरित्र-विशेष के साथ अनुचित रूप से सहानुभूति करता है ? क्या वह चरित्रों में किसी एक को

नापसन्द भी करता है ? यदि हाँ तो समूचे नाटक पर इसका प्रभाव अच्छा पड़ता है या बुरा ?

(ठ) क्या आप सफलतापूर्वक नाटक का वर्गीकरण कर सकते हैं ?—अर्थात् क्या नाटक त्रासदी है या मेलोड्रामा, कामदी है या प्रहसन, ऐतिहासिक नाटक है या नाटकीय आख्यायिका, रूमानी कामदी है या आचार-कामदी ? अथवा वह दो या अधिक प्रकारों का सम्मिश्रण है ? यदि हाँ, तो किन प्रकारों का ? और निश्चित नाटक-प्रकारों का यह उल्लंघन क्या आपके आनन्द में बाधा डालता है ?

परिशिष्ट—2

अर्विग, हेनरी (1838-1905)

प्रसिद्ध अभिनेता तथा रंगशाला व्यवस्थापक जो महारानी विक्टोरिया के राज्य-काल के अन्तिम तीस वर्षों में लंदन के रंगमंच पर छाया रहा।

आँज़िये (1820-1889)

फ्रांसीसी नाटककार और कवि।

आबिनयाक (1604-1674)

नाटक-साहित्य पर लिखने वाले एक महत्त्वपूर्ण फ्रांसीसी लेखक, जिन्होंने नाटकीय अन्वितियों पर बहुत ज़ोर दिया।

एज़ियेन

यूनान की पौराणिक गाथाओं में वर्णित तीन सौ हाथों वाला एक दैत्य।

ऐरिस्टोफ़ेनेज़ (448-380? ई० पू०)

यूनानी नाटककार; चालीस कामदियों के रचयिता, जिनमें से ग्यारह उपलब्ध हैं।

एरियन (7वीं शताब्दी ई० पू०)

एक अर्द्ध पौराणिक यूनानी कवि एवं संगीतज्ञ; डायोनीशस देवता के पूजा-उत्सव पर गाए जाने वाले गीतों को नया रूप और पूर्णता प्रदान की।

एस्किलस (525-465 ई० पू०)

यूनानी प्रसिद्ध त्रासदी कवि; अनेक त्रासदियों की रचना की, जिनमें सात उपलब्ध हैं।

कोक्लें (1841-1909)

मोलियर के प्रसिद्ध नाटकों के प्रमुख पात्रों का सफल फ्रांसीसी अभिनेता।

कार्नाइ, पियेर (1606-84)

फ्रांसीसी नाटककार उदास चरित्र वाले नायक-नायिकाओं के चित्रण में विशेष सफल।

काट्ज़ेबू, वॉन (1761-1819)

जर्मन नाटककार; दो सौ से अधिक नाटकों के रचयिता, सैंट पीटर्सवर्ग के कोर्ट थियेटर के निर्देशक।

काँग्रीव (1670-1729)

आचार- कामदी के सर्वश्रेष्ठ अंग्रेज़ी लेखकों में एक। इनके नाटकों में दि ओल्ड बेचलर, दि डबल डीलर और लव फॉर लव प्रसिद्ध हैं।

कॉलिन्स, विलियम विल्की (1824-1889)

अंग्रेज़ी उपन्यासकार।

किडर

अंग्रेज़ नाटककार; अपने समय का अच्छा त्रासदी लेखक।

कीन, एडमंड (1787-1833)

त्रासदी अभिनेता; शेक्सपियर के ऑथेलो, मेकबेथ और हैमलेट के अभिनय में विशेष ख्यातिप्राप्त की।

कूवियें (1773-1838)

महान् फ्रांसीसी प्रकृतिवादी दार्शनिक।

कैंबेल, टॉमस (1777-1855)

प्रसिद्ध अंग्रेज़ी कवि, वीर रस की कविताओं में अधिक ख्याति प्राप्त की।

कैल्डरॉन (1600-81)

लोप द वेगा के उत्तराधिकारी स्पेन के महान् नाटककार; लगभग दो सौ लिखित नाटकों में से सौ प्राप्त हैं। ड्राइडन, गेटे, शैली आदि इनके ऋणी हैं।

गॉत्ज़ी (1720-1806)

इटली का नाटककार।

गॉतिये (1573-1633)

फ्रांसीसी अभिनेता, प्रमुखतः प्रहसन-अभिनेता

ग्रीन, रॉबर्ट (1560-1592)

अंग्रेज़ नाटककार जिसने अनेक रूपों में रचनाएँ कीं।

गेटे (1749-1832)

जर्मनी के प्रसिद्ध कवि, नाटककार और चित्रकार; विविध काव्य-ग्रन्थों व नाटकों की रचना की।

गैरिक, डैविड (1717-79)

प्रसिद्ध अंग्रेज़ अभिनेता, शेक्सपियर के नाटकों के प्रधान पात्रों का कुशल अभिनय किया और अपने समय की अभिनय शैली को नया रूप दिया।

चैपमैन, जॉर्ज (1559-1634)

कवि और नाटककार।

जूडेरमान, हर्मन (1857-1928)

जर्मन नाटककार एवं उपन्यासकार; मुख्य रूप से अपने नाटकों के लिए प्रसिद्ध।

जेम्स, विलियम (1842-1610)

अमरीकी दार्शनिक।

टेन, हिपोलाइट (1828-83)

फ्रांसीसी कलाकार एवं आलोचक; फ्रांस सम्बन्धी इतिहास ग्रन्थों के अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य का भी इतिहास लिखा।

टेरेन्स (190-159 ई० पू०)

रोम के कवि; 6 नाटकों की रचना की।

डायनीसियस

यूनान के प्रकृति-देवता; यूनान के विविध नाट्य-रूपों का प्रारम्भ और विकास इन्हीं के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित पूजा-विधानों से हुआ।

ड्राइडन (1631-1700)

अंग्रेज लेखक जिसने साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में रचनाएँ की।

थॉर्नडाइक

प्रसिद्ध अंग्रेज़ अभिनेत्री।

थियॉक्रिटस (तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व)

यूनानी कवि; विशिष्ट नाट्य-काव्य 'इडिल' में लिखित कई रचनाओं में सिसली के ग्रामीण जीवन का सफल चित्रण किया।

थेसपिस (छठी शताब्दी ई० पू०)

यूनानी कवि; कोरस और उसके नेता के अतिरिक्त एक अन्य पात्र का सर्वप्रथम इन्होंने प्रयोग किया।

प्लांश (1796-1880)

अंग्रेज़ नाटककार।

प्लाट्स, टाइटस मैक्सियस (254-184 ई० पू०)

रोम के प्रसिद्ध कामदी नाटककार, इनके लिखे बीस नाटक उपलब्ध हैं। स्वयं मेनांडर का अनुकरण किया और मोलियर, शेक्सपियर आदि के लिए आदर्श बन गए।

फ़्लेचर, जॉन (1579-1625)

अंग्रेज़ कवि और नाटककार।

फ्लाबेर, गुस्ताव (1821-1880)

फ्रांसीसी उपन्यासकार जो अपनी वर्णन-शैली के लिए प्रसिद्ध है। उसका सबसे प्रसिद्ध उपन्यास मदाम बोवारी है।

फ़िच, क्लाइड (1865-1909)

अमरीका का एक बहुत ही प्रिय नाटककार, जिसने लगभग पचास नाटकों की रचना की।

फ्रीटाग (1816-1895)

जर्मन नाटककार और उपन्यासकार।

फ्रेडरिक (1800-1876)

प्रसिद्ध फ्रांसीसी अभिनेता, त्रासदी और कामदी दोनों के सफल अभिनेता।

बर्नहार्ट, सारा (1845-1923)

प्रसिद्ध फ्रांसीसी अभिनेत्री।

बर्बेज, रिचार्ड (1567 ?-1619)

अंग्रेज़ अभिनेता तथा चित्रकार; शेक्सपियर तथा अन्य नाटककारों के त्रासदी नाटकों के प्रधान पात्रों का कुशल अभिनय किया।

ब्राउनिंग, रॉबर्ट (1812-89)

अंग्रेज कवि एवं नाटककार; इनके नाटक रंगमंच की अपेक्षा साहित्यिक अध्ययन के लिए ही अधिक उपयुक्त सिद्ध हुए।

ब्वालो (1636-1711)

एक फ्रांसीसी आलोचक, जिसने फ्रांसीसी साहित्य और नाटक को बहुत प्रभावित किया।

बाँवील (1823-1891)

फ्रांसीसी कवि और नाटककार, इन्होंने एक दर्जन काव्य-नाटकों की रचना की।

बूनेत्यार, फ़र्दिनाँ (1849-1906)

फ्रांसीसी आलोचक।

बेकर (1818-1890)

अमरीकी अभिनेता, व्यवस्थापक तथा नाटककार।

बोगार्ट (1584-1616)

अंग्रेज़ नाटककार।

बोमार्शे (1732-99)

फ्रांसीसी नाटककार और संगीतज्ञ; कामदी नाटकों की रचना की।

म्यूसे (1810-1857)

रोमांटिक स्कूल का फ्रांसीसी कवि, जिसने कई सुन्दर नाटक लिखे।

मांज़ोनी (1785-1873)

इतालवी उपन्यासकार और कवि ।

मार्लो, जूलिया (1866-1950)

प्रसिद्ध अमरीकी अभिनेत्री; शेक्सपियर के सुखान्त नाटकों की नायिका के रूप में सफल अभिनय किया ।

मेनाण्डर (342-292 ई० पू०)

एथेन्स के कवि; कामदी नाटकों की रचना की, जिनमें एथेन्स के तत्कालीन जीवन का चित्रण किया ।

मैसिंजर, फ़िलिप (1583-1640)

नाटककार ।

मोलियर (1622-73)

प्रसिद्ध फ्रांसीसी नाटककार और अभिनेता; 15 कामदियों की रचना की ।

मार्लो (1564-93)

शेक्सपियर के समकालीन प्रसिद्ध अंग्रेज़ नाटककार; एलिजाबेथयुगीन नाटक के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया । 6 नाटकों की रचना की ।

यूरिपिडीज़ (5 शताब्दी ई० पू०)

यूनान के तीन बड़े त्रासदी लेखकों में से एक; प्रतिदिन के जीवन से कथानक लेकर सर्वप्रथम नाटक रचे ।

राचेल (1821-58)

प्रसिद्ध फ्रांसीसी अभिनेत्री, फ्रांस की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्रियों में से एक ।

रास्ताँ, एडमंड (1868-1918)

फ्रांसीसी नाटककार, काव्य-नाटकों की सफल रचना की ।

रासीन (1639-1699)

फ्रांसीसी नाटककार, कॉर्नाइ के समान ही सत्रहवीं शताब्दी का महान् नाटककार ।

राशियस, क्विण्टस (पहली शताब्दी ई० पू०)

रोम का हास्य अभिनेता ।

रिशेलू(1585-1642)

प्रसिद्ध फ्रांसीसी नाटककार एवं नीतिज्ञ, पेरिस में सर्वप्रथम स्थायी रूप से व्यवसायी मंच स्थापित किया ।

रेनॉल्ड्स, (1723-92)

प्रसिद्ध अंग्रेज़ चित्रकार; रायल अकादेमी ऑफ आर्टस के प्रथम अध्यक्ष ।

लावेल (1819-18?1)

अमरीकी कवि, निबन्धकार तथा राजनीतिज्ञ ।

लेसिंग, गार्टोल्ड एफ्राइम (1729-81)

जर्मनी के नाटककार और आलोचक, लगभग 6 त्रासदी और कामदी नाटकों की रचना की । मैकाले ने इन्हें जर्मनी का प्रथम महान् आलोचक माना था ।

लैम्ब, चार्ल्स (1775-1834)

प्रसिद्ध अंग्रेज़ लेखक तथा कवि; शेक्सपियर के नाटकों की कथाओं को बच्चों के लिए लिखा और शेक्सपियर तथा अन्य नाटककारों पर समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखे ।

लोप द वेगा (1562-1635)

बहुमुखी प्रतिभावान स्पेनी कवि और नाटककार; दो हज़ार से अधिक कविताओं और नाटकों की रचना की । स्पेन के नाट्य साहित्य के विकास में महान् योग दिया ।

लेगूवे (1807-1903)

फ्रांसीसी कवि, उपन्यासकार, और प्राध्यापक । बहुत-सी एकांकी कामदियाँ लिखीं और स्क्रीब और लैबिके के साथ कई नाटक प्रस्तुत किए ।

वॉल्टेयर (1694-1778)

फ्रांसीसी दार्शनिक, कवि, नाटककार तथा महान् साहित्यकार; नाटकीय क्षेत्र में अद्वितीय स्थान ।

वैगनर (1813-83)

जर्मनी के प्रसिद्ध संगीतकार और महान् आपेरा निर्माता; इनकी रचनाओं में काव्य, संगीत और चित्रकला का सुन्दर समन्वय मिलता है।

वेब्स्टर, जान (?—1634)

अंग्रेजी नाटककार, उनके दो नाटक अत्यधिक प्रसिद्ध हुए : दि व्हाइट डेविल (1612) और डचेस ऑफ माल्फी (1614)। उनके जीवन के विषय में विशेष ज्ञात नहीं है। सम्भव है प्रसिद्ध कामदी अभिनेता जान वेब्स्टर वे ही हों परन्तु निश्चयपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता।

श्लेगल (1719-1749)

प्रसिद्ध जर्मन नाटककार; सुन्दर कामदी एवं त्रासदी के लेखक, जिनमें कुछ ऐतिहासिक हैं।

शिलर (1759-1805)

जर्मन कवि।

शेरिडन, रिचार्ड ब्रिन्सले (1751-1816)

अंग्रेज नाटककार, अभिनेता और वक्ता; व्यंग्य हास्यपूर्ण लगभग आठ कामदियों की रचना की।

शेलिंग (1775-1854)

जर्मन दार्शनिक तथा दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर।

स्क्रीब (1791-1861)

फ्रांसीसी नाटककार, चार सौ से अधिक नाटकों के रचयिता, 'सुबद्ध-नाटक' के प्रवर्तक।

स्टैंडल (1783-1842)

फ्रांसीसी लेखक।

सर रिचार्ड जैब (1841-1905)

अंग्रेज लेखक तथा समीक्षक सॉफॉक्लीज के नाटकों का अनुवाद समीक्षात्मक टिप्पणियों के साथ किया।

सार्दू (1831-1908)

फ्रांसीसी नाटककार; स्क्रीब के उत्तराधिकारी नाट्यशिल्प के कुशल कलाकार, किन्तु कृत्रिम और निर्जीव पात्रों की सृष्टि की।

सॉफ़ॉक्लीज़ (496-406 ई० पू०)

यूनान के सर्वश्रेष्ठ तीन नाटककारों में से एक; सात नाटक प्राप्त हैं। इनमें से एंटीगनी और इडिपस रैक्स अधिक प्रसिद्ध हुए। मानव जीवन का सम्यक् और आदर्शपरक चित्रण किया; नाटकों में दो पात्रों से बढ़ाकर तीन पात्रों का विधान सर्वप्रथम इन्हीं ने ही किया। अरस्तू ने त्रासदी का विश्लेषण इन्हीं के नाटकों के आधार पर किया।

साल्वीनी (1829-1916)

इटली का प्रसिद्ध अभिनेता।

सार्से (1827-1899)

प्रसिद्ध फ्रांसीसी नाटक समीक्षक, जिसके अनेक अनुयायी थे।

सिडनी, सर फिलिप (1554-86)

आयरलैण्ड के सुप्रसिद्ध कवि।

सेनेका (4 ई० पू०—65 ई०)

रोम का नाटककार, दार्शनिक एवं राजनीतिज्ञ; इसके नाटकों का बहुत अधिक ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि रोम में इसी के प्राचीन नाटक उपलब्ध हैं।

हर्न

नाटककार फील के एक नाटक की एक दुश्चरित्रा पात्री जिसके नाम का प्रयोग छिनाल स्त्री के प्रतीक के रूप में अन्य परवर्ती नाटककारों ने किया।

हर्व्यू, पॉल (1857-1915)

फ्रांसीसी उपन्यासकार और नाटककार; नाटकों में सामाजिक कुरीतियों पर चोट की।

होगार्थ (1697-1764)

अंग्रेजी चित्रकार।

हॉप्टमान (1862-1946)

जर्मन नाटककार और उपन्यासकार; कई प्रसिद्ध त्रासदियाँ लिखीं।

हाथॉर्न (1804-1864)

स्कारलेट लेटर और हाउस ऑफ दि सेविन गेबिल्स का प्रसिद्ध लेखक।

ह्यूगो, विक्टर मैरी (1802-85)

प्रसिद्ध फ्रांसीसी कवि तथा नाटक और उपन्यास। लेखक फ्रांसीसी साहित्य में स्वच्छन्तावादी धारा के नेता-प्रवर्तक।

हैरिगन, एडवर्ड

अमरीकी अभिनेता; रंगमंच व्यवस्थापक तथा नाटककार।

परिशिष्ट–3

अन्विति	Unity
अभिनटन	Mimicry
अविशिष्ट स्थान	Neutral area
आचार-कामदी	Comedy-of-manners
ईहा	Volition
उच्च-कामदी	High comedy
उद्घाटन	Exposition (of plot)
एकालाप	Monologue
कथानक	Plot
कल्पना-नाटक	Fantasy
गाथागीत	Ballad
गाथागीत-ऑपेरा	Ballad-opera
गीतात्मक प्रहसन	Lyrical burlesque
चरित्र, पात्र	Character
चरित्र-कामदी	Comedy-of-characters
तल-बत्तियाँ	Footlights
दृश्य-कविताएँ	Idyls
दृश्यबंध	Set
ध्यान-लाघव (का सिद्धान्त)	Economy of attention (princi-pal of)
नाट्य-रूढ़ियाँ	Dramatic conventions
नाट्य-वृत्ति	Histrionic instinct
पररूपण	Impersonation
पश्च-पर्दा	Drop-scene
पाठ्य-नाटक	Closet-drama
पात्र-निरूपण	Character delineation
पुराख्यान	Legend

प्रतिनिधान	Representation
प्रतीति-छल	Make-believe
पार्श्व-पट	Wings
फ्रेमी मंच, तसवीरी फ्रेम वाला मंच	Picture-frame Stage
बहु-दृश्य-विधान	Multiple-setting
भवन-सदृश दृश्यबंध	Box-set
भँड़ैती	Burlesque
भावात्मक कामदी	Sentimental-comedy
मध्यस्थल	Focus
मनोवेग	Impulse
मुखौटा-कामदी	Comedy-of-masks
मूक नाटिका	Pantomime
मंच-चित्र	Stage-picture
मंचाग्र	Apron
रक्त-त्रासदी	Tragedy-of-blood
रंग-भवन, प्रेक्षागृह	Auditorium
रंगद्वार, रंग-मुख	Proxenium-arch
रंगस्थली	Arena
रूढ़ पात्र	Stock-figures
रूप-बंध	Structure
रोमांस कामदी	Romantic-comedy
रौद्र स्तोत्र	Dithyramb
विडंबन	Mime
विडंबनकारी	Mimic
वीरताप्रधान नाटक	Heroic play
वृत्त-नाटक	Chronicle-play
वेष-प्रधान नाटक	Costume play
व्यापारमूलक दृश्य	Scenes a faire
शोभा-मंच	Pageant
शौर्य-आख्यायिका	Romance-of-chivalry
संगीत-कामदी, संगीतक	Musical-comedy
संभाव्यता	Probability

साहसिक-आख्यायिका	Picaresque-romance
सुबद्ध-नाटक	Well-made play
स्वाँग	Farce
हास्य-कामदी	Comedy-of-humours
हास्य-नाटक	Comic drama
त्रासदी-कामदी	Tragic-comedy

अनुक्रमणिका